CPGM - 01

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

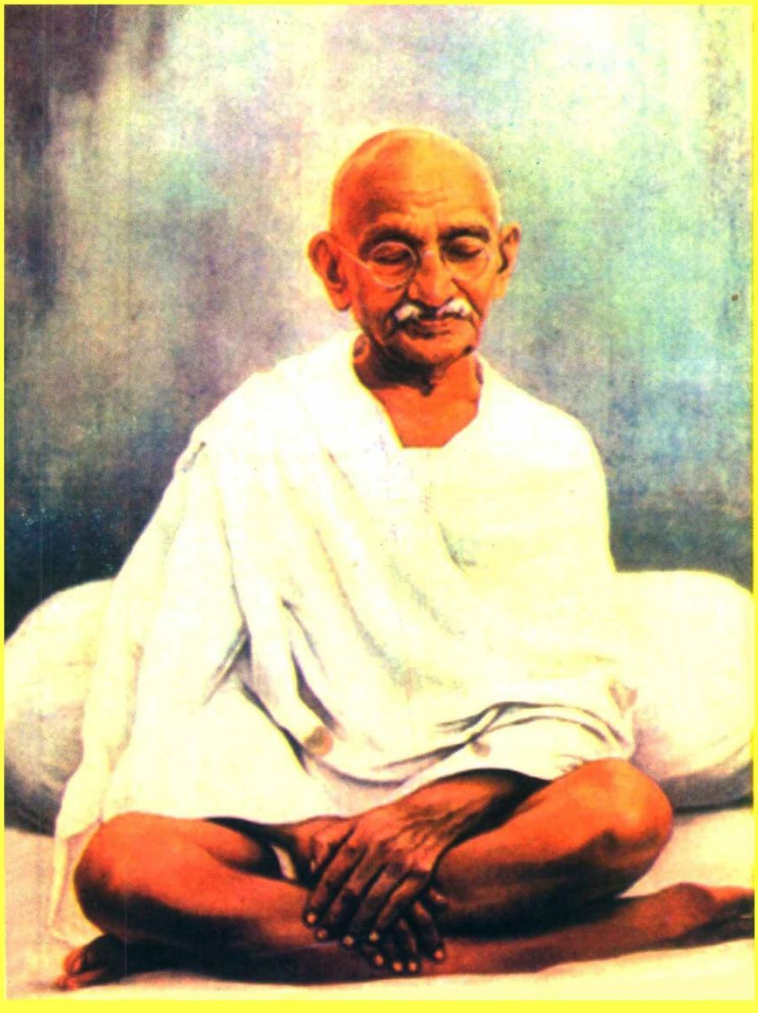

गाँधी जीवन एवं विचार

CPGM - 01

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

गाँधी : जीवन एवं विचार

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

संयोजक / सदस्य

संयोजक

डॉ. लीला राम गुर्जर
सह आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

- **प्रो. (डॉ.) एम.एल. शर्मा**
  आचार्य, गाँधी अध्ययन केन्द्र
  पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़
- **प्रो. (डॉ.) हिमांशु बोराई**
  आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
  हेमवती नन्दन बहुगुणा विश्वविद्यालय
  श्रीनगर(गढ़वाल)
- **प्रो. (डॉ.) अनाम जैतली**
  आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
  वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
- **डॉ. बी. अरुण कुमार**
  सह आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
  वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

संपादक

पाठ लेखक	इकाई संख्या	पाठ लेखक	इकाई संख्या
प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच कुलपति वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)	1	**डॉ. बी. अरुण कुमार** सह आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	6
प्रो. (डॉ.) हिमांशु बोराई आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग हेमवती नन्दन बहुगुणा विश्वविद्यालय श्रीनगर(गढ़वाल)	2	**डॉ. राधाकृष्ण** व्याख्याता, राजनीति विज्ञान विभाग राजकीय महाविद्यालय, सांभरकेल	7,8
प्रो. (डॉ.) गंगराडे भूतपूर्व प्रो. वाइस चांसलर दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	3	**प्रो. (डॉ.) रोनाल्ड जे. टरचक** (सह लेखक) सेवानिवृत्त आचार्य, मेरीलेण्ड विश्वविद्यालय यू.एस.ए.	9
डॉ. गोपाल मीणा व्याख्याता, राजनीति विज्ञान विभाग राजकीय महाविद्यालय, बहरोड़	4,10	**प्रो. (डॉ.) नीतिन दास गुप्ता** (सह लेखक) आचार्य, गुरुदास कॉलेज कलकत्ता	9
डॉ. राजेश शर्मा व्याख्याता, राजनीति विज्ञान विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर	5		

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच	**प्रो. (डॉ.)एम.के. घडोलिया**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक(संकाय)	प्रभारी(एम.पी.डी.)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,
रावतभाटा रोड, कोटा	रावतभाटा रोड, कोटा	रावतभाटा रोड, कोटा

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुनः उत्पादन अगस्त, 2010 ISBN-13/978-81-8496-040-2

इस सामग्री के किसी भी अंश की व. म. खु. वि. कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में 'मिमियाग्राफी' (चक्रमुद्रण) के द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि. कोटा के लिए कुलसचिव, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा(राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

गाँधी : जीवन एवं विचार

विषय सूची

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई- 1	महात्मा गांधी	6–21
इकाई- 2	गांधी जीवन(1869 ई. 1948 ई.)	22–45
इकाई- 3	गांधी का अध्ययन	46–63
इकाई- 4	गांधीजी की सत्य की अवधारणा	64–74
इकाई- 5	अहिंसा	75–89
इकाई- 6	सत्याग्रह	90–101
इकाई- 7	गाँधी चिन्तन : राजनीतिक एवं धार्मिक	102–120
इकाई- 8	गाँधी चिन्तन, सामाजिक एवं आर्थिक	121–138
इकाई- 9	नारी सम्बन्धी गाँधी के विचार	139–153
इकाई- 10	गाँधी अध्ययन के ऐतिहासिक चरण	154–167

इकाई - 1
महात्मा गांधी

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 जीवन परिचय
1.3 गाँधी चिन्तन पर प्रभाव
  1.3.1 पूर्वी प्रभाव
  1.3.2 पश्चिमी प्रभाव
1.4 दार्शनिक विचार
1.5 सत्याग्रह
1.6 आर्थिक विचार
1.7 राजनीतिक विचार
1.8 महात्मा गाँधी का चिन्तन में योगदान
1.9 सारांश
1.10 अभ्यास प्रश्न
1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ सकते है

- महात्मा गाँधी के जीवन के बारे में।
- महात्मा गाँधी का महान चिन्तन क्या था।
- महात्मा गाँधी के चिन्तन की विशेषतायें।
- महात्मा गाँधी के चिन्तन की प्रमुख अवधारणाओं को जानना
- महात्मा गाँधी का योगदान।

1.1 प्रस्तावना

महात्मा गाँधी को एक चिन्तक के रूप में प्रस्तुत करने में सबसे बड़ी बाधा यह आती है कि उनका व्यक्तित्व इतना विशाल था कि उनके चिन्तन पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। उनका कथन "मेरा जीवन ही मेरा सन्देश है" उनको चिन्तक के रूप में जानने में बाधक है। जैसे कि अलबर्ट आईस्टीन ने कहा कि आने वाली पीढ़ियाँ यह विश्वास नहीं करेगी कि गाँधी जैसा एक हाड मांस का मानव पृथ्वी पर रहता था। महात्मा गाँधी की तुलना इतिहास बदलने वाले व्यक्तियों में की जाती हे। उन्हें बुद्ध और ईसा जैसे व्यक्तित्व के समान वर्ग में रखा जाता है। इतने महान व्यक्तित्व के धनी होने के कारण तथा समय के सन्दर्भ में हमसे इतने नजदीक होने के कारण उनको बहुतवर्षो

तक एक विचारक के रूप में महत्व नहीं दिया गया। 21 वीं शताब्दी के आरम्भ में आज उनको विकास की एक वैकल्पिक व्यवस्था जनक के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। आज के सभी समाजिक वैज्ञानिकों को जब भी पूँजीवादी, भौतिकतावादी व इन्द्रियजन्य विकास की अवधारणा के विकल्प की आवश्यकता होती है, महात्मा गाँधी को याद किया जाता हैं। विश्व में धर्म की स्थापना करने वालों के अलावा किसी भी अन्य व्यक्ति पर इतना -अधिक नहीं लिखा गया है और न ही किसी भी व्यक्ति की इतनी अधिक और विपरीत व्यक्तित्त्व वाले महान लोगों से इनकी तुलना की गई है। महात्मा गाँधी की तुलना बुद्ध, सन्त फ्रांसिस, ऐमसन, लिंकन, सनयातसेन रूसो, थोरो, मार्क्स और टाल्सटॉय जैसे व्यक्तियों से की गई है।

उनका व्यक्तित्व भी बहु आयामी था। दक्षिण अफ्रीका में मानव अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाला भारत के जन आन्दोलन का सफलतापूर्वक नेतृत्व करने वाला, सामाजिक बुराइयों, अस्पृश्यता के विरूद्ध युद्ध करने वाला, प्राकृतिक चिकित्सा स्वस्थ भोजन का प्रयोग करने वाला, समाज सुधारक, महिलाओं को समान दर्जा दिलाने वाला, विभिन्न धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन करने वाला, बुद्धिमान प्रचारक, कुशल पेष्फलेटर, हजारों व्यक्तियों को नैतिक निर्देशन देने वाला तथा आश्रम और सामुदायिक जीवन की स्थापना करने वाला और एक संत के रूप में पहचाना जाने वाला व्यक्तित्त्व महात्मा गाँधी का था। उनके द्वारा लिखे गये लेखन की विस्तृतता इतनी अधिक है कि उसे व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करना असंभव है। उनके द्वारा अपने जीवन में डेढ़ करोड़ शब्द लिखे गये जिनका 100 ग्रन्थों में संकलन किया गया है। उन्होंने जीवन के हर पहलू पर अपने विचार प्रस्तुत किये है। 1933 में उन्होंने लिखा कि मैने जो कुछ लिखा है उसमें सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों का समावेश करना आवश्यक है। जिन बातों में उनके सिद्धान्तों का समावेश नहीं होता है, उन बातों को त्याग देना चाहिये उन्होंने अपने चिन्तन के विकासात्मक पहलुओं पर जोर दिया। 1939 में उन्होंने लिखा कि लिखते समय यह कभी नहीं सोचता हूँ कि इस विषय पर पहले क्या लिखा? मेरा उद्देश्य अपने पहले लिखे गये वक्तव्य के प्रति समानता बनाये रखना नहीं है, अपितु सत्य के प्रति प्रतिबद्धता बनाये रखना है। उन्होंने अपने चिन्तन में कई अवधारणाओं को जन्म दिया है और पुरानी अवधारणाओं को नये ढंग से प्रस्तुत कर स्वराज, स्वदेशी, सत्याग्रह, सर्वोदय इत्यादि अवधारणाओं को संशोधित किया और लोकप्रिय बनाया। इतना लिखने के पीछे उनका कारण विस्तृत पतन की प्रवृति थी। 1923 में यर्वदा जेल में 55 वर्ष की आयु में उन्होंने साल में 150 पुस्तकों का अध्ययन किया जिसमें उन्होंने महाभारत, भारतीय दर्शन के सभी छः सम्प्रदायों मनुस्मृति, उपनिषद्, गीता की सभी टीकाऐं, विलियम जेम्स, एच.जी. वेल्स, रूडयार्ड, किपलिंग जैसे लेखकों की रचनायें पढ़ी थी। 1944 में कार्लमार्क्स के दास केपिटल का अध्ययन किया और यह टिप्पणी की कि मैं यह नहीं जानता कि मार्क्सवाद सही है या नहीं है. लेकिन जब तक गरीब का शोषण होता रहेगा उनके लिए कुछ करना चाहिए।

आज विश्व में भारत की पहचान का एक बहुत बड़ा कारण महात्मा गाँधी हैं। महात्मागाँधीजी द्वारा किये गये कार्यो और उनके द्वारा बताये गये सिद्धान्तों का अनुसरण सारे

विश्व में होता है और भारत के नागरिक होने के कारण हमें उनके कार्यो और विचारों के सही परिप्रेक्ष्य को समझना चाहिए और उस पर गर्व करना चाहिये।

1.2 जीवन परिचय

महात्मा गाँधी का जन्म 2 अक्टुबर, 1889 को गुजरात प्रांत के पोरबन्दर में हुआ था। इनके पिता करमचंद गाँधी ने 4 शादियां की थी और 3 पत्नियों की मृत्यु के पश्चात् चौथी पत्नी पुतली बाई से उन्हें 3 पुत्र और 1 पुत्री हुए। करमचंद गाँधी की पहली पत्नी के भी 2 पुत्रियां थी। उनके 3 पुत्रों में सबसे बड़े लक्ष्मीदास, दूसरे कृष्णदास और तीसरे मोहनदास थे। तीसरे और सबसे छोटे पुत्र मोहनदास ही महात्मा बने। गाँधीजी जाति से बनिया थे तथा जूनागढ़ राज्य के कुटियाना जगह से सम्बन्धित थे। गाँधीजी के पडदादा हरजीवन गाँधी ने 1777 में पोरबन्दर में एक मकान खरीदा और व्यापारी के रूप में वे वहाँ स्थापित हुए। हरजीवन गाँधी के पुत्र उत्तमचंद महात्मा गाँधी के दादा पोरबन्दर के शासक राणा सिंह जी के दीवान नियुक्त हुए। 1647 में उत्तमचंद इस राज्य के 28 वर्ष तक दीवान बने रहे। करमचंद गाँधी की शिक्षा बहुतकम हुई थी, लेकिन उन्हें राज्य के कार्यो और व्यक्तियों का पर्याप्त अनुभव था। उनकी ख्याति एक ईमानदार, प्रतिबद्ध, सक्षम एवं आज्ञाकारी प्रशासक के रूप में थी। महात्मा गाँधी की माता पुतली बाई एक धार्मिक एवं मखत महिला थी। वे अनेक व्रतों और उपवासों से मजबूत बनी थी तथा वे आंतरिक रूप से सशक्त महिला थी। महात्मा गाँधी ने माना कि उनके जीवन के व्यक्तित्व में जो कुछ शुद्धता है वह उनकी माता की देन है। महात्मा गाँधी ने 6 वर्ष की उस में पढ़ाई आरम्भ की और राजकोट के तालिका स्कूल में शिक्षा प्राप्त की, शिक्षा के आरम्भिक दिनों में वे एक भीरू बच्चे थे। अन्य बच्चों से दोस्ती करने की अपेक्षा स्वयं तक सीमित रहते थे। वे प्रकृति से झूठ व फरेब से परे थे। 1887 में महात्मा गाँधी ने मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की और उनको परिवार के मित्र माउजी दवे ने यह सुझाव दिया कि उन्हे कानून की षिक्षा प्राप्त करने के लिए इंग्लैण्ड जाना चाहिए ताकि वे बेरिस्टर बन सके और वापसी में अपने पिता का स्थान ले सके।

4 सितम्बर, 1888 को वे पानी के जहाज से इंग्लैण्ड के लिए रवाना हो गये। 3 वर्ष तक उन्होंने इंग्लैण्ड में रहकर कानून की शिक्षा प्राप्त की और पुन: भारत लौट आये। उन्होंने भारत में वकालात करने की कोशिश, की लेकिन वे अधिक सफल न हुए। उनमें सार्वजनिक भाषण देने की कला का अभाव था और वे न्यायालय के जज के समक्ष अपने तर्को को सही प्रकार से प्रस्तुत नहीं कर पा रहे थे। ऐसे समय उन्हें दक्षिण अफ्रीका जाने का न्योता मिला। दक्षिण अफीका में एक मुस्लिम भारतीय व्यापारी अब्दुला ने उन्हें अपना मुकदमा लड़ने के लिए आमंत्रित किया। मई 1893 में महात्मा गांधी डरबन में पहुँचे। वहाँ एक रेल यात्रा के दौरान उन्हें रंगभेद का सामना करना पड़ा और इस रंगभेद की नीति को उन्होंने बाद में कई स्थानों पर एक भयावह रूप में देखा। धीरे-धीरे महात्मा गांधी ने दक्षिण अफ्रीका सरकार की रंगभेद नीतियों के विरूद्ध बढ़ती जन चेतना को संगठित रूप प्रदान किया। दक्षिण अफ्रीका में महात्मा गाँधी 1915 तक रहे और इस बीच उन्होंने न केवल अपनी राजनीति को विकसित किया अपितु राजनीतिक संगठन बनाया, राजनीतिक विरोध के स्वरूप का निर्धारण किया तथा राजनीतिक विरोध को जनता और विश्व के कोने-कोने तक फैलाने के सफल प्रयास का तरीका सीख लिया। राजनीति में सफल होने के बावजूद उन्होंने स्वयं के साथ प्रयोग करना नहीं छोड़ा। इसे उन्होंने " सत्य के साथ प्रयोग " नाम दिया। यह 1925 में उनके द्वारा लिखी गई आत्मकथा का शीर्षक भी था। दक्षिण अफ्रीका के प्रवास के दौरान हड़तालें की,

अहिंसात्मक संघर्ष किया, कई अखबार निकाले, आश्रमों की स्थापना की और एक पेष्फलेटर के रूप में ख्याति प्राप्त की। इसी दौरान उन्होंने अपनी दार्शनिक सोच को पहली बार एक पुस्तक "हिन्द स्वराज्य" में प्रस्तुत किया। महात्मा गाँधी ने 1909 में इस पुस्तक को लिखा यह पुस्तक 20 छोटे-छोटे अध्यायों में विभक्त है। 11 अध्यायों में उस समय के इतिहास के परिप्रेक्ष्य में टिप्पणियाँ है, बाकी में दार्शनिक प्रश्नों पर टिप्पणियां है। यह पुस्तक इंग्लैण्ड से दक्षिण अफ्रीका जाते समय जहाज पर 13 से 22 नवम्बर, 1909 में दस दिनों के भीतर गुजराती भाषा में लिखी गयी। आज इस पुस्तक को आधुनिकता की प्रमुख आलोचना की पुस्तक के रूप में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है।

1915 में भारत लौटने के पश्चात् महात्मा गाँधी ने 1947 तक भारतीय राजनीति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1920 से 1947 तक का समय गाँधी युग के रूप में जाना जाता है। भारत आने के पश्चात् गांधीजी ने गोपाल कृष्ण गोखले की सलाह पर एक वर्ष तक भारत का दौरा किया जिससे कि वह भारत के आम आदमियों की सभी समस्याओं को जान सके और भारतीय समाज के बारे में समझ सके । भारत में आने से पूर्व उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में सत्ता के विरोध का एक नया और सफल हथियार "सत्याग्रह" खोज लिया था। उन्होंने भारत की आजादी की लड़ाई में इसका सफलतापूर्वक प्रयोग किया। भारत में महात्मा गाँधी ने कई आन्दोलनों का सफलतापूर्वक नेतृत्व प्रदान किया। इसमें सबसे पहला बड़ा आन्दोलन 1917 में चम्पारण में हुआ। उसके पश्चात् 1919 का खिलाफत आन्दोलन, 1920, का असहयोग आन्दोलन, 1930 का नमक सत्याग्रह आन्दोलन एवं सविनय अवज्ञा आन्दोलन, 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन आदि प्रमुख हैं। महात्मा गाँधी द्वारा भारत में किये गये इन आन्दोलनों के विस्तार में न जाते हुए हम यह कह सकते है कि कुछ प्रवृतियाँ इन आन्दोलनों को विशिष्टता प्रदान करती है ।

(1) महात्मा गाँधी ने राष्ट्रीय आन्दोलन की राजनीतिक चेतना को सकारात्मक रूप से जानने व संगठित करने का अभूतपूर्वकार्य किया।

(2) इन आन्दोलनों के माध्यम से राजनीति से आम आदमी को जोड़ने का प्रयास किया। उन्होंने अंग्रेजी के बजाय हिन्दुस्तानी भाषा का प्रयोग, खादी का प्रचलन, महिलाओं को आन्दोलन से जोड़ना, भारतीय पूँजीपतियों का सहयोग और अन्तर्राष्ट्रीय जगत को निरन्तर अखबारों के माध्यम से अपने कार्यो से प्रभावित किया।

(3) राष्ट्रीय आन्दोलन के सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक दल कांग्रेस को जनतांत्रिक संगठन बनाया और कांग्रेस की सदस्यता के लिए बनाये गये नियमों का निरूपण किया जो आज भी दल का सदस्य बनाने के लिए आवश्यक नियम माने जाते है।

(4) इन आन्दोलनों में नेतृत्व देने की एक नई शैली विकसित की जिसमें नेतृत्व और सामान्य जनता के भेद को समाप्त किया। वे मेक्स वेबर के करिश्माई नेतृत्व का जीता जागता उदाहरण हैं।

1947 में भारत के स्वतंत्र होने के समय देश के बँटवारे के कारण साम्प्रदायिक दंगे हो रहे थे। 15 अगस्त 1947 को भारत आजादी के जश्न में डूबा था। महात्मा गाँधी आजादी का जश्न न मनाकर बंगाल में नोआखली साम्प्रदायिक दंगे रोकने में लगे हुए थे। 30 जनवरी, 1948 को उनकी

हत्या कर दी गई । उनका जीवन एक संत का जीवन था और उनका यह कहना सही था कि उनका जीवन ही उनका संदेश है । उनके कई वक्तव्य दुनिया भर में बार-बार उद्धृत किये जाते हैं जैसे किसी भी नीतिगत निर्णय करने के बारे में भ्रम पैदा हो रहा हो तो उसका एकमात्र तरीका मापदण्ड यह है कि वह निर्णय लेने से पूर्व अपनी आँखें बंद कर के सोचे कि क्या इस निर्णय से किसी गरीब की आँख का एक आँसू पूछ जाएगा? अगर ऐसा है तो वह निर्णय सही है। इसी प्रकार आज पर्यावरण की रक्षा के बारे में चिन्तित लोगों के बारे में उनका मंत्र था कि पृथ्वी के पास सभी मनुष्यों की आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता है लेंकिन किसी एक व्यक्ति के लालच को पूर्ण करने का इसमें सामर्थ्य नहीं है। इसलिए विकास की यात्रा का आधार मनुष्य की आवश्यकता होनी चाहिए, लालच नहीं।

1.3 गांधी चिन्तन पर प्रभाव

महात्मा गाँधी ने अपना बचपन भारत में बिताया तथा वे वकालात की शिक्षा के लिए इंग्लैण्ड गये थे। उनका कार्यक्षेत्र 20 वर्षो तक दक्षिण अफ्रीका रहा। 1915 में भारत लौटने के पश्चात् अपनी मृत्यु तक वे भारत में रहे और भारत की आजादी के लिए काम करते रहे। अपने जीवन में उन्होंने कई नये अनुभव प्राप्त किये और उनमें अनुभवों से सीखने की अद्भुत क्षमता थी। उन्होंने किसी भी अनुभव को न सीखने के योग्य नहीं माना। उन्होंने न केवल अपने जीवन के अनुभवों से जो कुछ सीखा उसे अपने विचारों में ढाल दिया, अपितु उसे जीवन में भी उतारने की कोशिश की। कर्म और चिन्तन के इस सटीक सम्मिश्रण से उनका चिन्तन अनुभव जन्य और आदर्शवादी सिद्ध हुआ। अपने बचपन में उन्होंने किसी भी सामान्य हिन्दु परिवार के बच्चों की तरह राम, कृष्ण, महाभारत एवं पुराणों की कथाएं सुनी। भारतीय संस्कृतियों के मूल्यों से ओतप्रोत इन कथाओं ने उन्हें प्रेरणा दी। बचपन का प्रभाव था कि वे उम्र भर राम को अपना आदर्श मानते थे और उसे उन्होंने राम नाम को एक अद्भुत आंतरिक शक्ति प्रदान करने वाला प्रकाश पुंज माना।

उनका परिवार एक वैष्णव परिवार था। इसलिए भक्ति और संतों का उन पर काफी प्रभाव पड़ा। जिसमें नरसिंह मेहता का सुप्रिय भजन “वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीर पराई जानी रे” उनका सर्वाधिक प्रिय था। महात्मा गाँधी अपनी युवावस्था में जैन धर्म से भी काफी प्रभावित हुए और इंग्लैण्ड जाने पर उन्होंने ईसाई धर्म को भी समझने का प्रयास किया। दक्षिण अफ्रीका में उनके यहूदी और अंग्रेज मित्र भी बने उनका तथा वहाँ मुस्लिम मित्रों ने भी उनका साथ निभाया। इस प्रकार वे अनेक धर्मों व संस्कृति के माध्यम से विभिन्न व्यक्तियों के सम्पर्क में आये और उनसे कुछ न कुछ बात ग्रहण की।

उनके चिन्तन पर पड़ने वाले प्रभावों को दो भागों में विभक्त कर सकते है - पूर्वी प्रभाव तथा पश्चिमी प्रभाव।

1.3.1.1 पूर्वी प्रभाव

1. पूर्वी धार्मिक प्रभाव:- महात्मा गाँधी के जीवन पर हिन्दू धर्म जिसमें विशेष रूप से वैष्णव धर्म का प्रभाव पड़ा। उन्होंने सारी उम्र स्वयं को एक हिन्दू मानने पर बल दिया। उनका कहना था कि एक अच्छा हिन्दू ही एक अच्छा मुस्लिम और अच्छा ईसाई हो सकता है और अच्छा धार्मिक व्यक्ति बन सकता है।

   हिन्दू धर्म में भक्त परम्परा को उन्होंने सबसे अधिक महत्त्व दिया और उसका प्रभाव उन पर यह था कि उन्होंने अपना व्यवहार भी बनाए रखा और स्वयं अहंकार पर नियन्त्रण रखा। हिन्दू धर्म के अलावा जैन धर्म उनके जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण था। अहिंसा का सबसे अधिक महत्त्व जैन धर्म में ही है। महात्मा गाँधी ने धर्म के अलावा जीवन के सभी पहलुओं में अहिंसा को महत्त्व दिया है। महात्मा गाँधी के योगदान का विशेष महत्त्व अहिंसा को राजनीति के क्षेत्र में प्रयोग करना था। गाँधी का धर्म नैतिकता से पूर्ण था। उनका अहिंसा के प्रति लगाव जीवन के सभी क्षेत्रों में परिलक्षित होता था। गांधी जी इस्लाम के समानता के सिद्धान्त से ही प्रभावित थे। वे एक मुस्लिम व्यापारी का मुकदमा लड़ने के लिए दक्षिण अफ्रीका गये थे।
2. पूर्वी गेर धार्मिक प्रभाव :- महात्मा गाँधी अपने समय के कई व्यक्तियों के कार्यो एवं चिन्तन से प्रभावित थे। जिसमें प्रमुखत: गोपाल कृष्ण गोखले का नाम आता है जिन्हें उन्होंने अपना राजनीतिक गुरू माना। महात्मा गांधी ने गोपाल कृष्ण गोखले की तरह अंग्रेजी कानून का अध्ययन किया और उसमें विशिष्टता प्राप्त की। गोपाल कृष्ण गोखले की तरह उन्होंने माना कि समस्याओं का समाधान जहाँ तक हो सके संवैधानिक तरीकों से किया जाना चाहिए और यदि शासन का विरोध प्रकट करना हो तो संवैधानिक तरीकों से विरोध करने चाहिए जैसे ज्ञापन आदि प्रस्तुत करना, सार्वजनिक सुझाव तथा अखबारों के माध्यम से विचारों को व्यक्त करना इत्यादि शामिल है। इन सभी तरीकों के माध्यम से सरकार से, अपनी बात मनवाने का प्रयास किया जाना चाहिए तथा आन्दोलन करने से पूर्व सभी प्रकार के संवैधानिक प्रयास करने चाहिये। महात्मा गाँधी कानून तोड़ने और आन्दोलन करने के बावजूद हमेशा मानते थे कि विरोधी पक्ष से बातचीत करने के दरवाजे हमेशा खुले रखने चाहिए। महात्मा गाँधी गोपाल कृष्ण गोखले के विचारों से प्रभावित थे किन्तु वे गोपाल कृष्ण गोखले से कुछ कदम आगे थे। उन पर उग्रवादी प्रभाव भी पड़ा। वे अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कानून भंग करने को भी तैयार थे। तिलक द्वारा लोकप्रिय बनाया गया स्वदेशी तथा स्वराज के नारों को आत्मसात् कर उन्होंने अपने आन्दोलन को सार्थक बनाया। उन्होंने माना कि तिलक द्वारा राजनीति को एक जन आन्दोलन बनाने को सर्व व्यापकता प्रदान की। इस कारण तिलक की मृत्यु के पश्चात गाँधी भारत में जन आन्दोलन के प्रतीक बन गए।

1.3.2 पश्चिमी प्रभाव

1. पश्चिमी धार्मिक प्रभाव:- 1888 में इंग्लैंड जाने पर महात्मा गाँधी अंग्रेजी सभ्यता के नजदीक आये और प्रारंभ में उन्होंने अंग्रेजी सभ्यता के नजदीक अपने आपको ढालने का प्रयास किया। लेकिन शीघ्र ही उनका मोह भंग हो गया। ईसा के इस सन्देश की अगर तुम्हारे दायें गाल पर

कोई थप्पड़ मारे तो बायां गाल भी आगे कर दो, से काफी प्रभावित थे। ईसाई धर्म के सामाजिक सुधार के सन्देश से वे काफी प्रभावित थे। कुछ लेखकों ने उन्हें एक सुधारवादी ईसाई बताया है।

2. पश्चिमी गैर धार्मिक प्रभाव:- महात्मा गाँधी ने अपनी आत्मकथा में जिन प्रमुख पुस्तकों का उल्लेख किया है, वे तीन पश्चिमी विचारकों द्वारा लिखित है:-

पहली पुस्तक रूसी विचारक टालस्टाय की "दि किगडम ऑफ नॉड ड़ज विथिन यू" है, इस पुस्तक में उन्होंने प्रेम का सन्देश दिया हैं।

दूसरी पुस्तक रस्किन की "अनटू दिस लास्ट" है जिसका उन्होंने गुजराती में सर्वोदय नाम से अनुवाद किया। इस पुस्तक से उन्होंने 3 शिक्षाऐं प्राप्त कीं :

प्रथम, सभी के हित में खुद का हित।

द्वितीय, एक वकील का कार्य और एक नाई का कार्य समान है क्योंकि प्रत्येक को अपना जीवन यापन करने का समान अधिकार है।

तृतीय, एक श्रमिक का जीवन सबसे अच्छा जीवन है।

तीसरी पुस्तक थी हेनरी डेविड थोरो की "ऐसेज ऑन सिविल डिस ओबिडियेन्स" इस पुस्तक में उन्होंने राज्य का विरोध करने के आन्दोलन का स्वरूप पहचाना तथा कुछ वर्षो तक वे सविनय अवज्ञा के नाम से अपना आन्दोलन चलाते रहे।

इस महत्वपूर्ण पुस्तकों के अलावा महात्मा गाँधी ने 20वी शताब्दी के प्रारंभ में प्रचलित लगभग सभा विचारक तथा पश्चिमी विचारधाराओं का अध्ययन किया और उन पर अपनी स्वतंत्र टीका-टिप्पणी की। उन्होंने समाजवाद, साम्यवाद, लोकतंत्र, उदारवाद इत्यादि सभी पर अपनी टिप्पणियां लिखी है। बेन्थम के उपयोगितावाद के वे कटु आलोचक थे। गाँधीजी के अध्ययन का दायरा भी बहुत विस्तृत था तथा उन्होंने अपने जीवन काल में बहुत लिखा भी है। उनके निरन्तर अध्ययनरत रहने का प्रमुख कारण ही उन्होंने लगभग सभी विषयों पर अपने विचारों की अभिव्यक्ति की।

1.4 दार्शनिक विचार

सबसे पहले गोपीनाथ धवन ने महात्मा गाँधी के जीवनकाल में 1944 में उनके राजनीतिक दर्शन पर पहला शोध प्रस्तुत किया, जो बाद में "पोलिटिकल फिलोसोफी ऑफ महात्मा गांधी" के नाम से प्रकाशित हुआ। 50 के दशक में जोन वी बोटूँरा ने महात्मा गाँधी के सत्याग्रह की तकनीक को द्वन्हात्मिकता के सिद्धान्त से समझने का प्रयास किया और उसकी तुलना मार्क्सवादी द्वन्हात्मिकता से की है। 60 के दशक में जब महात्मा गाँधी द्वारा रचित लेखन का भारत सरकार द्वारा संकलन किया गया, तब 1969 में उनके द्वारा लिखित साहित्य को सम्पूर्ण गांधी वांड्गमय के रूप में प्रकाशित किया गया। जिसमें 100 ग्रन्थ थे तब सबसे पहली बार शोधकर्ताओं को गाँधी विचारों का संकलन मिला। 1960 के दशक में ही विश्व में आये नये परिवर्तनों विशेष रूप से पूँजीवादी प्रभुत्व और आधुनिकता की तानाशाही प्रवृति के विरूद्ध आन्दोलन आरम्भ हुआ तथा नये आजाद हुए देशों ने भी अपनी आवाज को बुलन्द करना आरंभ किया। ऐसे समय में गाँधी के विचारों

पर लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ और उनके विचारों को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने की कोशिश की गयी इसमें राघवन अय्यर, बुद्धदेव भट्टाचार्य, बी.एन गांगुली, रामाश्रयराय इत्यादि प्रमुख है। जिन्होंने 70 के दशक में गाँधी को एक विचारक के रूप में प्रस्तुत किया और उन्हें किसी भी अन्य विचारक के समक्ष प्रबुद्ध व्यवस्थित वैकल्पिक विचार देने वाला दार्शनिक बताया 80-90 के दशक में गाँधी के विचारों की तुलना समकालीन पश्चिमी विचारधाराओं से की गई। रिचर्ड ऐटेनवेरो ने गाँधी फिल्म से 80 के दशक में गाँधी का महत्त्व बताया है। जिन लेखकों ने गाँधी को इस आधुनिक समाज में प्रासंगिक तथा विचारों को समसामयिक का महत्व बताया। उनमें प्रमुख है- भीखू पारेख, रोनाल्ड स्वर्क, थामस फेश्वम दत्त, वी.आर मेहता, नरेश दाधीच, मार्गरेट चटर्जी, डगलस एलन इत्यादि।

आज गाँधी को एक दार्शनिक के रूप में माना जाता है तथा विद्वतजन उनके विचारों से उत्तर आधुनिक/आधुनिक वैकल्पिक विवाद निवारण, वैकल्पिक आर्थिक सोच, पर्यावरण, नारीवाद इत्यादि के सन्दर्भ में परीक्षण कर रहे है।

गाँधी के दर्शन को कुछ लोग जैसे बी.एम. दत्ता, धीरेन्द्र मोहन दत्त वैष्णव दार्शनिक मानते है। हालांकि गाँधी ईश्वर को नहीं मानकर उसको विचार और विधि का स्वरूप मानते है। गाँधी मानते है कि ईश्वर को परिभाषित करना असंभव है, लेकिन हम उनके अस्तित्व को महसूस करते है और केवल उसका ही अस्तित्व है। गाँधी ईश्वर को सत्य के रूप में भी परिभाषित करते है। 1925 में उन्होंने कहा कि ईश्वर और सत्य दोनों एक दूसरे की परिवर्तनीय इकाईयाँ हैं। 1931 में स्वीटजरलैंड में गाँधी ने कहा कि मैं यह चाहूँगा कि ईश्वर सत्य है की अपेक्षा सत्य ईश्वर है कहना अधिक उपयुक्तता होगा। क्योंकि अनीश्वरवादी के लिए इसे अपनाना अधिक सुविधाजनक होगा। गाँधी ईश्वर की सत्ता का विवेक से संचालन नहीं करना चाहते थे। यह ब्रह्मांड नियमों से चल रहा है और उन नियमों को बनाने और लागू करने का कार्य ईश्वरीय सत्ता के अलावा कोई शक्ति नहीं कर सकती। रोम्या रोला उन्हें एक रहस्यवादी मानते है क्योंकि गाँधी किसी भी निर्णय को लेने से पूर्व अपने अन्दर की आवाज का हवाला देते थे और अन्दर की आवाज उन्हें सही रास्ते पर ले जाती थी। महात्मा गाँधी ने अपने जीवन में तप के द्वारा अपने आप व्यक्तित्व को इतना शुद्ध बना लिया था कि उनकी आवाज में ईश्वर की आवाज का आभास होता था। दार्शनिक सिद्धान्त में महात्मा गाँधी सत्य और अहिंसा को सर्वाधिक महत्व देते थे।

1.4.1 सत्य

महात्मा गाँधी का सिद्धान्त सत्य और अहिंसा पर आधारित है। उनके अनुसार वास्तविकता में केवल सत्य का अस्तित्व हैं। उनके सत्य की अवधारणा सैद्धान्तिक स्तर पर प्लेटो के नजदीक मानी जा सकती है लेकिन यथार्थ में अस्तित्ववाद के नजदीक है। यूनानी विचारकों ने सत्य को सबसे महत्त्वपूर्ण अवधारणा माना है और जिसकी परछाई इस दुनिया में यथार्थ के रूप में नजर आती है। उस निरपेक्ष सत्य के आधार पर ही सिद्धान्त का निर्माण किया जाता है और व्यक्ति को उसके जीवन में सत्य तक पहुँचने का प्रयास किया जाना चाहिए। महात्मा गाँधी इस निरपेक्ष

सत्य को स्वीकार करते है क्योंकि अस्तित्व निरपेक्ष है। लेकिन उस निरपेक्ष सत्य को व्यक्ति के सत्य में मिलने का आधार व्यक्ति की चेतना का सर्वोच्च स्तर को प्राप्त करना है। जब तक ऐसा न हो व्यक्ति के सत्य को सापेक्षवादी सत्य माना जायेगा और हर व्यक्ति का सत्य ही उसका अंतिम सत्य होगा। यह धारणा अस्तित्ववादी धारणा से मिलती जुलती है। निरपेक्ष सत्य को आत्मसात करने के लिए महात्मा गाँधी अपने स्व को निरन्तर प्रयोगों के द्वारा तथा तप के माध्यम से उच्च चेतना युक्त बनाया। इसलिए गाँधी ने व्रत, उपवास, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह आदि ईश्वर को अपनाने पर बल दिया है। जिससे व्यक्ति की आवाज बन सके। इस प्रकार वे निरपेक्ष सत्य के पराभौतिक विचार और सापेक्ष सत्य के यथार्थवादी विचार का सम्मिश्रण प्रस्तुत करते है। वे सत्य को केवल आध्यात्मिक क्षेत्र में ही महत्त्व नहीं देते है बल्कि राजनीतिक क्षेत्र में भी इसे बनाये रखते थे। उनके अनुसार राजनीति और समाज में किये जाने वाले कार्यो में सत्य परिभाषित होना चाहिये। सत्य के अभाव में मनुश्य उद्देश्यहीन हो जाता है और अपने कार्यो से समाज का हित नहीं कर पाता हैं।

1.4.2 अहिंसा

महात्मा गाँधी की पहचान उनकी अहिंसा की प्रतिबद्धता के कारण है। उन्होंने मानव इतिहास में पहली बार अहिंसा का उपयोग राजनीतिक क्षेत्र में सफलतापूर्वक किया और अहिंसा को एक आधुनिक क्षेत्र बनाकर राजनीति व सामाजिक क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कार्य किया है। स्वयं के और समाज के संघर्ष निवारण के लिए अहिंसा का प्रयोग किया गया जिसे विश्व संघर्ष निवारण के लिए स्वीकार्य और सफल तकनीकी माना जाता है। साधारणतया अहिंसा का अर्थ चोट न पहुँचाना और हत्या न करना माना जाता है और विस्तृत स्वरूप देने पर इसका अर्थ है किसी जीव को मन, वचन और कर्म से दुःख नहीं पहुँचाना है। अहिंसा हिन्दू बौद्ध धर्म और जैन धर्म में किसी न किसी रूप में आवश्यक तत्व है। मोक्ष प्राप्त करने के लिए पातंजलि जैसे योग शास्त्रियों ने इसे आवश्यक माना है। जैन धर्म में इसको अत्यधिक महत्त्व दिया है और हिंसा को कई श्रेणियों में जैसे आरम्भ भज और अनारंभ भज यानि जान बूझकर या अनजाने में की जाने वाली हिंसा के रूप में देखा जाता है। जैन धर्म में व्यवहार में भी इसे लागू करने पर बल दिया जाता है। बौद्ध धर्म में प्रत्येक साधु के लिए अहिंसा का पालन करना आवश्यक है। महाभारत में अहिंसा को सर्वाधिक महत्व दिया गया है और क्षमा को वीरों का आभूषण माना है। महात्मा गाँधी ने टॉल्सटॉय की पुस्तक से अहिंसा के महत्व को जाना और बाद में भारतीय परम्परा में अहिंसा के कई उदाहरणों से इसका महत्व समझा। जैसे पौराणिक कथा में भक्त प्रह्लाद के उदाहरण में उन्होंने गीता की व्याख्या करते हुए इसे अहिंसक ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित किया। महात्मा गांधी ने 1916 में अहिंसा में नकारात्मक और सकारात्मक भेद प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार अहिंसा का अर्थ है किसी भी जीव को शारीरिक या मानसिक रूप में पीड़ा न पहुँचाना।इसके सकारात्मक रूप में है - प्रेम और दान। सकारात्मक रूप में अहिंसा की पालना करने पर व्यक्ति को अपने शत्रु से प्रेम करना आवश्यक है तथा ऐसी अहिंसा सत्य और अभय को सम्मिलित करती है। इस प्रकार महात्मा गाँधी की अहिंसा का अर्थ

नकारात्मक पक्ष तक सीमित नहीं था, वे अहिंसा के सकारात्मक पक्ष को अधिक महत्व देते है जिसमें अपने विरोधी को प्रेम करना सम्मिलित है और इसी कारण वे यह मानते थे कि पाप से घृणा करो पापी से नहीं। उनका दृढ़ विश्वास था कि अहिंसा न केवल सार्वभौमिक रूप से लागू की जा सकती है अपितु यह अंतिम रूप से सही सिद्ध होती है तथा इसका उपयोग करने वाला ही अंतिम विजय प्राप्त करता है। उनकी यह मान्यता थी कि मनुष्य मूलत: देवीय स्वरूप होता है, पर उसमें पशुता के अंश मौजूद है और इसलिए हिंसा करना बहु दा मनुष्य का स्वभाव बन जाता है लेकिन वे यह भी मानते थे कि निरन्तर प्रयास से मनुष्य अपने जीवन में बहु तकुछ हद तक अहिंसक बना रह सकता है । सत्य और असत्य, हिंसा और अहिंसा की लड़ाई मनुष्य तथा समाज में निरन्तर चलती रहती है। महात्मा गाँधी के अनुसार अहिंसा तीन तरह की हो सकती है :-

1. कायरों की अहिंसा जो दुर्बलता के कारण हिंसा का सहारा नहीं ले सकता।
2. राजनीतिक तरीके के रूप में अहिंसा का प्रयोग।
3. अहिंसा के प्रति आत्म प्रतिबद्धता जो आत्मानुशासन व आंतरिक आत्मानुभक्ति से आती है।

गाँधी कायर की अहिंसा को अहिंसा नहीं मानते है। राजनीति या सामाजिक क्षेत्र में सफलता के लिए की जाने वाली सर्वश्रेष्ठ अहिंसा नहीं है। जब तक मनुष्य आंतरिक रूप से अहिंसा के प्रति प्रतिबद्ध न हो, सर्वश्रेष्ठ अहिंसा नहीं हो सकती। गाँधी व्यावहारिक अहिंसा को चार क्षेत्रों में इंगित किये है :-

1. सत्ता के विरूद्ध अहिंसा का प्रयोग।
2. आंतरिक उपद्रवों के मध्य अहिंसा का प्रयोग।
3. बाहा आक्रमण में अहिंसा का प्रयोग
4. घरेलू क्षेत्र में अहिंसा का प्रयोग।

1.5 सत्याग्रह

राजनीतिक दर्शन में महात्मा गाँधी की प्रमुख देन थी सत्याग्रह। सत्याग्रह का शाब्दिक अर्थ है सत्य के प्रति आग्रह। सत्य के प्रति यह आग्रह व्यक्ति को शक्तिशाली बनाता है। इस आग्रह को बनाये रखने के लिए एक मात्र साधन है अहिंसा। दक्षिण अफ्रीका में सरकार का प्रतिरोध करते समय महात्मा गांधी ने अपने आन्दोलन को निक्रिय प्रतिरोध का नाम दिया था। धीरे-धीरे महात्मा गाँधी को यह एहसास हु आ कि उनके द्वारा चलाया गया आन्दोलन निक्रिय शब्द से पूर्णतया नहीं समझा जा सकता क्योंकि उनके आन्दोलन में कुछ विशेषताएं ऐसी थीं जो उसे निक्रिय प्रतिरोध से अलग करती थी। महात्मा गाँधी का सविनय अवज्ञा आन्दोलन उनके सच्चे भाव और उनके ठोस सिद्धान्त पर आधारित था जिसमें तिरस्कार नहीं था। निक्रिय प्रतिरोध कमजोरों का हथियार माना जाता था। महात्मा गाँधी के जीवन में हिंसा की कोई गुंजाइश नहीं थी। अपने आन्दोलन को अवधारणात्मक पहचान देने के लिए गाँधीजी ने अपने पत्र “इण्डियन ओपिनियन” में पाठकों से इस बारे में सुझाव माँगें । मगनलाल गाँधी ने ”सदाग्रह” शब्द सुझाया। गाँधीजी ने इसको व्यापक बनाते

हु ए अपने आन्दोलन का नाम “सत्याग्रह “ दिया। यह दो शब्दों से मिलकर बना है – सत्+आग्रह। आज सारी दुनिया में अहिंसक प्रतिरोध को सत्याग्रह के नाम से जाना जाता है। गाँधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में किये गये आन्दोलनों के इतिहास को सत्याग्रह का इतिहास' नामक पुस्तक में वर्णित किया गया है। गाँधीजी सत्याग्रह को एक क्रमिक विकास के रूप में देखते थे। उनके अनुसार व्यक्ति स्वय को तप के द्वारा उत्कृष्ट बनाने के लिए निरन्तर कोशिश करता है तथा चेतना के उच्च स्तर को प्राप्त करता है। वह निक्रिय प्रतिरोध को गरीबों का हथियार मानते थे और सत्याग्रह को बलवानों का अस्त्र मानते थे। इसमें अहिंसा आवश्यक तत्त्व थी। सत्याग्रह का उद्देश्य सत्य को प्राप्त करना है और उसे किसी भी कीमत पर त्यागा नहीं जा सकता। सत्याग्रह का प्रयोग करने वाला और कानून का विरोध करने वाला हर व्यक्ति परेशानी झेलने को तैयार रहता है। वास्तव में सत्याग्रही कानून की पालना करने वाला होता है और वे उसी कानून के विरोध की बात करते है जो नैतिकता का विरोधी होता है। गाँधी जी के लिए नैतिकता सर्वोच्च थी। सत्याग्रह के व्यावहारिक पक्ष को स्पष्ट करते हु ए गाँधी जी मानते थे कि सत्याग्रह करने वाले को अपनी मूल माँगों से आगे नहीं बढ़ना चाहिए। उनका विचार था कि सत्याग्रह से प्राप्त सफलता को बनाये रखने के लिए निरन्तर सत्याग्रही बने रहना आवश्यक है। हेनरी डेविड थोरो के विचारों से प्रभावित होते हु ए गाँधीजी मानते थे कि व्यक्ति सबसे पहले है और उसको नैतिक मूल्यों को बनाये रखने के लिए हमेशा संघर्षरत रहना चाहिए । अपने अधिकारों की रक्षा के लिए सविनय अवज्ञा आन्दोलन का प्रयोग करना चाहिए और इसके परिणाम को भुगतने के लिए तैयार रहना चाहिए। गांधीजी के अनुसार व्यक्तिगत हितों के लिए सत्याग्रह नहीं करना चाहिए। सत्याग्रह का प्रयोग हमेशा जन-हिताय, जन-सुखाय होना चाहिए। सत्याग्रह का प्रयोग करते समय भी महात्मा गाँधी विरोधी पक्ष से निरन्तर बात-चीत करने पर बल देते थे और सभी प्रयासों में विफल होने पर ही सत्याग्रह प्रयुक्त करने की सलाह देते थे। सत्याग्रह आरम्भ करने से पूर्व सत्याग्रही को लोकमत अपने पक्ष में करना चाहिए। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जिन बुराईयों के विरूद्ध वह संघर्ष करता है वे बुराईयाँ स्वय में विद्यमान न हो। वह आत्मशुद्धी और सत्याग्रह से अपनी लड़ाई जीत सकता है। उसे हमेशा अपने विरोधी से बात-चीत करने के लिए रास्ता खुला रखना चाहिए। गाँधीजी सत्याग्रही बनने की बहु त सी शर्ते बताते है सत्याग्रह के साथ-साथ रचनात्मक कार्य भी करते रहना चाहिए। सेवा तथा प्रेम की भावना के फलस्वरूप ही सत्याग्रह सफल हो सकता है। सत्याग्रह विनम्रता का प्रतीक है और हिंसा का विकल्प है। आमरण अनशन सत्याग्रही का अंतिम हथियार है। जिसका प्रयोग विशेष परिस्थिति में ही किया जाना चाहिए। गाँधीजी ने सत्याग्रह में विभिन्न अस्त्रों का प्रयोग किया था जिस में असहयोग आन्दोलन सबसे महत्वपूर्ण था। वे इसमें हडताल, सामाजिक बहिष्कार, आर्थिक बहिष्कार, धरना, सविनय अवज्ञा, हजरत, उपवास इत्यादि है। वे सत्याग्रह के सकारात्मक पक्ष को महत्त्व देते थे जिसमें केवल विरोध करना ही नहीं अपितु सकारात्मक कार्यक्रम को बनाये रखना भी आवश्यक है। उन्होंने 15 सूत्री सकारात्मक कार्यक्रम बनाये थे जिसमें खादी का प्रचार-प्रसार, ग्रामोधोगों का विकास, ग्राम स्वराज्य की स्थापना, बुनियादी शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, नारी उद्धार, आर्थिक समानता इत्यादि शामिल है।

भारत में आने के पश्चात् गाँधीजी ने कई सत्याग्रह किये। जिसमें अखिल भारतीय स्तर पर किये गये सत्याग्रहों में रोलेटएक्ट के खिलाफ 1919 में किया गया आन्दोलन, खिलाफत आन्दोलन, असहयोग आन्दोलन 1920, 1930 में "सविनय अवज्ञा आन्दोलन" 1940 में व्यक्तिगत सत्याग्रह, 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन प्रमुख है। स्थानीय लोगों के लिए 1917 में चम्पारन, 1918 में अहमदाबाद में श्रमिकों के समर्थन में किया गया, तथा 1924 में त्रवणकोर का सत्याग्रह आदि प्रमुख है।

1.6 आर्थिक विचार

गाँधीजी के आर्थिक विचार भी सत्य और अहिंसा से ओत-प्रोत थे। वे यह मानते थे कि आधुनिकता बड़े-बड़े उद्योगों तथा मशीनीकरण पर आधारित है और ये हिंसा को बढ़ावा देते है। एक आदर्श समाज की रचना के लिए स्वावलम्बी गाँवो की आवश्यकता हैं। व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को सीमित रखे और नैतिक जीवन व्यतीत करें। उन्होंने ग्राम स्वराज्य की कल्पना में कुटीर उद्योगों को अधिक महत्व दिया है तथा कायिक श्रम पर बल दिया है। गाँधीजी मानते थे कि प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति को दिन में कम से कम दो घण्टे शारीरिक श्रम करना चाहिए तभी वह भोजन पाने का अधिकारी है। वे मानसिक और शारीरिक श्रम की समानता के दृष्टिकोणों को स्वीकार करते है। वे उस पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था के विरूद्ध थे जो भौतिकवादी इच्छाओं की पूर्ति के लिए उद्योगों की स्थापना करती है । गाँधीजी साम्यवादी विचारधारा के भी विरोधी थे क्योकि उनके अनुसार वह हिंसा पर आधारित विचारधारा है और व्यवहार में तत्कालीन सोवियत संघ की व्यवस्था के आधार पर यह मानते थे कि यह व्यवस्था केन्द्रीयकृत व्यवस्था करे बढ़ावा देती है, जिसमें शक्ति का केन्द्रीयकरण होता है। गाँधीजी शक्ति के केन्द्रीयकरण को शोषण का आधार मानते है। उनके अनुसार शक्ति का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए और वे इसी भाव को ध्यान में रखकर आर्थिक विकेन्द्रीकरण की वकालात करते थे। उन्होंने पूँजीवाद व साम्यवाद से परे न्यास के सिद्धान्त को अधिक महत्त्व दिया है जिसके अनुसार आर्थिक साधनों पर नियन्त्रण निजी हाथों में होगा। लेकिन वे उसे न्यास मानकार न्यासी के रूप में कार्य करेंगे। पूँजी का उपयोग "सर्वजन हिताय" करे। राजनीतिक क्षेत्र में उन्होंने उपयोगितावाद के स्थान पर सर्वोदय की वकालात की। जहाँ उपयोगितावाद व्यक्ति के अधिकतम सुख की कल्पना करता है वहीं सर्वोदय सभी के उदय की कल्पना करता है। उपयोगिकतावाद में सुख की परिभाषा शारीरिक सुख या इन्द्रियजन्य सुख है। जबकि महात्मा गाँधी के सर्वोदय में सबके उदय में इन्द्रियजन्य सुख के बजाय आत्मिक सुख को सम्मिलित किया है। गाँधीजी अपने आदर्श राज्य को राम राज्य की संज्ञा देते थे जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अहिंसा पर आधारित जीवन का उपयोग करता है और अपने कर्त्तव्यों को पूरा करता है। गाँधीजी का मानना था कि आदर्श समाज एक राज्यविहीन समाज है। जिसमें शक्ति पूर्ण रूप से विकेन्द्रित है और वह स्वावलम्बी गाँवों को शामिल कर बना है जिसमें व्यक्ति का महत्त्व है। लेकिन व्यक्ति का अस्तित्व समाज के बिना संभव नहीं है। उन्होंने व्यक्ति और समाज के मध्य के सम्बन्धों को "सामूहिक वर्तुल" "ओशेनिक सर्किल" के आधार पर समझाया है। जिस प्रकार समुद्र

में पत्थर फेंकने पर हजारों की संख्या में लहरों के वर्तुलद्ध का निर्माण होता है जिनके आकार आधार अलग-अलग प्रकार है किन्तु जिसका केन्द्र एक ही होता है । उसी प्रकार समाज में कई प्रकार के समूह है, जो वर्तुल के रूप में एक दूसरे से जुड़े है। लेकिन उनका केन्द्र व्यक्ति होता है। समूह व्यक्ति के बिना परिभाषित नहीं होता है। वे प्रजातंत्र की व्यवस्था में विश्वास रखते थे और उदारवादी सिद्धान्त को महत्वपूर्ण मानते थे लेकिन उनकी सोच भारतीय परम्परा के मूलभूत सिद्धान्तों पर आधारित थी। वह अपनी संस्कृति और परम्परा की उदारवादी व्याख्या के पक्षधर थे। आधुनिक समय में भारतीयता के प्रतीक थे। उनकी गणना आज विश्व के सर्वाधिक महानतम विचारकों में की जाती है वे केवल भारत के प्रतिनिधि ही न होकर विश्व की मानवता के प्रतीक थे और लोकमंगल के साधक-उपासक थे।

1.7 राजनीतिक विचार

गाँधी स्वयं को एक राजनीतिक विचारक नहीं मानते थे हालांकि उनके दार्शनिक विचारों की पहली व्यवस्थित प्रस्तुति हिन्द स्वराज्य में है। लेकिन उन्होंने कभी भी राजनीतिक गतिविधियों के बारे में अपने विचारों को व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास नहीं किया। उन्होंने माना है कि वे निरन्तर सत्य के रास्ते पर चलते रहे और उस रास्ते पर उन्हें जो सफलताएं मिली उस आधार पर अपने विचारों को संगठित करते रहे। वे सभी राजनीतिक गतिविधियों को नैतिक दृष्टि से देखते थे। उनके अनुसार कोई भी गतिविधि जो नैतिक दृष्टि से नहीं हो उचित नहीं है। चूँकि वे किसी विशेष राजनीतिक दर्शन से सम्बन्धित नहीं थे। इसलिए उनके विचारों में कई बार पारस्परिक विरोध नजर आता है। लेकिन सामान्यत: यह कहा जा सकता है कि वे एक राजनीतिक अराजकतावादी थे जो शक्ति के केन्द्रीयकरण के विरोधी थे और राज्य को सक्रिय केन्द्रीयकरण का सबसे बड़ा उदाहरण मानते थे। वे राज्य के बढ़ते स्वरूप और कार्य को भय से देखते थे। उनके अनुसार एक आदर्श समाज की कल्पना में राज्य का कोई स्थान नहीं था। वे आदर्श समाज को रामराज्य की संज्ञा देते थे। वे यह मानते थे कि राज्य हिंसा का प्रतिनिधित्व करता है और राज्य की बढ़ती शक्ति से सर्वाधिक नुकसान व्यक्ति की अस्मिता को होता है। व्यक्ति के पास आत्मा है राज्य आत्मा विहीन है। गाँधीजी ने कहा था कि ऐसे कानूनों की पालना नहीं करनी चाहिए जे हमारी नैतिक मान्यताओं के विरूद्ध हो। उनके अनुसार राजनीतिक शक्ति अपने आप में एक साध्य नहीं है। राजनीतिक शक्ति का उपयोग समाज के सदस्य को जीवन की सुविधाएं प्रदान करना है उनकी मान्यता थी कि व्यक्ति सम्प्रभू होता है और उसके सम्प्रभूत्व का आधार उसकी नैतिक सत्ता है। गाँधी राज्य और समाज में अन्तर करते थे। उनके अनुसार अगर व्यक्ति समाप्त होता है तो कुछ बाकी नहीं रहेगा। इसलिए व्यक्ति के आधिपत्य को राजनीतिक दर्शन में स्वीकार किया जाना चाहिए। 1916 में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में भाषण देते हुए उन्होंने कहा था कि वे अराजकतावादी है। गाँधी केवल आदर्शवादी विचारक ही नहीं थे उनका उद्देश्य आदर्श प्राप्त करना था। उन्होंने द्वितीय स्तर के राज्य की बात भी की है। जिसमें राज्य एक उदारवादी लोकतांत्रिक राज्य होगा तथा लोक शक्ति का विकेन्द्रीकरण होगा। ऐसे राज्य में अधिकतम शक्तियाँ गाँव के

स्तर पर पंचायत के पास रहेगी। वह गाँव आदर्श गाँव होगा जो आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से स्वायत्त निकाय के रूप में कार्य करेगा। गाँधी के स्वराज्य की कल्पना एक ऐसे देश की कल्पना थी जिसमें सत्ता उस देश के नागरिकों के पास हो तथा वे राजनीतिक रूप से स्वतंत्र हो तथा जिसमें अपने समाज को बदलने की शक्ति और अधिकार समाज के व्यक्तियों के पास हों। ऐसे राज्य में सरकार व्यक्तियों के प्रति उत्तरदायी हो तथा जिसमें गरीब व्यक्ति का शासन हो। गाँधी के स्वराज की अवधारणा आर्थिक और राजनीति दोनों स्तरों पर स्वतंत्रता को बनाये रखने का समर्थन करती है। गाँधी व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा का भी समर्थन करते है। गाँधीवादी अधिकार मूलत: वे अधिकार है, जिसके उपयोग से व्यक्ति अपने मूल्यों को बनाये रख सके और एक नैतिक समाज की स्थापना कर सके। गाँधी स्वतंत्रता के साथ-साथ समानता और न्याय के सिद्धान्त में विश्वास करते थे। इसमें वे न केवल स्त्री-पुरूष समानता अपितु जातिगत समानता, मानसिक और शारीरिक समानता के भी पक्षधर थे। गाँधी हालांकि प्रजातंत्र में विश्वास करते थे। लेकिन उन्होंने हिन्द स्वराज्य में अंग्रेजी संसदीय प्रणाली की आलोचना की और माना है कि अगर भारत इंग्लैण्ड की प्रणाली को अपनाता है तो यह उसके लिए अच्छा नहीं होगा। गाँधीजी के अनुसार ब्रिटिश संसद के द्वारा कोई भी अच्छा कार्य नहीं किया गया है और वह मंत्रियों के प्रभाव से संचालित होती है अत: वह जनता का प्रतिनिधित्व नहीं कर पाती है। पश्चिमी प्रजात्रत का आधार हिंसा है। प्रजातंत्र जो अपने व्यवहार में बिना हिंसा के जीवित नहीं है वह वास्तव में प्रजातंत्र नहीं है। उसमें और फासीवाद में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। बुद्धदेव भट्टाचार्य के अनुसार गाँधी की पश्चिमी प्रजातंत्र की आलोचना तीन प्रमुख कारकों पर आधारित है:

1. पूँजीपतियों द्वारा निर्धन व्यक्तियों का शोषण।
2. पूँजीवाद का विस्तार जो जन सामान्य के शोषण की राह बताता है।
3. गोरी चमड़ी वालों की रंगभेद नीति।

हालांकि गाँधीजी बोअर युद्ध 1899 में अंग्रेजों की तरफ से हिस्सा लिया था। लेकिन वे युद्ध के खिलाफ थे। प्रथम विश्व युद्ध के आते-आते गाँधी पूर्णतया युद्ध विरोधी बन गये। गाँधीजी ने प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध की निन्दा की और कहा कि हिंसा से किसी समस्या का समाधान नहीं होता है। कोई भी राजनीतिक विचारधारा हो और उसके अनुसार आदर्श समाज का निर्माण मूलत: हिंसा के द्वारा होगा तो वह सही विचारधारा नहीं हो सकती है। गाँधीजी शान्ति के पक्षधर थे पर उनकी शान्ति की अवधारणा कोई स्थिर शान्ति नहीं थी। वे शान्ति को सकारात्मक और परिवर्तनशील प्रक्रिया के रूप में देखते थे। जिसमें समस्या का समाधान अहिंसा के माध्यम से किया जाता हैं। गाँधीजी में दृढ़ विश्वास था कि विश्व की समस्या का समाधान केवल अहिंसा के माध्यम से संभव है। गाँधी को मूलत: सत्ता के विरोध का दार्शनिक माना जाता है। सत्ता का विरोध करने पर गाँधी का नाम सम्मान से लिया जाता है। दुर्भाग्यवश: गाँधी के राजनीतिक विचारों पर आधारित आदर्श समाज के निर्माण की पुरजोर कोशिश नहीं की गई। इसलिए गाँधीवादी आदर्श समाज के अस्तित्व में न आने के कारण उनके राजनीतिक दर्शन के व्यावहारिक पक्ष का परीक्षण नहीं किया जा सका।

1.8 महात्मा गांधी का चिंतन मे योगदान

महात्मा गाँधी 20वी शताब्दी के सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक विचारकों में से एक थे, जिन्होंने राजनीतिक चिन्तन में सर्वकालिक योगदान दिया है, जिसे निम्न प्रकार देख सकते है:

1. गाँधी ने राजनीति का विरोध करने के एक नये साधन "सत्याग्रह" की खोज की और उसका सफलतापूर्वक प्रयोग करके भारत को आजादी दिलायी। राज्य सत्ता के विरोध में तथा अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की नीतियों के विरूद्ध होने वाले आन्दोलनों में सत्याग्रह का व्यापक स्तर पर प्रयोग किया जाता है।
2. गाँधी के अहिंसा ओर संघर्ष निवारण की तकनीक का समाज के विभिन्न समूहों और स्थितियों में निरन्तर प्रयोग किया जा रहा है। उसे "वैकल्पिक विवाद निपटारा" में सफलतापूर्वक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। हाल ही में आई भारतीय फिल्म "लगे रहो मुन्ना भाई" में "गांधीगिरी" का इस्तेमाल हुआ है, इसमें गांधी के सिद्धान्त को व्यक्ति के जीवन में छोटी-छोटी समस्याओं के समाधान हेतु उपयोग में लाने का विवरण प्रस्तुत किया गया है। ''गाधीगिरी'' आज लोकप्रिय शब्द बनता जा रहा है जो विरोध प्रकट करने के एक सभ्य तरीके को प्रकट करता है।
3. गाँधी ने आधुनिक समाज के नकारात्मक पक्ष को जाग्रत किया और उसे बचाने के उपाय सुझाये जिनके कारण उन्हें वैकल्पिक सफलता के विचार देने वाले विचारकों में शामिल किया जाता है।
4. उनके न्यासिता सिद्धान्त में अहिंसा से वर्ग संघर्ष को समाप्त किये जाने का तरीका सुझाया है। जिसमें हिंसा का उपयोग नहीं करते हुए समाज में सामाजिक न्याय की स्थापना की जा सके।
5. उनके पर्यावरण सम्बन्धी विचार ने विकास की पश्चिमी अवधारणा को सशक्त चुनौती दी है और विकास का आधार मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरा करना बताया है न कि उसके लालच को पूरा करना।
6. गांधी ने नैतिकता को मनुष्य की सभी गतिविधियों का आधार माना है और वे बीसवीं शताब्दी में उन नैतिक विचारकों में है जो राजनीति को भी नैतिक दृष्टि से विश्लेषित करना चाहते है।
7. उन्होंने अहिंसा को राजनीतिक दृष्टि में स्थापित किया और प्लेटो के पश्चात् सत्य को राजनीतिक दर्शन में पुर्नस्थापित किया।

1.9 सारांश

प्रस्तुत पाठ में महात्मा गाँधी के जीवन और विचारों का अध्ययन किया गया है। इससे हमें यह पता लगता है कि महात्मा गाँधी ने अपना जीवन एक साधारण व्यक्ति के रूप में आरम्भ किया और धीरे-धीरे अपने परिश्रम से एक महान व्यक्ति बनें। उन्होंने बड़ी से बड़ी मुसीबतों में सत्य और ईश्वर का साथ नहीं छोड़ा और सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलते रहे उनके सत्य और विश्वास ने

उन्हें महान व्यक्ति बनाया। गाँधी अपने चिन्तन में किसी विशेष विचारधारा के प्रतिपादक नहीं थे। उन्होंने अपने जीवन में अनुभवों से बहुत कुछ सीखा वे निरन्तर राजनीति में संलग्न रहने के उपरान्त भी एक अच्छे पाठक थे। खुले मस्तिष्क के होने के कारण उन्होंने अध्ययन और जीवन मूल्यों से बहुतकुछ सीखा और उसे अपनी तरह से विचारों के रूप में प्रस्तुत किया जिसे हम आज गाधी चिन्तन के नाम से जानते है वे अपने जीवन के प्रत्येक पहलू को नैतिक दृष्टि से देखते थे। वे जीवन के हर क्षेत्र में नैतिकता के पक्षधर थे। इसलिए उन्होंने अपने आर्थिक जीवन और राजनैतिक चिन्तन में भी अहिंसा को प्रमुखता दी है। इस अध्याय को पढ़ने से हमें मालूम होता है कि गांधी न केवल महान व्यक्तित्व के धनी थे वरन् वे एक महान विचारक भी थे।

1.10 अभ्यास प्रश्न

1. महात्मा गाँधी के चिन्तन पर पड़ने वाले प्रभावों को इंगित कीजिए।
2. गाँधी चिन्तन में सत्य और अहिंसा का महत्त्व बतलाइये।
3. महात्मा गाँधी के सत्याग्रह की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

1.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. महात्मा गांधी की आत्म कथा सत्य के साथ प्रयोग, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद,1966
2. महात्मा गांधी : हिन्द स्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990
3. नरेश दाधीच : गांधी एवं एक्लेस्टेन्दालिज, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 1993
4. गोपीनाथ धवन : दी पोलिटिकल फिलोसोफी ऑफ महात्मा गाँधी, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990
5. बी. अरूण कुमार गांधीयन प्रोटेस्ट, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2008

इकाई - 02

गांधी जीवन **(1869 ई. 1948 ई.)**

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 जीवन परिचय
2.3 पृष्ठ भूमि
2.4 गाँधी जी का दर्शन
2.5 गाँधीवादी प्रविधि
  2.5.1 सत्य
  2.5.2 अहिंसा
  2.5.3 सत्याग्रह
2.6 राजनीति
2.7 अर्थव्यवस्था
2.8 सारांश
2.9 अभ्यास प्रश्न
2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ सकते है

- गाँधी जीवन के बारे में।
- गाँधी जीवन की पृष्ठभूमि के बारे में।
- गाँधीवादी पद्धतियों के बारे में।

2.1 प्रस्तावना

महात्मा गाँधी मूलत: एक धार्मिक, मानवतावादी, कर्मयोगी और अन्तप्रेरणा के पुरूष थे, यद्यपि परिस्थितियों के वश उन्हें राजनीतिक क्षेत्र में आना पड़ा, पर जब वे एक बार राजनीतिक क्षेत्र में आ गए, तो फिर उन्होंने अपनी पूरी प्रतिभा को उसमें लगाया तथा अपनी सात्विक प्रवाष्ति, परिश्रमशीलता व्यावहारिक ज्ञान तथा अपनी सहृदयता, से राजनीति तथा उसके उद्देश्य को बहुत ऊँचा उठाया। उनका मूल मन्त्र राजनीति को पवित्र करना, उसे आध्यात्म व नैतिकतायुक्त बनाना, मानव मात्र के हृदय में प्रेम व अंहिसा का प्रसार करके विश्व में मातृ भावना का फैलाना, व्यक्ति की सच्ची स्वतन्त्रता की पुर्नस्थापना करना तथा पुरूषार्थ के महत्व को सिखाना और उसकी प्रतिष्ठा करना था।

गाँधीजी ने स्वयं किसी वाद के प्रचलन की बात कभी नहीं की थी। वे अपने विचारों को पूर्ण भी नहीं मानते थे। उन्होंने अपने विचारों को कोई विशेष सिद्धान्त या वाद न कहकर किसी विशेष सिद्धान्त या वाद पर आधारित नहीं माना है और अपने विचारों को केवल 'सत्य के प्रयोग' कहा है। उनके विचारों एवं कार्यो का आधार कोई विशेष सिद्धान्त नहीं रहा। उन्होंने सदैव अपने मस्तिष्क को खुला रखने की चेष्टा की। वास्तव में उनका जीवन एक "अन्तहीन प्रयोग" था। गाँधी जी ने स्वयं मार्च 1936 में सर्व सेवा संघ के सदस्यों से कहा था - "गाँधीवाद नाम की कोई वस्तु नहीं है और मैं अपने पीछे कोई सम्प्रदाय नहीं छोड़ना चाहता। मैं यह दावा कभी नहीं करता कि मैने कोइ नया सिद्धान्त चलाया है। मैंने केवल अपने निजी ढंग से मूलभूत सच्चाइयों का अपने नित्यप्रति के जीवन और समस्याओं में प्रयोग करने की चेष्टा की है। जो मत मैने बनाये हैं और जिन परिणामों पर मैं पहुँचा हूँ वे अन्तिम नहीं है। मैं उन्हें कल बदल सकता हूँ।मुझे दुनिया को कुछ सिखाना नहीं है। सच्चाई और अहिंसा उतने ही पुराने हैं, जितने ये पहाड़। मैंने दोनों का उपयोग इतनी विस्तृत सीमा में करने की चेष्टा की है, जितनी मैं कर सकता था..." गाँधीजी के विचार इस प्रकार किसी विशेष वाद के रूप में नहीं हैं, फिर भी सत्य एवं अंहिसा के अटल सिद्धान्तों को उन्होंने मनुष्य के जीवन की व्यक्तिगत, सामाजिक, नैतिक एवं सांसारिक अवस्थाओं में प्रयोग करके और उसके आधार पर विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक या व्यक्तिगत समस्याओं के विषय में उन्होंने जो विचार प्रकट किए हैं, वे बड़े व्यवस्थित हैं तथा यही कारण है कि उन्हीं को हम गांधीवाद कहकर पुकारते हैं।

2.2 जीवन परिचय

महात्मा गाँधी का पूरा नाम मोहन दास करमचन्द गाँधी था। उनका जन्म 2 अक्टूबर 1869 में सौराष्ट्र (काठियावाड़) के पोरबन्दर नामक स्थान पर हुआ था। गाँधी परिवार इस क्षेत्र का प्रतिष्ठित परिवार था। गाँधीजी के दादा उत्तमचन्द गाँधी पोरबन्दर रियासत के दिवान थे। इसी पद को केवल 25 वर्ष की उस में गाँधीजी के पिता करमचन्द काबा गाँधी ने प्राप्त किया था। इनके जीवन तथा प्रारम्भिक चरित्र पर परिवार के वातावरण तथा माता का बड़ा प्रभाव पड़ा।

गाँधीजी ने 12 वर्ष की आयु में राजकोट के एलफर्ड हाईस्कूल में प्रवेश किया। इसी वर्ष इनका विवाह कस्तूरबा बाई से हो गया। 1887 में इन्होनें हाई स्कूल पास किया। गाँधीजी ने कहा है कि इसी समय उनके जीवन पर 'श्रवण पितृ भक्ति' तथा हरिशचन्द्र नाटक का बड़ा प्रभाव पड़ा और उन्होंने यह निश्चय किया कि उन्हें भी अपने को श्रवण कुमार और हरिशचन्द्र जैसा बनाना है।

हाईस्कूल के बाद उच्च अध्ययन के लिए गाँधीजी के चाचा ने उनको इंग्लैण्ड भेजने का निश्चय किया। फलत: 4 सितम्बर, 1888 को वे जहाज द्वारा लन्दन को गये। इंग्लैण्ड में वे दादाभाई नारौजी व अन्य कई भारतीय विद्वानों के संरक्षण में रहे। इसी समय उन्हें एरनोल्ड द्वारा अनुवादित श्रीमद्भागवत गीता का अंग्रेजी रूपान्तर 'दी सौंग सेलेस्चियल' तथा 'लाइट आफ एशिया के अध्ययन का अवसर मिला तथा गीता इनके जीवन की सहचरी बन गई।

इंग्लैण्ड में 11 जून, 1891 को उन्हें वकालत की परीक्षा में उत्तीर्ण घोषित किया गया और दूसरे ही दिन उन्हें हाईकोर्ट के लिए पंजीकृत कर लिया गया। पर भारत में जाग्रत हो रही राजनीतिक चेतना व उथल पुथल की ओर गाँधीजी का ध्यान आकृष्ट हो चुका था। अत: 12 जून को वे राजकोट के लिए रवाना हो गये, जहां वे 1892 तक रहे।

अप्रैल 1893 में दादा अब्दुल्ला एण्ड कम्पनी के निमन्त्रण पर गाँधीजी दक्षिण अफ्रीका गए, वहाँ उन्हें रस्किन के 'अण्टु दिस लास्ट' तथा टॉलस्टाम के दी किंगडम ऑक गौउ इज विदिन यू पढ़ने का अवसर मिला। अहिंसा व शांतिपूर्ण असहयोग के सम्बन्ध में उनकी मान्यताओं को इन ग्रन्धों से बहुत अधिक बल मिला। सत्य, अंहिसा व सत्याग्रह का अनन्त प्रयोग जो उनका मृत्युपर्यन्त चलता रहा। महात्मा गाँधी, दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की रक्षा के लिए संघर्ष करते रहे।

सन् 1915 में भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की परिस्थितियों ने गांधीजी को सक्रिय राजनीति की ओर आकृष्ट किया। सन् 1926 में गोखले के परम शिष्यत्व में गांधी जी ने 'लखनऊ पैक्ट' के आधार पर हिन्दू मुसलमालों के मध्य समझौता करवाया तथा 'स्वेदेशी व स्वराज्य' को अपना मूलमन्त्र बनाया।

1913 के जलियावाला बाग, रौलट अधिनियम तथा अंग्रेजी शासन के अन्य अमानवीय व कृत्यों ने गाँधीजी को अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ करने को बाध्य किया। फलत: 1920-21 में सम्पूर्ण देश गॉधीजी के नेतृत्व में आ गया। इसी प्रकार का एक आन्दोलन उन्हानें सन् 1930-32 में भी संचालित किया, जिसे सविनय अवज्ञा आन्दोलन का नाम दिया गया था। कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में उन्होंने लन्दन में सितम्बर, 1931 में हुई द्वितीय गोलमेज परिषद में भी भाग लिया। आंग्ल शासन के गलत कानूनों की अवज्ञा करने के प्रतीक स्वरूप उन्होंने (मार्च-अप्रैल, 1930 में) अपना इतिहास प्रसिद्ध दाण्डी कूच किया तथा दाण्डी पर 5 अप्रैल, 1930 को नमक बनाकर नमक कानून को भंग किया।

गॉधीजी ने समय-समय पर कांग्रेस की गलत नीतियों की भी खुलकर आलोचना की। नवम्बर, 1938 में कांग्रेश में बढ़ रहे अनुशासनहीनता तथा भ्रष्टाचार के विरूद्ध चेतावनी दी। अक्टूबर में गांधी जी ने व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आन्दोलन भी किया। इसी बीच 22 फरवरी, 1944 को जब वे कारावास में थे, उनकी पत्नी कस्तुरबा की मृत्यु हो गई। गाँधीजी के जीवन पर इस घटना का काफी प्रभाव पड़ा।

देश की तात्कालिक परिस्थितियों में गाँधी जी को देश की पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए कार्य करने को बाध्य किया। उनका दृढ़ विश्वास था कि विद्यमान सम्पूर्ण कठिनाइयां ब्रिटिश शासन के कारण थी तथा पूर्ण स्वतन्त्रता को वे अपना एकमात्र उपचार समझते थे। उनकी स्वतन्त्रता की कल्पना सम्पूर्ण भारतवर्ष के लिए थी, जिसके अर्थ को स्पष्ट करते हुएउन्होंने 15 जुलाई 1946 को हरिजन में लिखा था कि “स्थतन्त्रता का अभिप्राय सम्पूर्ण भारत की स्वतन्त्रता से है - जिसमें भारतीय देशी रियासतें, फ्रांसीसी व पुर्तगालियों के अधीन क्षेत्र सभी सम्मिलित हैं... भारतीय स्वतन्त्रता नीचे से प्रारम्भ होनी चाहिए, जिससे वर्तमान देशी शासकों को भी जनता की इच्छा के

अनुसार चलने के लिए बाध्य होना पडे।" अंग्रेजों की ओर से जब भारत विभाजन का प्रस्ताव आया, तो उन्होंने स्पष्ट कहा था कि भारत का विभाजन किसी भी तरह मान्य नहीं होगा। उन्होंने तो इस सम्बन्ध में यहां तक कहा था कि विभाजन उनके मृत शरीर पर ही हो सकता है। किन्तु अन्त में कांग्रेस को भारत का विभाजन स्वीकार करना ही पड़ा।

स्वतन्त्रता के दिन सम्पूर्ण दिन गांधीजी में प्रार्थना व मौन व्रत रखा। वे एक ऐसे भारत का निर्माण करना चाहते थे, जो पूर्णत: अहिंसा व राम के आदर्शो के लिए हुएहो। किन्तु स्वतन्त्रता के कुछ ही समय बाद वे अपने स्वप्न को अधूरा लेकर शुक्रवार 30 जनवरी 1948 की संध्या को दिल्ली के बिड़ला भवन में प्रार्थना स्थल की ओर जाते हुएनाधूराम विनायक गौडसे की गोली का शिकार होकर अपने पार्थिक शरीर को छोडकर चले गए।

2.3 पृष्ठभूमि

2.3.1 पारिवारिक जीवन

धार्मिक दृष्टिकोण गाँधीजी को उनके पारिवारिक जीवन से प्राप्त हुआथा। वे अपनी माता के सादगीपूर्ण जीवन से अत्यन्त प्रभावित हुएतथा इसी प्रभाव के कारण इंग्लैण्ड में भी वे सादगी एवं सात्विकपूर्ण जीवन व्यतीत कर सके। वैष्णव मतावलम्बी होने के कारण उन्हें अपनी माता के साथ प्रतिदिन मन्दिर भी जाता होता था। इससे उनके हृदय में इश्वर के प्रति दृढ़ आस्था उत्पन्न हुई। उनकी माता उन्हें भूत-प्रेत के भय से बचने के लिए राम-नाम' लेने के लिए कहा करती थी। अत: अपनी मष्णु प्रर्यन्त वे राम' का विस्मरण नहीं कर सके।

2.3.2 हिन्दू धर्म ग्रन्थ

पारिवारिक जीवन में ही वे रामायण तथा महाभारत से भी परिचित हुए वे पिता की रूग्णावस्था में उन्हें नियमित रामायण सुनाया करते थे। वे रामायण से इतने अधिक प्रभावित थे कि इसे भक्ति की एक सर्वोत्तम

पुस्तक मानते थे। 'भगवद्गीता' के सम्पर्क में गाँधीजी सर्वप्रथम अपने इंग्लैण्ड के अध्ययन काल में (1888-89) में आए वहाँ उन्होंने सर एडविन अरनाल्ड द्वारा अनुवादित गीता को पढ़ा। वे गीता को 'आध्यात्मिक सन्दर्भ ग्रंथ' मानते थे। उन्होंने यह दावा किया कि गीता देखने में तो सत्य और धर्म के लिए हिंसा का प्रयोग करने की शिक्षा देती हुई दिखाई देती है, पर वास्तव में यह अहिंसा की शिक्षा देती है। गीता का कहना है कि यदि किसी को शस्त्र ग्रहण करना ही पड़े, तो उसे ऐसा निष्काम भाव से करना चाहिए। मनुष्य को काम करने का अधिकार है, पर उसे उसके परिणाम पर कोई अधिकार नहीं है, ''कर्मण्येवाधिकारस्ते ना फलेशु कदाचन'' गाँधीजी के विचार के अनुसार कोई भी मनुष्य निष्काम भाव से युद्ध नहीं कर सकता, अत: गीता अहिंसा की ही शिक्षा देती है। अपने जीवन के बाद के वर्षा में गाँधीजी ने किसी भी अन्य स्रोत की अपेक्षा गीता से ही सर्वाधिक प्रेरणा ली है। इस सम्बन्ध में 28 जुलाई 1925 को कलकत्ता क्रिश्चियन मिश्नरी को सम्बोधित करते हुएउन्होंने कहा था कि ''जब शंकाये मुझे परेशान करती हैं, मेरे चेहरे पर जब कभी निराशा

दिखाई देती है, जब पूरे क्षितिज पर मुझे प्रकाश की एक भी किरण दिखाई नहीं देती, तो मैं भगवद्गीता की ओर मुडता हूँ और सांत्वना के लिए एक श्लोक ढूंढ लेता हूँ तथा विकट दुःखों के बीच में भी मैं मुस्कराने लगता हूँ।"

पातांजलि के योग सूत्र के पंचयमों से भी उन्होंने अहिंसा की शिक्षा ग्रहण की। योगसूत्र को वे आध्यात्मिक विकास के अनुशासन का नियम मानते थे। जैन तथा बौद्ध साहित्य, हरिश्चन्द्र तथा श्रवण कुमार के नाटकों का उनके चिन्तन व जीवन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। इन्हें उन्होंने अपने जीवन के आदर्श के रूप में माना। अस्तेय (चोरी न करना), सत्य (झूठ न बोलना) ब्रहमचर्य, अपरिग्रह तथा न्यास सिद्धान्त आदि की चर्चा उनके दर्शन में हमें गाँधीजी पर उपर्युक्त के प्रभाव के कारण ही मिलती है। उस उपनिषदीय शिक्षा का उन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा जिसका सार यह है कि संसार को त्याग दिया जाना चाहिए।

2.3.3 ईसाई धर्म

गाँधीजी ने दक्षिण अफ्रीका के प्रवाज़काल में ईसायत तथा इस्लाम ग्रन्थों का भी अध्यन किया, तथा उनसे वे धर्म के सच्चे स्वरूप को समझने की ओर और भी अधिक प्रेरित हो सके 'सर्मन ऑन द माउन्ट' (ईसाइयों की धर्म पुस्तक बाइबिल में दी हुई ईसा मसीह की शिक्षा) का उन पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा। जब उन्होंने इस पहले-पहल पढ़ा तो यह सीधे उनके हृदय में स्थान पा गया वे ईसा की इन शिक्षाओं को कभी नहीं भूले कि "बुराई को अच्छाई से जीतना चाहिए", "यदि कोई तुम्होरे एक गाल पर थप्पड़ मारे, तो उसके सामने दूसरा गाल भी कर दो" "अपने शत्रुओं को भी प्यार करो", "तुमसे जो घृणा करता है उसके साथ नेकी करों"। अहिंसक प्रतिरोध का सर्वोच्च उदाहरण गाँधीजी को ईसा मसीह के इन अन्तिम शब्दों में मिला - "भगवान उन्हें क्षमा कर दीजिए क्योंकि वे नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं।"

2.3.4 इस्लाम धर्म

इस्लाम को बहुधा हिंसा और जोर-दबाव से सम्बद्ध माना जाता है पर गाँधीजी ने उससे भी अंहिसा की ही शिक्षा ली। उन्होंने इसमें दयालुता, शान्ति, प्रेम और विचारशीलता का सन्देश पाया। गांधीजी जानते थे कि 'इस्लाम शब्द का मतलब ही है, शान्ति, सुरक्षा और मुक्ती" कुरान की एक महत्वपूर्ण शिक्षा है' "कि धर्म में जोर जबरदस्ती नहीं होनी चाहिए।

2.3.5 विविध विचारक

गाँधीजी की नैतिक व राजनीतिक विचारधारा पर लाओत्से, कन्फूयूशियस व कार्यालय का भी गहरा प्रभाव पड़ा। ईसा के कई शताब्दी पूर्व लाओत्से ने निरहम भाव की शिक्षा देते हुएकहा था - "जो मेरे प्रति अच्छे हैं, मैं उनके लिए अच्छा हूँ जो मेरे प्रति अच्छे नहीं हैं, उनके प्रति भी मैं अच्छा हूँ। इस प्रकार सभी अच्छे होते जायेंगे। जो मेरे प्रति सच्चे हैं, मैं उनके लिए सच्चा हूँ और जो मेरे प्रति सच्चे नहीं है, उनके प्रति भी मैं सच्चा हूँ।इस प्रकार सभी सच्चे होते जायेंगे"। इससे गाँधीजी ने

शत्रु के प्रति सद्भाव रखने की प्ररेणा ली। कन्फूयूशियस से उन्होंने दूसरे के प्रति वैसा ही व्यवहार करने की शिक्षा ली जैसे व्यवहार कोई दूसरों से अपने प्रति चाहता हो।

धर्म निरपेक्षता सम्बंधी विचारकों में थोरो, रस्किन और टॉलस्टॉय ने गाँधी को सबसे अधिक प्रभावित किया। राजनीतिक चिन्तन में थोरो का प्रत्यक्ष प्रभाव गाँधीजी के सविनय अवज्ञा और करबन्दी आन्दोलनों पर पड़ा। दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी ने जो सत्याग्रह चलाया, का बड़ा उसकी तकनीकि व कार्यविधि पर थोरो के निबन्ध Essay on Civil Disobidience का प्रभाव पड़ा। वे थोरो के इस विचार से पूर्णत: सहमत थे कि ''जन हित करने वाले सभी व्यक्तियों और संस्थाओ के साथ अधिकतम् सहयोग किया जाना चाहिए'' थोरो के हिंसा के विचार से वे असहमत थे।

गाँधीजी ने रस्किन की पुस्तक ''अन्दू दिस लास्ट'' तथा ''क्राउन ऑफ वाइल्ड ओलिक" से शारीरिक श्रम का आदर करना सीखा। रस्किन की इन पुस्तकों का उन पर जो प्रभाव पडा उसका विवेचन उन्होंने अपनी आत्मकथा के एक अध्याय ''दी मेजिक स्पेल ऑफ एक बुक'' में किया है। सर्वहित (सर्वोदय) में ही स्वहित निहित होता है, एक वकील के काम का तथा एक नाई के काम का मूल्य सामाजिक दृष्टि से समान है, क्योंकि दोनों को आजीविका कमाने का अधिकार है। तथा श्रमिकों अर्थात कृशको, मजदूरों व हस्तोद्योग शिल्पियों का जीवन ही सच्चा जीवन है, ये वे प्रमुख विचार हैं, जो उन्हें रस्किन के साहित्य से प्राप्त हुएतथा जिन्होनें उनके जीवन को बड़े व्यापक रूप से प्रभावित किया।

लियो टॉलस्टॉय गाँधीजी के जीवन व दर्शन पर थोरो व रस्किन की अपेक्षा अधिक छाये हुएहैं। गाँधीजी के सचिव एवं उनके जीवन चरित्र लेखक श्री प्यारेलाल ने लिखा है कि ''जीवन के बारे में गाँधीजी के सम्पूर्ण दृष्टिकोण को टॉलस्टॉय ने बदल दिया। कला, धर्म, अर्थशास्त्र, पुरूष और महिलाओं के पारस्परिक सम्बन्ध तथा राजनीति के बारे में गाँधीजी के विचारों पर टॉलस्टॉय की गहरी छाप पड़ी है।"

टॉलस्टॉय की पुस्तक ''ईश्वर का राज्य तुम्हारे भीतर है" ने अंहिसा के विषय में गांधी जी की शंकाओं को दूर कर उन्हे पक्का अहिंसावादी बनाया। टॉलस्टॉय के दार्शनिक अराजकतावाद के दर्शन गाँधीजी के विचारों में स्पष्टत: कर सकते है। रोमारोला नअपनी पुस्तक ''महात्मा गाँधी" में यह मत प्रतिपादित किया कि यूरोपीय व पश्चिमी सभ्यता के प्रति जिस आलोचनात्मक दृष्टिकोण के दर्शन हमें गाँधीजी में दृष्टिगत होता है, उस पर टॉलस्टॉय का ही प्रभाव प्रतीत होता है। फिर भी गाँधीजी ने टॉलस्टॉय का अन्धानुकरण नहीं किया है। गाँधीजी का अंहिसा का दृष्टिकोण टॉलस्टॉय से कहीं अधिक आगे है। क्योंकि गाँधीजी ने अंहिसा को मन वचन व कर्म तीनों से स्वीकार किया है, जबकि टॉलस्टॉय ने अपने को केवल कर्म तक ही सीमित रखा है।

इनके अलावा प्लेटो, थॉमस पेन, रालेन्स हेन्डरसन, हक्सले, मेजिनी एवं एडवर्ड कारपेन्टर आदि यूरोपीय व अमरीकन विचारकों का भी गांधीजी ने गहन अध्ययन किया तथा उनके 'उत्तम विचारों को अपने चिन्तन, जीवन तथा दर्शन में उपयुक्त स्थान दिया।

2.4 गांधीजी का दर्शन

धर्म के बिना राजनीति पाप है - गाँधीजी ने राजनीति में मैकियावलीवाद का जोरदार विरोध करते हुएघोषण की कि ''धर्म के बिना राजनीति पाप है, क्योंकि वह आत्मा का हनन करती है।'' उनका विश्वास था कि यदि राजनीति में घृणा, अपवित्रता और दोष विद्यमान है तो उसका एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि ईश्वर से भयभीत होने वाले सदाचारी, निस्वार्थी, सच्चे तथा धर्म प्रधान व्यक्ति इसमें भाग नहीं लेते। राजनीति को यदि विशुद्ध बनना है, तो इसमें धार्मिक व्यक्तियों का बाहुल्यहोना चाहिए।

राजनीति में धर्म को प्रविष्ट कराना गाँधीजी का प्रथम उद्देश्य :-

उक्त विचार के कारण ही राजनीति में धर्म के प्रवेश किये जाने को गाँधीजी ने अपना प्रथम उद्देश्य समझा 'यंग इण्डिया' में प्रकाशित लेखों में गाँधीजी ने लिखा है कि ''सार्वजनिक जीवन क्या है, इस बात को मैने जब से समझा है, तब से मेरे कहे हुएप्रत्येक शब्द और मेरे द्वारा किए गए प्रत्येक कार्य के पीछे धार्मिक चेतना तथा धार्मिक प्रयोजन रहा है''। किसी अन्य प्रसंग में उन्होंने कहा था कि 'बहुत से धार्मिक व्यक्ति जो मुझे मिले, वे वस्तुत: राजनीतिज्ञ हैं, पर मेरा वेश राजनीतिज्ञ का होते हुएभी मैं हृदय से धार्मिक हूँ।' उनका मत था कि ''आज राजनीतिक हमें सर्प पाश की तरह लपेटे हुएहै, जिसमें से व्यक्ति का निकलना असम्भव है, चाहे वह कितना भी प्रयत्न क्यों न करें। मैं उस सांप से जूझना चाहता हूँ।मैं राजनीति में धर्म को प्रविष्ट कराने का प्रयत्न कर रहा हूँ।' स्पष्टत: गाँधीजी ने धार्मिक कर्तव्य समझकर ही राजनीति में प्रवेश करने की प्रेरणा ली।

देश की स्वतन्त्रता गांधीजी के राजनीति में प्रवेश का दूसरा उद्देश्य उनकी धार्मिक मान्यता थी कि देश के प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह पराधीनता से मुक्ति प्राप्त करने के लिए आगे आए देश की आजादी के लिए प्रयत्न करे तथा सामाजिक बुराइयों, शोषण, व भेदभाव को मिटाने के लिए कार्य करे समाज सुधार की लगन न उन्हें सम्भवत: एक ओर देश के स्वतन्त्रता संग्राम की ओर खींचा तो दूसरी ओर उनके विचारों की धार्मिक पृष्ठभूमि ने उन्हें राजनीति को धर्मयुक्तबनाने के लिए प्रेरित किया।

"ईश्वर एवं धर्म गांधीजी के जीवन आधार" :-

गाँधीजी ने धर्म एवं ईश्वर की विषद विवेचना की है। धर्म से उनका आशय किसी 'मत' या 'धर्म विशेष' से नहीं है। वे एक सर्वव्यापी ईश्वर में विश्वास रखते थे। (सत्य के प्रति मेरे प्रयोग में) उन्होंने ईश्वर 'एक अनिर्वचनीय, निगूढ़, रहस्यमय सत्ता है, जो प्रत्येक वस्तु में व्याप्त है। मैं उसे देख तो नहीं सकता, परन्तु उसकी अनुभूतिहोती है परन्तु जिसका प्रमाण नहीं मिलता, क्योंकि वह समस्त इन्द्रियगोचर पदार्थो से बिल्कुल भिन्न है। वह बाह्य प्रमाणों द्वारा नहीं; उन लोगों के लोकोत्तर व्यवहार एवं चरित्र द्वारा सिद्ध होती है, जो अपने अन्दर भगवान की वास्तविक सत्ता की अनुभूतिकरते हैं।"

ईश्वर के विषय में उनका कहना था कि ''ईश्वर सत्य है'' वे केवल यही नहीं कहते थे कि 'ईश्वर सत्य है' बल्कि यह भी कहते थे कि 'सत्य ही ईश्वर है' उनके अनुसार ईश्वर की प्राप्ति मन

वचन तथा कर्म द्वारा सत्य प्रेम व अहिंसा के पालन से हो सकती है। उन्होंने कहा था - ''बिना अहिंसा के सत्य की खोज तथा प्राप्ति असम्भव है। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक साधन है तो दूसरा साध्य', जो कोई भी इन सिद्धान्तों का अनुसरण करता है, वह एक धार्मिक तथा आध्यात्मिक व्यक्ति है, वह ईश्वर के नजदीक है, स्पष्टतः गाँधीजी के अनुसार ईश्वर एवं धर्म हृदय की ही वस्तुएं हैं।

धर्म सत्य तथा अहिंसा पर आधारित एक नैतिक जीवन पद्धति है- धर्म के अर्थ को स्पष्ट करते हु एगाँधीजी ने उसे सृष्टि की नैतिक व्यवस्था के क्रमिक विकास से सम्बद्ध किया है। उनका मत है कि ''धर्म यान्त्रिक सिद्धान्तों का समूह, वरन् सत्य और अहिंसा पर आधारित एक नैतिक जीवन पद्धति है।'' जैसा धवन ने कहा है, गांधीजी के अनुसार 'धर्म एक सजीव भावना है, जिसका विकास समाज के विकास के अनुसार होता है। धर्म का कार्य सामाजिक व्यवस्था को सामंजस्यपूर्ण बनाये रखना तथा व्यक्ति की आत्मा का मार्गदर्शन इस प्रकार करना है कि उसे अपनी अन्तर्निहित शक्तियों को प्राप्त करने की शिक्षा मिल सके।'' इस आधार पर कोई भी नैतिक जीवन धर्मरहित नहीं हो सकता, उनके लिए नैतिकता धर्म तथा नीति एक दूसरे के पर्याय हैं। अपनी आत्मकथा में उन्होंने लिखा है कि ''आदर्श नैतिकता व धर्म एक ही वस्तु के अनेक नाम हैं। धर्म के बिना नैतिक जीवन बालू पर बने मकान जैसा होता है तथा नैतिकता के बिना धर्म बजने वाले पीतल जैसा होता है। जो केवल शोर करने तथा सर फोड़ने का काम कर सकती है। वे रूढ़ियों पर आधारित किसी धर्म में बंधे नहीं थे। सर्वश्रेष्ठ धर्म के विषय में उन्होंने कहा था कि 'जिस धर्म को मैं अन्य सभी धर्मों से अच्छा समझता हूँ वह हिन्दू धर्म नहीं; अपितु वह धर्म है जो हिन्दू से भी आगे की वस्तु है, जो मनुष्य की प्रकृति को बदल देता है, जो आन्तरिक सत्य से उसका अभेद सम्बन्ध स्थापित करता है, और जो सदाशुद्धि करता है। वह मानव प्रकृति का स्थायी तत्त्व है। जो अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति को प्राप्त करने के लिए बड़े से बड़ा त्याग करने में नहीं झिझकता और जो आत्मा को उस समय तक चैन नहीं लेने देता जब तक उसे आत्म प्राप्ति नहीं हो जाती, जब तक वह अपने सृष्टा को नहीं जान लेता और उसके साथ तादात्थ स्थापित नहीं कर लेता।'' गांधीजी के अनुसार इस प्रकार धर्म वह है जो व्यक्ति को व्यक्तित्त्व की पूर्णता प्रदान करता है तथा जिसका आभास हमें केवल उसके जीवन के ढंग से ही होता है।

जीवन में मन-वचन-कर्म से सत्य व अहिंसा का प्रयोग :-

राजनीति का संचालन सत्य व अहिंसा के आधार पर ही किया जाय एवं राजनीति में हिंसा का प्रयोग क्यों नहीं किया जाए, इस सम्बन्ध में गांधीजी ने अनेक तर्क प्रस्तुत किए हैं। उनकी मान्यता थी कि –

1. ईश्वर एवं जीवमात्र एक है, अत: जो व्यक्ति ईश्वर में विश्वास रखता है, वह दूसरों के विरूद्ध हिंसात्मक साधन अपनाने पर कभी जोर नहीं दे सकता।
2. गाँधीजी के अनुसार अच्छे साधन के प्राप्ति के लिए साधनों की पवित्रता आवश्यक है। प्रथम की पवित्रता से द्वितीय के औचित्य का निर्धारण होता है। राजनीतिक उद्देश्यों की

सिद्धि भी सही ढंग से पवित्र साधनों से ही हो सकती है। अंहिसात्मक साधन राजनीति को उत्कृष्ट एवं नैतिक बना सकते हैं।

3. व्यक्ति की स्वतन्त्रता सर्वोच्च सामाजिक हित है। समाज व राज्य का निर्माण इसी की रक्षा के लिए हुआ है। यदि नवीन सामाजिक व्यवस्था की स्थापना हिंसात्मक साधनों द्वारा की गई, तो वहां व्यक्ति स्वतन्त्र नहीं रह सकेगा।

इस प्रकार गाँधीजी ने राजनीतिक उद्देश्यों की सिद्धि के लिए अंहिसात्मक एवं नैतिक साधनों पर बल देकर राजनीति को आध्यात्मिक बनाया।

2.5 गांधीवादी प्रविधि

अच्छे साध्य के लिए साधनों की पवित्रता आवश्यक :-

अच्छे परिणामों की प्राप्ति के लिए अच्छे व नैतिक साधनों का प्रयोग गांधीजी आवश्यक मानते थे। उनके मतानुसार अच्छे उद्देश्यों की प्राप्ति अच्छे साधनों से' ही सम्भव है। इस रूप में उनके मतानुसार साधन व साध्य अभिन्न होते हैं। उनका कहना है कि "साधन एक बीज की तरह है तथा उद्देश्य पेड़ की तरह। अत: जिस प्रकार बीज के अनुसार पेड़ होता है। उसी प्रकार साधन के अनुसार ही उद्देश्य की सिद्धि होती है।

साधनों की पवित्रता में इतना अटूट विश्वास रखने वाले व्यक्ति के लिए यह स्वाभाविक था कि अपने द्वारा निर्धारित उद्देश्य की सिद्धि के लिए वह ऐसे साधन चुने जिनकी पवित्रता अग्नि जैसी हो और यही कारण था कि उन्होंने अपने प्रत्येक उद्देश्य की सिद्धि के लिए सत्य व अहिंसा के साधनों का प्रयोग किया। आलंकारिक भाषा में हम कह सकते हैं कि साधनों की पवित्रता को आधार बना कर अपने गन्तव्य की प्राप्ति के लिए गाँधीजी ने एक ऐसे रथ का निर्माण किया, जिसके पहिए अहिंसा तथा सत्याग्रह (सत्य के प्रति आग्रह) रहे और जिसका वाहक सत्य रहा।

गाँधीवादी प्रविधि के तीन स्तम्भ है, जिनका विवेचन निम्नप्रकार किया जा सकता है।

2.5.1 सत्य

सत्य ही जीवन का आधरभूत सिद्धान्त -

सत्य गाँधीजी के जीवन तथा दर्शन का ध्रुवतारा या सर्वोच्च लक्ष्य है प्राप्ति के लिए वे सर्वदा प्राणोत्सर्ग करने के लिए तत्पर थे। गाँधीजी के अनुसार सत्य के दो रूप होते हैं। सत्य का पहला रूप सापेक्ष सत्य या स्थूल सत्य का है, जिसका साक्षात्कार मनुष्य को देश काल व परिस्थितियों के अनुसार होता है सत्य का दूसरा रूप निरपेक्ष सत्य या सूक्ष्म सत्य का होता है। जो पूर्ण, सर्वव्यापक, असीमित व काल तथा दिक् से परे है। पूर्ण सत्य का अर्थ गाँधीजी ईश्वर के अर्थ में ग्रहण करते थे। उनका मत था कि वास्तविक अस्तित्व (अर्थात ईश्वर ही सता है तथा इसलिए वे यह कहा करते थे कि सत्य ही ईश्वर है। उनके अनुसार पूर्ण सत्य में पर्ण ऐश्वर्य व पूर्ण आनन्द होता है। इसीलिये ईश्वर को संत चित् आनन्द' कहा जाता है। गाँधीजी का पत्याग्रह का दर्शन इसी मान्यता पर आधारित है।)

गाँधीजी की यह मान्यता है कि पूर्ण एवं सर्वव्यापक सत्य का साक्षातकार नश्वर शरीर के माध्यम से नहीं हो सकता, इसे केवल अनुभव किया जा सकता है। अत: वे सत्य के व्यावहारिक स्वरूप पर अधिक बल देते हैं और कहते हैं कि उसका पालन एक साधारण व्यक्ति भी कर सकता है। उनका मत है कि मन-वचन तथा कर्म से सच्चाई का पालन करना, जो कुछ भी शान्तिपूर्वक सोचने के बाद हमें न्यायोचित, धर्मविहित एवं युक्तियुका मालूम हो, जिसे अन्त: करण अपने प्रतिकूल न समझे, उसे ही करना सत्य है।

मन-वचन तथा कर्म द्वारा सत्य का आचरण ही पूर्ण सत्यप्राप्ति का एकमात्र मार्ग :-

गाँधीजी का विश्वास था कि इस प्रकार व्यावहारिक सत्य का पालन करने से व्यक्ति शनैः-शनै: सूक्ष्म या अमूर्त सत्य को भी प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार प्रत्येक कार्य में सत्य को ग्रहण कर उस पर चलने का निश्चय कर, सत्य वचनों का आचरण कर, सत्य कर्म पर प्रवृत होने से हम अन्त में ईश्वर का भी साक्षात्कार कर सकते है।

स्पष्टतः: गाँधीजी की सत्य सम्बन्धी धारणा में केवल सत्य बोलना ही पर्याप्त नही, अपितु इसके साथ ले त्य विचार तथा सत्य कर्म भी परमावश्यक है। गाँधीजी के अनुसार सत्य का दायरा असीमित हैं। उसके क्षेत्र में जीवन के सभी कार्यकलाप सम्मिलित है और राजनीति भी इससे पृथक नहीं है। गाँधी का विचार है कि सत्य के मार्ग का अनुसरण या उसकी खोज केवल व्यक्तिगत सीमा में रहकर सम्भव नहीं है। उसका अनुसरण सबकी सेवा करते हु एही सम्भव है। जीवन के सभी क्षेत्रों में सत्य का अनुसरण या उसकी खोज केवल व्यक्तिगत सीमा में रहकर सम्मद नहीं है। उसका अनुसरण सबकी सेवा करते हु एही सम्भव है। जीवन के सभी क्षेत्रों में सत्य का अनुसरण एक नए सुधार का एक अथक प्रयास है, इसके लिए एक सत्यवती को अपना सब कुछ न्यौछावर करना पड़ता है। यदि वह ऐसा करने में असमर्थ रहता है, तो इसका तात्पर्य होता है। कि वह अपने सत्य मार्ग से च्युत हो गया है। अपनी आत्मा से विमुख हो गया है और वह वास्तविकता से दूर भागने वाला हो गया है अथवा यों कहना चाहिए कि उसका नैतिक पतन हो गया है और वह सत्य की और उन्मुख हो गया है।

2.5.2 अहिंसा:-

गाँधीजी के आधार मनुष्य स्वभावत: अहिसाप्रिय है और वह हिंसावान केवल परिस्थितिवश होता है। यही कारण है कि मनुष्य जाति बढ़ती ही जाती है। अन्यथा यदि मनुष्य स्वाभावत: हिंसक होता और सदा उसकी हिंसक वृति ही कम करती तो मनुष्य जाति नष्ट हो गई होती। वे यह मानते थे कि संसार में हिसा का अस्तित्व नहीं है, पर ऐसा होते हु एभी वे अहिंसा को मानव जगत का मूल नियम व संचालन शक्ति मानते थे तथा उनका विश्वास था कि अहिंसा पर ही चल कर मानव समाज ऊपर उठ सकता है।

सत्य व आहेंसा का अन्तसम्बन्ध :-

गाँधीजी की सम्पूर्ण विचारधारा की आधारशिला सत्य व अहिंसा है। गाँधीवाद इस रूप में सत्य की साधना का विज्ञान व अहिंसा एवं सत्य के साक्षात्कार का साधन है। किन्तु इन दोनों में से

गाँधीजी सत्य को अहिंसा से उच्चतर स्थान देते हैं। उनके अनुसार सत्य के लिए अहिंसा का त्याग किया जा सकता है। किन्तु अहिंसा के लिए सत्य का त्याग नहीं किया जा सकता है।

सत्याग्रह सत्य व अहिंसा के लिए प्रेमपूर्ण आग्रह है :-

सत्याग्रह का अर्थ है - 'सत्य के लिए आग्रह जीवन में सर्वत्र सत्य की प्रतिश्ठा करना ही गाँधीजी के अनुसार सत्याग्रह है तथा इसलिए व्यक्तिगत तथा सामाजिक दोनो ही प्रकार के जीवन में अधर्म व अन्याय का अहिंसात्मक विरोध उसके अन्तर्गत आता है। जैसा सत्याग्रह करना है तथा नकारात्मक रूप से उसका अर्थ जो कुछ असत्य है, उसका विरोध करना भी होता है। अन्याय व अनाचार के निराकरण के लिए हिंसा पर आधारित अन्याय व अनाचारपूर्ण उपायों का प्रयोग गाँधीजी के अनुसार विहित नहीं था। अत: इसके लिए उन्होंने सत्य व अहिंसा पर आधारित शान्तिपूर्ण किन्तु सक्रिय विरोध का ढंग अपनाया तथा उसी को उन्होंने सत्य व अहिंसा पर आधारित शान्तिपूर्ण किन्तु सक्रिय विरोध का ढंग अपनाया तथा उसी को उन्होंने सत्याग्रह का नाम दिया। वे सत्याग्रह को ईश्वरीय एवं सत्याग्रही के हृदय में ईश्वरांश या ईश्वर का निवास मानते थे। उनके अनुसार

सत्याग्रही ईश्वरत्व के उस श्रेष्ठ तत्त्व को, जो कुसंस्कार, कुसंगत कुचाल, कुचिन्तन तथा प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण नीचे दब जाता है। उस मूच्छिर्त देवत्व या ईश्वरत्व को सत्याग्रह के द्वारा जाग्रत करने का प्रयत्न करता है। कष्ट तथा सहिश्णुता सत्याग्रह के अनिवार्य अंग है। जिसमें सत्याग्रही स्वयं कष्ट उठाकर अपने व्यक्तित्व बल से, प्रेमपूर्वक आनाचार करने वाले को इस बात का आभास कराता है कि उसके कार्य अनैतिक हैं। अत्याचारी, आक्रामक या विद्रोही द्वारा किए जाने वाले उत्पीड़न का वह प्रबल विरोध करता है, पर वह उस पर क्रोध नहीं करता वह स्वयं किसी प्रकार की लालसा नहीं रखता और न असफल होने पर मन मैला करता है। इसके विपरीत वह उल्टे विपक्षी के प्रति आदर भाव रखता है।

2.5.3 सत्याग्रह

गाँधीजी ने समय-समय पर सत्याग्रह की अनेक प्रणालियों का प्रयोग किया है। श्री किशोरीलाल मशदवाला ने इसी तथ्य को स्पष्ट करते हु एलिखा है कि 'सत्याग्रह जितनी रीतियों से हो सकता है, उन सबको गिनाया नहीं जा सकता'। असत्य व अत्याचार के सत्य व अहिसापूर्ण विरोध के विविध ढंगों में स्पष्ट अन्तर करना कठिन है, क्योंकि सभी वस्तुत: सत्याग्रह के ही विविध रूप हैं। यदि विचारपूर्वक देखा जाए, तो सत्य व न्याय के लिए आग्रह करना अथवा असत्य व अन्याय का विरोध करना या उनका साथ न देना अथवा अन्यायपूर्ण नियमों की अवज्ञा करना आदि सब इसी एक बात के विविध पहलू हैं कि सत्य व अहिंसापूर्ण ढंग से सत्य को विजयी बनाया जाए। अफ्रीका में निष्किय विरोध द्वारा भी उस सत्य व अन्याय का शान्तिपूर्ण विरोध किया गया था, जो वहां की सरकार के कानूनों में निहित था सन् 1920-21 के असहयोग आन्दोलन द्वारा, सन् व 930-31 के सविनय अवज्ञात आन्दोलन द्वारा व सन् 41-42 के सत्याग्रह द्वारा भी तत्कालीन भारतीय सरकार द्वारा किये जाने वाले अन्याय व अत्याचार का ही सत्य व अहिंसापूर्ण ढंग से

विरोध किया गया था। इस प्रकार इन सबमें तात्विक दृष्टि से कोई सुस्पष्ट भेद नहीं है, तथापि इनके विषय में यह कहा जा सकता है कि निफिय विरोध से असहयोग, असहयोग से सविनय अवज्ञा तथा सविनय अवज्ञा से विशुद्ध सत्याग्रह अधिकाधिक प्रभावशाली है और उन पर चलने के लिए उत्तरोत्तर अधिकाधिक संयम की साधना की आवश्यकता पडती है।

सत्याग्रह की कुछ प्रविधियां निम्न प्रकार हैं -

1. असहयोग :- प्रतिपक्षी से अपना निजी या सार्वजनिक सहयोग हटा लेना ही असहयोग है। यह सत्याग्रह का एक स्थूल साधन है, जिसका प्रयोग वहीं सम्भव है, जहाँ पहले सहयोग की स्थिति रही हो, जब हमें अनुभव होता है कि परपक्ष जो अन्याय कर सकता है, उसके मूल में हमारी शक्ति है, तब हमें चाहिए कि हम अपना सहयोग उस पक्ष से हटा लें।

गाँधीजी का विचार था कि अत्याचार एवं शोषण केवल तभी पनपनपता है, जब अज्ञान, भय अथवा निर्बलता के कारण लोग अपने पर किए जाने वाले अत्याचार या शोषण के प्रति इच्छा या अनिच्छा से सहयोग करते हैं। अत: उनका विश्वास था कि ऐसी स्थिति में यदि सब लोग अत्याचारी या अत्याचार पूर्ण प्रणाली से पूर्णतया सहयोग करना बन्द कर दें, तो अन्त में वह प्रणाली स्वत: समाप्त हो जाएगी। यह बात मनमानी करने वाले किसी व्यक्ति या किन्हीं व्यक्तियों, शोषक समुदायों या समूहों तथा सरकारों के सम्बन्ध में भी लागू की जा सकती है। असहयोग के कई सहयोगी उपाय है यथा:-

(क) बहिष्कार :- जिस प्रकार कलंकित या भ्रष्ट व्यक्तियों का समाज द्वारा बहिष्कार किया जाता है उसी प्रकार अवांछनीय शासन, सरकारी सेवाओं, उत्सवों, वस्तुओं आदि के प्रयोग का बहिष्कार करना असहयोग का एक साधन है। बहिष्कारात्मक असहयोग का प्रयोग ऐसे व्यक्तियों अथवा ऐसी संस्थाओं के विरूद्ध अधिक प्रभावी सिद्ध होता हे। जो जनमत की अवहेलना करते हुए मनमानी करते हैं, स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान सन् 1920 में गाँधीजी ने स्कूलों, कॉलेजों, सरकारी नौकरियों, अदालतों, चिकित्सालयों तथा वाहनों आदि के बहिष्कार करने का कार्यक्रम चलाया था।

(ख) धरना :- धरना असहयोग किसी व्यवसायी, सरकार या व्यक्ति के। विरूद्ध प्रयोग में लाया जा सकता है तथा उसका उद्देश्य अनैतिक व्यापार तथा अनुचित सरकारी आदेश को रोकना हो सकता है। गाँधीजी ने असहयोग आन्दोलन के दौरान विदेशी वस्त्रों, शराब आदि के व्यापार को रोकने हेतु धरना असहयोग का प्रयोग किया था।

इसमें यह स्मरणीय है कि धरना किसी पर दबाव डालने के लिए नहीं करना चाहिए। वरन् उसे प्रभावित करने के लिए किया जाना चाहिए। धरना केवल समझाने-बुझाने के रूप में होना चाहिए। किसी एक स्थान पर बैठकर आने-जाने वालों को रोककर या घेराव के रूप में धरने को गाँधीजी निन्दनीय समझते थे। धमकी, विपक्षी के पुतले जलाना या भूख हड़ताल आदि जैसे कार्य गाँधीवादी धरने के अन्तर्गत नहीं आते। धरना आत्मबल व अहिंसा पर आधारित होना चाहिए।

(ग) हड़ताल :- काम बन्द करने का साधारणत: हड़ताल कहते हैं पर इसका उद्देश्य काम कराने वाले को किसी प्रकार की हानि पहुँचानानहीं होता वरन् इसका उद्देश्य उसके मस्तिष्क को इस प्रकार प्रभावित करना होता है कि वह अपनी नीति व कार्यो का अनौचित्य समझा सके। गाँधीजी के अनुसार (1) हड़ताल जल्दी-जल्दी नहीं की जानी चाहिए अन्यथा यह

निष्प्रभावी हो जाती है। (2) हड़ताल पूर्णत: स्वेच्छापूर्ण तथा सौहार्दपूर्ण वातावरण में होनी चाहिए और वह पूर्णत: अहिंसात्मक होनी चाहिए। हड़ताल असहयोग की अन्तिम एवं तीव्रतम स्थिति है। अत: इसका प्रयोग तभी किया जाना चाहिए, जब अन्य सभी असहयोग के ढंग निकल सिद्ध हो जाये।

2. सविनय अवज्ञा :- सविनय अवज्ञा, सत्याग्रह की उच्चतर सीढ़ी है। गाँधीजी ने इसे 'सबसे अधिक प्रभावशाली एवं सशस्त्र क्रान्ति का रक्तहीन रूप' कहा है। अनैतिक कानूनों एवं आदेशों को समाप्त कराने का यह सबसे अधिक उत्कृष्ट ढंग है। इस सम्बन्ध में गांधीजी ने 'सविनय' शब्द पर अधिक जोर दिया है और कहा है कि अवज्ञा किसी भी दशा में हिंसात्मक नहीं होनी चाहिए। गाँधीजी के अनुसार सविनय अवज्ञा विपक्षी के प्रति हृदय से आदर रखते हुएसंयत ढंग से की जानी चाहिए। उसका प्रयोग उच्च उद्देश्यों की सिद्धि होनी चाहिए। वह ठोस सिद्धान्तों पर आधारित होनी चाहिए तथा उसके पीछे घृणा, शत्रुता या स्वार्थ की भावना नहीं होनी चाहिए।

सविनय अवज्ञा का अर्थ अन्यायपूर्ण कृत्य या कानून को आदरपूर्वक न मानना होता है। इसके लिए अवज्ञा हेतु कानूनो का चयन बहुतसावधानी से करना चाहिए। किस कानून की अवज्ञा किस सीमा तक करनी है, इसका निर्णय भी सत्याग्रही को न्याय- बुद्धि, आत्मबल व निष्ठा के आधार पर करना चाहिए। सन् 1930-1931 में गाँधी जी ने जो आन्दोलन चलाया था, उसे उन्होंने सविनय अवज्ञा आन्दोलन ही कहा था।

3. हिजरत :- स्थायी निवास स्थान को छोड़कर अन्यत्र चले जाना हिजरत कहलाता है। गाँधीजी ने घर छोड़ने की सम्मति उन लोगों को दी थी, जो अपने स्थान पर आत्म सम्मान से न रह सकने के कारण दुःख अनुभव करते हों तथा जिनमें अन्य प्रकार के सत्याग्रह करने की शक्ति साहस व आत्मबल की कमी हो। गाँधीजी का विचार था कि उन लोगों को जो अहिसापूर्ण ढंग से अपनी रक्षा वहीं कर सकते, हिजरत के उपाय का सहारा लेना चाहिए और उन्हें अन्यत्र चले जाना चाहिए।

गांधीजी ने 1928 में बारदोली के सत्यग्रहियों को 1939 में लम्बड़ी जूनागढ़ और बिट्ठलगढ ओर बिट्ठलगढ के सत्याग्रहियों को तथा 1935 में केंथा के हरिजनों को भी अपना घर छोड़कर अन्यत्र जाने की सम्मति दी थी।

4. उपवास :- सत्याग्रह का सबसे शक्तिशाली रूप, जिसे गाँधीजी ने 'अग्निबाण' कहा था, अनशन या उपवास है। उपवास उनके अनुसार सत्याग्रह का एक अमोघ अस्त्र है जो कभी असफल नहीं होता। गाँधीजी के अनुसार अनशन को भूख हड़ ताल नहीं समझा जाना चाहिए, क्योंकि उसका उद्देश्य विपक्षी पर एक प्रकार का दबाव डालना होता है, जबकि अनशन का उद्देश्य आत्मशुद्धि होता है। गाँधीजी का दावा है कि ''शुद्ध अनशन, मस्तिक एवं आत्मा को शुद्ध करता है यह शरीर को कष्ट देकर आत्मा का को बन्धनमुक्त करता है।'' गाँधीजी लिखते हैं कि 'अनशन प्रार्थना होती है या प्रार्थना की तैयारी, बशर्ते कि अनशन आध्यात्मिक हो अनशन टूटे हृदय की प्रार्थना होती है'' गाँधीजी के प्रत्येक उपवास में तीव्र

हृदय मंथन, ईश्वरापेण तथा दूसरों पर दबाव डालने के स्थान पर आत्म-प्रायश्चित का भाव रहता था ।

ईश्वरीय प्रेरणा से किया गया अनशन ही उचित होता है- गाँधीजी की धारणा थी कि सत्याग्रह के अस्त्र का प्रयोग किसी नीति के रूप में अथवा काम चलाऊ ढंग से नहीं किया जाना चाहिए, वरन् इसका प्रयोग व्यक्ति द्वारा तभी किया जाना चाहिए जब ऐसा करने के लिए उसे ईश्वरीय प्रेरणा मिले तथा उनका मत था कि इस प्रकार किया गया अनशन कभी बेकार नहीं जाता। राजकोट अनशन के अवसर पर लिखते हुए गाँधीजी ने कहा था। 'मुझे आपने एक भी ऐसे अनशन का स्मरण नहीं, जो व्यर्थ रहा हो, यही नहीं, मुझे अपने सभी अनशनों में अमूल्य शान्ति एवं अनन्त आनन्द का अनुभव होता रहा है। मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूँ कि ईश्वर की प्रेरणा के बिना किया गया अनशन अपने को व्यर्थ में भूखों मारना है। जिसने मुझे अनशन करने की प्रेरणा दी, वह ही मुझे उसे सहन करने की शक्ति भी देगा। यदि परमात्मा चाहता हैं कि मैं कुछ और जीवित रहकर अपना मिशन पूरा करूं तो ले कोई अनशन चाहे वह कितना लम्बा क्यों न हो, मेरे शरीर का अन्त नही कर सकता।''

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि अनशन रूपी सत्याग्रह के लिए मनुष्य उच्चकोटि की पवित्रता, आत्मविश्वास, संयम, नम्रता तथा ईश्वर मे अटल विश्वास होना आवश्यक है। जब इसका प्रयोग उचित रूप में, उचित उद्देश्य के लिए होता है, तो वह गिरी हुई आत्माओं में भी खलबली मचा देता है। ये ऐसा अहिंसात्मक दबाव होता है, जिससे दुष्टतम व क्रूरतम शक्तियां भी नतमस्तक हो जाती हैं, क्योंकि यह उन लोगों के हृदयों को स्पर्श कर उन्हें द्रवीभूत कर देता है। विशेष परिस्थितियों में गाँधीजी आमरण अनशन को भी सत्याग्रह का अंग मानते थे, पर वे ऐसे किसी उपवास के विरूद्ध थे, जो किसी खीझ, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेषवश या किसी स्वार्थ की पूर्ति के लिए किया जाए, वे ऐसे अनशनों की कड़ी भर्त्सना करते थे।

अहिंसापूर्ण सत्याग्रह एवं विदेशी आक्रमण :-

गाँधीजी के अनुसार जो अहिंसक हैं, वे प्रत्याक्रमण के बारे में कभी नहीं सोचते। उनके मतानुसार आक्रमणकारियों के विरूद्ध भी प्रतिरोध अहिंसात्मक होना चाहिए जो दो प्रकार से हो सकता है:

(1) अहिंसा में विश्वास करने वाली जनता को चाहिए कि वह प्रत्याक्रमण की बात कभी न सोचे। इसके परिणामस्वरूप आक्रमणकारी देश में आ सकते हैं। पर उसके बाद उन्हें देशवासियों द्वारा किसी भी प्रकार का सहयोग नहीं दिया जाना चाहिए सहयोग के अभाव में आक्रामक स्वत: लौट जाएंगे।

(2) अहिंसात्मक ढंग के कार्य करने में शिक्षित जनता को आक्रमणकारियों के सम्मुख, उनकी तोपों के सम्मुख स्वयं को सहर्श बलिदान हेतु प्रस्तुत कर देना चाहिए। आक्रमणकारियों का भी हृदय होता है। उन स्त्री पुरूष बच्चों की कभी न समाप्त होने वाली पंक्तियों का दृश्य जो आक्रमणकारी के समक्ष आत्मसमर्पण की अपेक्षा आत्मदान अधिक पसन्द करते हैं, अन्त में आक्रमणकारियों के कठोर-क्रूर हृदय को भी पिघला देगा।

समाजिक व्यवस्था के विषय में गाँधी जी के विचार

(1) जातीय भेदभाव का अनस्तित्व:- गाँधी जी की कल्पना के समाज में ऊँच-नीच तथा जाति-पांति पर आधारित भेदभाव नहीं होगा। उसमें न कोई अछूत और न कोई सवर्ण होगा। इस प्रसंग में उनका विचार था कि अस्पृश्यता भारतीय समाज का कलंक है और उनकी कल्पना के समाज में इसके लिए कोई स्थान नहीं हो सकता।

(2) धार्मिक सहिष्णुता:- गॉधीवादी समाज में सब धर्मों की स्थिति समानता की होगी विविध धर्मों के अनुयायी अपने-अपने धर्मों का पालन करने के लिए स्वतन्त्र होंगे।

(3) वर्ण व्यवस्था:- गाँधीवादी समाज में वर्ण व्यवस्था मान्य हागा पर उसका आधार जाति न होकर कर्म होगा। ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र सब वर्ण अपना अपना कार्य वंश परम्परा से करेंगे, पर वर्ण के आधार पर लोगों के साथ कोई भेदभाव न किया जा सकेगा।

(4) स्त्री पुरूष का समान सम्मान:- गाँधीजी की कल्पना के समाज में स्त्री-पुरूष दोनों का सम्मान प्राप्त होगा और उनके अधिकार समान होंगे। पर स्त्रियों का कार्यक्षेत्र मुख्यत: गृहस्थी ही होगी।

(5) गौवध निषेध:- गाँधीजी गो वंश की रक्षा को धार्मिक व आर्थिक दोनों दृष्टियों से आवश्यक मानते थ । इसलिए अपने आदर्श समाज में उन्होंने गौवध का निषेध किया है।

(6) मद्य निषेध:- गाँधीजी का विचार था कि मादक पदार्थो का सेवन मनुष्य का चारित्रिक पतन करता है। अत: उनके अनुसार समाज में मादक वस्तुओं का न तो कोई उत्पादन होना चाहिए और न बिक्री।

(7) निःशुला प्राथमिक शिक्षा:- गाँधीजी के अनुसार प्रत्येक बालक को निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा देना समाज का कर्तव्य है इसके लिए उनका सुझाव था कि मौहल्ले-मौहल्ले व गाँव-गाँव में बुनियादी पाठशालाएँ हों, जो प्राथमिक शिक्षा सबको निःशुल्क दें।

2.6 राजनीति

जिस अर्थ में राजनीति का प्रयोग साधारणत: किया जाता है, उससे गाँधीजी को वस्तुत: कोई प्रयोजन नहीं था। गाँधीजी मूलत: धार्मिक व्यक्ति थे और उन्होंने राजनीति के क्षेत्र में जो कुछ किया, वह भी धार्मिक साधना के अन्तर्गत ही किया। भारतीय परम्परा के सन्त होने के नाते वे भगवत् भक्त थे और मनुष्य जाति की सेवा को ही भगवान की सच्ची सेवा समझते थे। मनुष्य जाति की सेवा करने के लिए वे राजनीति के क्षेत्र में आये। उन्होंने 'हरिजन' में लिखा था, मेरे देशवासी मेरे सबसे निकट के पड़ोसी हैं। वे इतने असहाय, निरूपाय व निर्जीव हो गए हैं कि मुझे उनकी सेवा में लग जाना आवश्यक है। यदि मै समझता कि भगवान मुझे हिमालय की कन्दरा में मिलेंगे, तो मैं तुरन्त वहां चला जाता। पर मैं जानता हूँ कि मानव समूह से पष्थक उन्हें मैं नहीं पा सकता।'' इससे यह स्पष्ट है कि गाँधीजी ने जाति सेवा ईश्वर की प्राप्ति को एक साधन के रूप में ग्रहण की और उन्होंने राजनीति में भाग इसलिए लिया कि राजनीति में मध्यम से जन-सेवा करके वे ईश्वर क प्राप्ति कर सकें। गांधीजी की राजनीति वस्तुत: उनकी ईश्वर प्राप्ति की साधना का अंग मात्र थी। उन्होंने कहा था कि 'मेरा उद्देश्य पूर्णत: धार्मिक रहा है। मैं यदि अपने अपने को मानव

समाज से न मिला देता तो मैं धार्मिक जीवन व्यतीत नहीं कर सकता था और ऐसा मैं तब तक नहीं कर सकता था, जब तक मैं राजनीति में भाग न लेता।

ईश्वर की प्राप्ति की साधना का अंग मात्र होने के कारण उनकी राजनीति वह राजनीति नहीं थी, जिसे साधारणत: राजनीति कहा जाता है। उनकी राजनीति छल कपटपूर्ण राजनीति ने होकर धर्म पर आधारित राजनीति थी। उन्होंने अपनी आत्मकथा में स्वंय कहा है कि "यदि मैं राजनीति में भाग लेता हूँ तो घेरे हुए है, जिससे कोई चाहे कितनी ही चेष्टा करे, बाहर नहीं निकल सकता। मैं उस सर्प से युद्ध करना चाहता हूँ। धर्म से पृथक वे राजनीति को वे मृत्यु जाल है, क्योंकि वह आत्मा का हनन कर देती है।" उनके अनुसार, 'वे लोग जो यह कहते हैं कि धर्म का राजनीत से कोई सम्बन्ध नहीं है, धर्म -का अर्थ नहीं जानते।' इस प्रकार गांधीजी छल, कपट व अस्वस्थ कूटनीति पर आधारित राजनीति के प्रचलित रूप को बुरा समझते थे और उसमें धर्म का समावेश कर उसे आध्यात्मिक बनाने के पक्षपाती थे।

राज्य के सम्बन्ध में गाँधीजी के विचार

(क) गाँधीजी मूलत: अराजकतावादी है :- गाँधी जी का मत है कि राज्य व राजकीय शक्ति की आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि मनुष्य अपूर्ण है यदि मानव जीवन इतना पूर्ण हो जाए कि वह स्वयं संचालित हो सके तो फिर राज्य व राजकीय शक्ति को समाज की कोई आवश्यकता न रहे। गाँधीजी के विचार के अनुसार ऐसी स्थिति होगी, क्योंकि उस दशा में एक ऐसी विवेकपूर्ण अराजकता स्थापित हो जायेगी, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के हित साधन में बाधा न डालते हुए स्वयं अपना शासक बन जायेगा। गांधीजी के मतानुसार वह समाज, जिसमें राज्य व राजनीतिक शक्ति का अभाव होगा और व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध सत्य व अहिंसा पर आधारित होंगे; आदर्श समाज होगा; क्योंकि ऐसी ही सामाजिक स्थिति में मनुष्य वास्तविक रूप से स्वतन्त्र होगा। गाँधीजी के अनुसार स्वतन्त्रता व समाज का अर्थ है व्यक्ति की बाह्य अर्थात् सरकारी नियन्त्रण से मुकित। उनका कहना था कि यदि व्यक्ति अधिकांश बातों के लिए राज्य व सरकार पर ही निर्भर रहा, तो वह वास्तविक स्वतन्त्रता व स्वराज नहीं हैं। उनके अनुसार आत्मनिर्भरता ही स्वतन्त्रता का मूल है। इस प्रकार गाँधीजी के अनुसार समाज की आदर्श दशा वहीं होगी, जिसमें व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध सत्य व अहिंसा के आधार पर स्वयं संचालित होंगे।

(ख) व्यावहारिक दृष्टि से राज्य एक आवश्यक बुराई है :- गाँधीजी केवल विचार जगत के व्यक्ति नहीं थे। वे जगत की वास्तविकताओं का सदा ध्यान रखते थे। इस सस्कध में भी उन्हें आदर्श के साथ-साथ यर्थाथ का भी ध्यान रहता था। वे यह मानते थे कि वास्तविक मानव जीवन में पूर्ण अराजकता की व्यवस्था स्थापित होना सम्भव नहीं है। अत: व्यक्तिवादियों की तरह वे यह मानते थे कि एक आवश्यक बुराई के रूप मे राज्य व सरकार का बना रहना आवश्यक है; उन्होंने कहा था कि 'राज्य की शक्तियों में वाशद्धि को मैं बड़ी आशंका से देखता हूँ। ऊपर से जान पड़ता है कि बढ़ती हुईराज्य की शक्ति शोषण को रोककर लोगों का भला कर रही है, पर वास्तव में इससे मानव जाति की बड़ी हानि होती है। क्योंकि व्यक्ति का व्यक्तित्व, जो सभी

प्रकार की उन्नति का मूल है, नष्ट हो जाता है।" इसलिए व्यक्ति के व्यक्तित्त्व के पूर्ण विनाश के लिए आवश्यक है कि वह अधिक से अधिक राज्य के नियन्त्रण से मुक्त हो।

(ग) राज्य व्यक्ति-हित का साधन मात्र है :- गाँधीजी के अनुसार अपने वर्तमान रूप में राज्य केन्द्रीयकृत व संगठित हिंसा का प्रतीक है। जितनी अधिक शक्ति उसके हाथ में रहती है, वह व्यक्ति के स्वाभाविक विकास में उतना ही बाधक सिद्ध होता है। अत: यदि व्यक्ति को अपने स्वाभाविक विकास का अवसर मिलता है और उसके लिये वे परिस्थितियां सुलभ होती हैं, जिनमे वह जीवन के चरम उद्देश्य की प्राप्ति कर सके, तो यह आवश्यक है कि सामाजिक व्यवस्था प्रधानत: सत्य व अहिंसा पर आधारित हो तथा राजकीय शक्ति (जिसका आधार हिंसा है) का प्रयोग न्यूनतम हो। इस प्रकार महात्मा गाँधी की राज्य के स्वरूप के कल्पना उन सब कल्पनाओं से भिन्न है, जो किसी प्रकार व्यक्ति के नैतिक व्यक्तित्व व उसकी नैतिक शक्ति की तुलना में राज्य के व्यक्तित्त्व व उसकी शक्ति को अधिक महत्त्व देती हो। वे न तो राज्य के स्वरूप सम्बन्धी इस आदर्शवादी कल्पना में विश्वास करते हैं कि राज्य मनुष्य की समाजिकता व उसकी नैतिकता का उत्कृष्टतम रूप है और न इस एकत्ववादी विचार के समर्थक हैं कि वह मनुष्य समाज की सर्वोत्तम सत्ताधारी संस्था है, उनके अनुसार राज्य की स्थिति व्यक्ति के जीवन के चरम् उद्देश्य की प्राप्ति का एक साधन मात्र है।

(घ) राज्य में शक्तियों का अत्यधिक केन्द्रीकरण नहीं होना चाहिए :- गाँधीजी के अनुसार राज्य में समाज की सब शक्तियों का केन्द्रीकरण नहीं होना चाहिए। क्योंकि शक्ति का जितना अधिक केन्द्रीकरण होता है, उतना ही उसका दुरूपयोग होता है। गाँधीजी की कल्पना के समाज में राज्य को राज्य को स्वयं पर्याप्त व स्वशासित ग्रामों की इकाइयों का संघ होना चाहिए और उसमें सत्ता का विकेन्द्रीकरण अधिक से अधिक होना चाहिए।

(ङ) राज्य का उद्देश्य व कार्य सर्वोदय :- गाँधीजी के मतानुसार राज्य का उद्देश्य सर्वोदय अर्थात सभी की सर्वांगीण उन्नति है। उनके अनुसार वह किसी वर्ग विशेष के हितों का साधन नहीं हो सकता। गाँधीजी की कल्पना के राज्य में ऐसा कोई वर्ग नहीं होना चाहिए जिसे जीवन की आवश्यक वस्तुएं सुलभ न हों। इस सम्बन्ध में गाँधीजी ने लिखा है, 'मेरा स्वराज्य का स्वप्न गरीबों के स्वराज्य का है। उन्हें भी जीवन की आवश्यक वस्तुएं उसी प्रकार प्राप्त होनी चाहिए। सुखी जीवन के लिए राजाओं जैसे वे धनिकों व राजाओं को होती है। पर इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उनके लिए राजाओं जैसे महल होने चाहिए। सुखी जीवन के लिए महल आवश्यक नहीं है। मैं या आप उसमें रास्ता ही भूल जाएंगे, पर जीवन की साधारण सुविधाएं धनिकों की भांति ही सबको सुलभ नहीं होगी, तब तक स्वराज्य पूर्ण स्वराज्य नहीं हो सकता "

शासन व्यवस्था के विषय में गाँधीजी के विचार :-

(क) शासन के विकेन्द्रीकरण पर आधारित स्वशासित ग्रामों का संघ :- देशीय स्तर पर गाँधीजी का आध्यात्मिक प्रजातन्त्र स्वयं पर्याप्त तथा स्वयं संचालित ग्रामों के एक ऐच्छिक संघ के रूप में होगा। अहिंसा तथा उसी से उत्पन्न अन्य सिद्धान्तों का पूर्णरूप से अनुकरण करने के कारण गाँवों का प्रत्येक नागरिक स्वयं अपना शासक होगा। वह इस प्रकार व्यवहार करेगा कि अपने

पड़ोसी के लिए कभी बोझ न सिद्ध हो। इस प्रकार के ग्राम एक संघ या समूह का निर्माण करेंगे, जिनमें ऐच्छिक सहयोग ही शान्ति एवं सम्मानित जीवन की शर्त होगी। उसमें लोग अहिंसा के ऊंचे स्तर पर पहुँचेहुएहोंगे और पूर्ण आत्म संयम के आधार पर सत्य का लान सत्य का ज्ञान रखते हुएसादगी और त्याग का जीवन व्यतीत करेंगे।

(ख) शक्ति व सत्ता का प्रभाव पंचायतों से संघ की ओर :- गाँधीजी का विश्वास था कि इस प्रकार के विकेन्द्रित शासन में जहां प्रत्येक ग्राम आत्मनिर्भर तथा स्वशासी होगा, शासन की आवश्यकता केवल उसी सीमा तक होगा, जिस सीमा तक उसकी आवश्यकता ऐसे व्यक्तियों की अवांछनीय हिंसात्मक प्रवृतियों को रोकने के लिए होगा, जो नैतिकता तथा आत्मनियन्त्रण के आवश्यक स्तर पर नहीं पहुँच सके हैं उक्त प्रकार की ग्रामीण इकाइयों को एक सूत्र में समन्वित करने हेतु गाँधीजी ने एक केन्द्रीय सत्ता के पास उनके मतानुसार आदेश देने व नियन्त्रण करने के अधिकार नहीं होंगे। शासन व शान्ति की मुख्य इकाइयाँ उक्त प्रकार के ग्रामों की ग्राम पंचायतें होगी। ग्राम पंचायतों की सत्ता केन्द्र से प्राप्त नहीं होगी, वरन् ग्राम पंचायतों से सत्ता ऊपर की ओर प्रभावित होगी। इस प्रकार के शासन का संचालन गाँधीजी के अनुसार पूर्णत: अहिंसात्मक ढंग से होगा तथा शक्ति की अपेक्षा वह अनुनय-विनय पर अधिक आधारित होगा।

गाँधीवादी पंचायती राज :- गाँधीजी ने अपनी विकेन्द्रीकरण की योजना में एक ऐसी पंचायती राज-व्यवस्था का निरूपण करने के प्रयास किया है। जिसकी शासन-व्यवस्था में शासन की मूल इकाई पंचायत होगी।

गाँधीवादी पंचायती राज्य का संगठन :- ग्राम पंचायत का संगठन एक या कुछ गाँवों को मिलाकर किया जाएगा। पंचायत में पाँच व्यक्ति होंगे, जो गाँव की जनता द्वारा प्रत्यक्ष चुनावों से सर्वसम्मति द्वारा चने जाएंगे। ग्राम पंचायत को अपने श्रेष्ठ के सम्पूर्ण कार्य के सम्पादन का अन्तिम अधिकार होगा। इनमें ग्राम पंचायतों के प्रतिनिधियों के द्वारा चुनाव से निर्वाचित प्रतिनिधि होंगे। इसी प्रकार प्रान्तीय व केन्द्रीय पचायत का गठन किया जाएगा। यद्यपि गाँधीजी ने इनके संगठन व अधिकारों की कोई स्पष्ट रूपरेखा प्रस्तुत नहीं की।

2.7 आर्थिक व्यवस्था

(1) औद्योगीकरण का विरोध व रोटी व श्रम की महत्ता :- गाँधीजी आधुनिक जटिल आर्थिक व्यवस्था को मानवकल्याण की दृष्टि से उपयोगी नहीं समझते थे। वे मशीनों की सहायता से चलने वाले विशालकाय उद्योगों वाली अर्थव्यवस्था के स्थान पर कुटीर उद्योगों पर आधरित अपेक्षाकृत सरल अर्थव्यस्था की ओर लौटने की बात कहते थे, जिससे मानव शक्ति का उपयोग आधिकाधिक हो। गाँधीजी का मत था कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीविका के लिए कुछ न कुछ शारीरिक परिश्रम करना अवश्य करना चाहिए। गाँधीजी इस प्रकार के परिश्रम को 'रोटी के श्रम' की संज्ञा देते थे और कहते थे कि बिना रोटी का श्रम किए जो लोग अपना पेट भरते है, वे समाज के चोर हैं गाँधीजी इसे प्रकृति का नियम मानते थे, क्योंकि इसके बिना मनुष्य को भूख ही नहीं लगती। वे लोग, जो शारीरिक परिश्रम नहीं करते और खेलकूद कसरत आदि जैसे उपायों द्वारा भूख उत्पन्न करते हैं, कृत्रिम व्यवस्था

का सहारा लेते हैं कि अपनी आवश्यकता की वस्तुओं के उत्पादन के लिए व्यक्ति नित्य-प्रति कुछ न कुछ शारीरिक श्रम अवश्य करें, अन्यथा वह पेट भरने का अधिकारी नहीं है।

बौद्धिक श्रम गाँधीजी के अनुसार व्यक्ति को भोजन पाने का अधिकारी नहीं बनाता। वह केवल बुद्धि की भूख पूरी करता है। शरीर की भूख पूरी करने के लिए शारीरिक परिश्रम करना आवश्यक है। बौद्धिक श्रम करने वालों के लिए तो गाँधीजी का कहना था कि उन्हें किसी वेतन या पारिश्रमिक की आशा ही नहीं करनी चाहिए। वरन् उन्हें अपना श्रम समाज के हित के लिए निःशुल्क करना चाहिए। गाँधीजी के मतानुसार आदर्श परिश्रम तो वही है, जो पृथ्वी में से कुछ उपजाने में लगे पर उन लोगों के लिए, जिन्हें नगर आदि में रहने के कारण इस प्रकार का श्रम करने की सुविधा नहीं है, गाँधी जी का कहना था कि वे लोग चरखा द्वारा सूत की कताई या अन्य किसी दस्तकारी द्वारा शारीरिक परिश्रम कर सकते हैं और पेट भरने के अधिकारी हो सकते हैं। शारीरिक परिश्रम गाँधीजी के अनुसार आर्थिक व स्वास्थ्य की दृष्टि से ही आवश्यक नहीं है, क्योंकि कठिन परिश्रम करने वालों को व्यर्थ की खुराफातें प्राय: नहीं सूझती।

(2) उत्पादन में कुटीर उद्योग की प्रधानता :- शारीरिक परिश्रम की इतनी उपयोगिता मानने वाले गाँधीजी के लिए यह स्वाभाविक था कि वे आधुनिक औद्योगिकता एव मशीनों द्वारा बड़े पैमाने पर केन्द्रीभूत उत्पादन आदि को मनुष्य जाति के लिए एक अभिशाप माने। उनका मत था कि बड़े पैमाने पर उत्पादन की प्रणाली द्वारा ही संसार में व्यक्ति का व्यक्ति द्वारा व राष्ट्र का अन्य राष्ट्र द्वारा शोषण सम्भव हुआहै। भारत जैसे अधिक ही हानिकारक मानते थे। अत: उनका कहना था कि उत्पादन का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए तथा जहाँ तक सम्भव हो, उत्पादन मनुष्यों के हस्तकौशल व पशुओं के श्रम द्वारा संचालित कुटीर उद्योगों के माध्यम से होना चाहिए। उत्पादन का उद्देश्य आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिए, लाभार्जन नहीं। भारत जैसे देश के लिए तो कुटीर उद्योगों का प्रचलन वे अत्यन्त लाभकारी समझते थे, क्योंकि इसके द्वारा मनुष्य की वस्त्र सम्बन्धी एक मुख्य आवश्यकता की पूर्ति होती है और इससे करोड़ों लोग जीविका कमा सकते हैं। पर इसके अतिरिक्त आटे की पिसाई, चावल कूटना, गुड बनाना, मधुमक्खियों को पालना, तेल पेरना रस्सी बाटना टोकरियां बनाना, खिलौने व मिट्टी के बर्तन व ईट बनाना आदि अनेक ऐसे कुटीर उद्योग हैं, जिन्हें मशीनों के आविष्कार के कारण लोग छोड़ते जा रहे हैं। अत: उनका विचार था कि यदि उन्हें प्रोत्साहित किया जाए, तो उत्पादन व बेकारी दोनो की समस्या सरलतापूर्वक हल हो सकती है। पर इससे यह नहीं समझा जाना चाहिए कि गाँधीजी मशीनों व मशीनों द्वारा संचालित बड़े-बड़े उद्योगों के पूर्णत: विरूद्ध थे या वे मशीनों का प्रयोग बिल्कुल बन्द कर देना चाहते थे, वे ऐसी मशीनों के प्रयोग को नहीं' चाहते थे जो या विनाशकारी हो या शोषण को प्रोत्साहन देने वाली हों। उदाहरणार्थ तोप, बन्दूक, मशीनगन व बम आदि विनाशकारी हैं। इसलिए गाँधीजी का मत था कि वे सर्वथा त्याज्य हैं। इसी प्रकार बड़े-बड़े कारखानों में प्रयुक्त होने वाली वे मशीनें, जो श्रमिकों का शोषण करने में पूँजीपतियों की सहायता करती है त्याज्य है। पर रेल, जहाज, सिलाई

मशीन, हल, चरखा, फावड़ा आदि जैसी मशीनों का प्रयोग विहित है, क्योंकि वे मनुष्य के लिए आवश्यकता की वस्तुओं का उत्पादन करने में सहायक होती हैं। यदि बड़े कारखानों का रखना आवश्यक ही हो, तो गाँधीजी का मत था कि वे राज्य द्वारा संचालित होने चाहिए, जिससे उनके द्वारा लाभ के लिए उत्पादन व शोषण न होने पाए। मशीनों के प्रयोग के विषय में उनका सिद्धान्त यह था कि जो मशीन सर्वसाधारण के हितसाधन में काम आती है। उसका प्रयोग विहित है। वे गृह उद्योगों में काम आने वाली मशीनों के प्रयोग व उनके सुधार के समर्थक थे, पर कहते थे कि "यान्त्रिक शक्ति से चलने वाली मशीनों का व्यवहार करके लाखों लोगों को बेकार कर देना मेरी दृष्टि में अपराध है।"

राष्ट्रवाद व अन्तर्राष्ट्रवाद पर गाँधीजी के विचार :-

गाँधीजी भारत के राष्ट्रपिता कहे जाते है। वे भारतीय राष्ट्रीयता के कर्णधार थे। पर उनकी राष्ट्रीयता संकुचित राष्ट्रीयता न थी। गाँधीजी सब प्राणियों को एक ही ईश्वर की सन्तान मानते थे। अत: उनके लिए यह स्वाभाविक था कि वे सब राष्ट्रों के मनुष्यों को भाई-भाई मानते। अत: गाँधीजी सदा 'दसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धान्त पर चले और अपने राष्ट्रप्रेम को कभी संकुचित न होने दिया। उनका कहना था कि "भारत में उत्पन्न होने और उसकी संस्कृति का उत्तराधिकारी होने के कारण मैं भारत की सेवा सर्वोत्तम रूप से कर सकता हूँ। उसकी सेवा पर मेरा सर्वप्रथम अधिकार है। पर मेरी देश भक्ति संकुचित नहीं हैं। मैं किसी अन्य राष्ट्र को कोई हानि नहीं पहुंचाना चाहता। सबको सच्चा लाभ पहुचाना चाहता हूँ मेरे अनुसार भारतीय स्वतन्त्रता कभी भी संसार के भय के कारण नहीं बनेगी।"

गाँधीजी वस्तुत: एक सच्चे देशभक्त एवं राष्ट्रवादी थे। किन्तु उनके राष्ट्रवाद को तब तक ठीक से नहीं समझा जा सकता जब तक यह ध्यान न रखा जाय कि मूलत: वे एक ऐसे अन्तर्राष्ट्रवादी थे जो सम्पूर्ण विश्व की आध्यात्मिक एकता में विश्वास रखते थे। उन्होंने एक फ्रांसीसी पत्र में कहा था - "मेरी राष्ट्रीयता गहरी अन्तर्राष्ट्रीयता है।"

गाँधीजी देश की स्वतन्त्रता चाहते थे एवं इसके लिए उन्होंने प्रयास भी किए। किन्तु उनके ये प्रयास संकुचित या देशी दायरे तक सीमित नहीं थे। वे अपने देश की स्वतन्त्रता भी इसलिए चाहते थे कि विश्व के अन्य देश भी स्वतन्त्र भारत से कुछ सीख सकें तथा स्वतन्त्र भारत के साधनों का उपयोग मानवता के लिए किया जा सके। गांधीजी का विचार था कि "जिस प्रकार देश भक्ति की भावना हमें यह सिखाती है कि व्यक्ति जिले के लिए, जिला प्रान्त के लिए और प्रान्त देश के लिए न्यौछावर हो जाए उसी प्रकार देश को आवश्यकता पड़ने पर विश्व की भलाई के लिए न्यौछावर होने के लिए तैयार होना चाहिए।

गाँधीजी का विचार था कि राष्ट्रवाद कभी भी बुराई नहीं होती वरन् बुराई होती है संकुचित भावना जिसमें अधिकांश आधुनिक राष्ट्र त्रस्त हैं। गाँधीजी का राष्ट्रवाद सेवा एवं आत्म बलिदान के दृढ़ आधारों पर अवस्थित था। अत: उससे अन्य किसी राष्ट्र को कोई भय नहीं हो सकता था। जहाँ सहयोग, निर्माण एवं मानवतावाद राष्ट्रीयता के मूल सिद्धान्त हो, वहां राष्ट्रवाद एक विश्व एवं

विश्व सरकार का निर्माणक ही हो सकता है। क्योंकि ऐसा राष्ट्रवाद मानवतावादी होगा और उसमें प्रजातिवाद का कोई स्थान नहीं होगा।

गाँधीजी का यह दृढ़ विश्वास था कि 'राष्ट्रवादी हुए बिना अन्तर्राष्ट्रवादी होना पूर्णत: असम्भव है। अन्तर्राष्ट्रवाद तभी सम्भव हो सकता है, जबकि राष्ट्रवाद एक यर्थाथ बन जाय, विभिन्न देशों के लोग सगंठित होकर एक हो जाएं और एक व्यक्ति के रूप में काम करने लगें।''

गाँधीजी का सुझाव इस सस्कध में यह था कि विश्व के स्वतन्त्र राष्ट्रों के सहयोग के आधार पर विश्व सरकार बनाई जानी चाहिए, जिसमें सहयोगी राष्ट्रों के प्रतिनिधि शासक के रूप में कार्य करें। उनका विचार था कि ऐसी सरकार सत्य एवं अहिंसा पर आधारित होनी चाहिए तथा भारत को इसकी स्थापना के लिए अपने प्रयास करने चाहिए। गाँधीजी ने एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय अहिंसक सेना की स्थापना पर भी बल दिया था, जो सैनिक रूप से संगठित न हो, पर जो सुधारक पुलिस के रूप में कार्य करे।

गाँधी जीवन की विचारधारा का पक्ष - गाँधी जीवन की विचारधारा के पक्ष में जो कुछ कहा जा सकता है, उसे निम्न प्रकार रख सकते हैं-

(1) गाँधीजी ने विश्व में नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना की :- महात्मा गाँधी जिस समय सार्वजनिक क्षेत्र में आये उस समय देश व विश्व का सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक वातावरण भ्रष्टता से पूर्ण था। व्यक्तिगत जीवन में तो अनैतिक साधनों का प्रयोग खुले रूप से अच्छा समझा जाता था। नैतिकता के नियम केवल व्यक्तिगत जीवन के नियम हैं, अधिक से अधिक लोग केवल इसे मानने को तो तैयार थे, परन्तु सार्वजनिक जीवन को वे नैतिक नियमों से परे समझते थे। गाँधीजी ने अपने विचारों व कार्यो से संसार को यह बताया कि नैतिकता का प्रयोग व्यक्तिगत जीवन में ही नही सार्वजनिक जीवन में भी अच्छे परिणामों के साथ किया जा सकता है। उन्होंने इस बात से विश्व को अवगत कराया और यह करके दिखाया कि कोई भी कार्य ऐसा नहीं है, जो अच्छे साधनों से सिद्ध न किया जा सके। अच्छे साध्य के लिए यदि बुरा साधन अपनाया जाय, तो साध्य भी अच्छा नहीं रहता। अत: किसी अच्छे साध्य की सिद्धि के लिए आवश्यक है कि साधन भी अच्छा हो। इस सम्बन्ध में गाँधीजी ने विश्व के समक्ष यह महत्वपूर्ण तथ्य रखा कि 'साधन बीज और साध्य वृक्ष होता है। अत: जो सम्बन्ध बीच और वृक्ष में होता है। वही सम्बन्ध साधन और साध्य में होता है। किसी भी शैतान की उपासना करके ईश्वर की उपासना का फल प्राप्त नहीं कर सकता।''

(2) गाँधीजी ने राजनीति का आध्यात्मीकरण किया - गाँधीजी से पहले राजनीति के क्षेत्र में मैकियावलीवाद का बोलबाला था। उस क्षेत्र में प्रचालित मान्यता यह थी कि अच्छे या बुरे जिस भी साधन से साध्य की सिद्धि हो जाए, वही साधन अच्छा है। साध्य से ही साधन का औचित्य होता है, यह राजनीतिक क्रिया-कलाप का आधार माना जाता था। पर गाँधीजी ने इसका सक्रिय खण्डन किया और यह बताया कि जीवन के सभी क्षेत्रों में जिसमें राजनीति का क्षेत्र भी सम्मिलित है साधनों की पवित्रता बरती जानी चाहिए। उन्होंने यह केवल कहा

ही नहीं, करके भी दिखाया और अपने द्वारा निर्धारित राजनीतिक उद्देश्यों की सिद्धि सत्य व अहिंसा जैसे नैतिक साधनों से करके दिखाई, यद्यपि कुछ उद्देश्यों की सिद्धि में वे असफल रहे, कई बार उनका सत्याग्रह वांछित उद्देश्य को सिद्धि न कर सका तथा विपक्षियों का हृदय परिवर्तन न हो सका। तथापि यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय, तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि सत्याग्रह की वे असफलताएं केवल अस्थायी असफलताएं ही थी, क्योंकि गाँधीजी द्वारा संचालित भारत के स्वाधीनता संग्राम का अन्त जिस प्रकार हुआ, उससे यह पूर्णतया सिद्ध हो जाता है कि सत्य के लिए अहिंसा-पूर्वक आग्रह से निर्दयी से निर्दयी प्रतिपक्ष पर विजय प्राप्त की जाती है और बड़ी से बड़ी राजनीतिक समस्या का समाधान निकल सकता है।

(3) गांधीजी ने धर्म का लौकिकीकरण किया :- धर्म का लौकिकीकरण भी गाँधीजी की एक महत्वपूर्ण देन है, गाँधीजी ने धर्म के प्रचलन के सम्बन्ध में इस दोषपूर्ण स्थिति को देखा कि धर्म का सम्बन्ध लोग केवल परलोक सुधार से ही समझते हैं तथा धर्म के ठेकेदारों ने उसके अर्थ ऐसे कर रखे हैं, जो धर्मान्धता से पूर्ण तथा ऐसे हैं, जो सत्य की कसौटी पर खरे नहीं उतर सकते तथा उन पर चलने से व्यक्ति का कल्याण नहीं हो सकता। अत: गाँधीजी ने धर्म के ऐसे रूढ़िवादी रूप का विरोध किया तथा धर्मान्धता के विरूद्ध लोगों को प्रशिक्षित किया। उन्होंने इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को लोगों के सामने रखा कि धर्म केवल परलोक सुधार की वस्तु नहीं है, वरन् वह इस लोक में व्यवहित की जाने की वस्तु है तथा उस पर चलकर ही व्यक्ति का इहलौकिक व पारलौकिक दोनों प्रकार का कल्याण हो सकता है। धर्म के नाम पर जो कुछ भी कहा जाय, वह ईश्वरीय है, इस अंधविश्वासपूर्ण धारणा को यह बताया कि धर्म की रूढ़ियों का पालन अविवेकी की तरह नहीं किया जाना चाहिए। उन्होंने स्वयं कहा था कि 'हिन्दू धर्म ग्रन्थों में विश्वासी होने के कारण मेरे लिए यह आवश्यक नहीं कि मैं उसके प्रत्येक शब्द व प्रत्येक वाक्य को ईश्वर प्रेरित समझूं। चाहे कितना ही विद्धतापूर्ण क्यों न हो, मैं उनके ऐसे किसी भी अर्थ में अपने को बंधा हुआनहीं मान सकता। जो विवेक नैतिकभावना के विरूद्ध हो।"

इसी प्रकार गाँधीजी ने धर्म को व्यापक व व्यावहारिक बनाकर उसे सांसारिक बनाया तथा यही कारण है कि गाँधीजी ने राजनीति का आध्यात्मीकरण तथा धर्म का लौकिकीकरण किया तथा जैसा डी. राधाकृष्णन ने कहा है, ''उस नैतिक व आध्यात्मिक क्रान्ति के महान देवता के रूप में गाँधीजी सदा स्मरण किए जाएंगे, जिसके बिना इस पथभ्रष्ट विश्व को शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती।''

(4) गाँधीजी ने व्यक्ति की महत्ता एवं मानवीय शक्तियों के प्रति विश्वास को पुनर्जागृत किया :- विश्व के लिए गाँधीजी की एक अन्य देन यह है कि उन्होंने व्यक्ति की महत्ता तथा शक्तियों के प्रति विश्वास पुन: जागत किया। औद्योगीकरण के बाद से समाज व राज्य का जो रूप बना था, उसमें व्यक्ति का व्यक्तित्व नगण्य हो गया था, पश्चिम की औद्योगिक सभ्यता ने जो आघात व्यक्ति के व्यक्तित्व को पहुँचाया है, उसके कारण

मनुष्य विशाल व महाकाय सामाजिक व राजनीतिक यन्त्र का एक पुर्जा बनकर रह गया है। व्यक्ति आसुरी अधिक व दैवीकन है तथा उसके लिए क्या हितकर है, इसका निर्णय वह स्वयं नहीं कर सकता। यह तथा ऐसे ही विचार व्यापक रूप से मान्य हो गए हैं। गाँधीजी ने इसके विपरीत यह अमूल्य विचार संसार को दिया कि व्यक्ति समाज व राज्य के लिए नहीं है, वरन् समाज व राज्य व्यक्ति के लिए है। उससे व्यक्तित्व को उचित महत्त्व प्राप्त होने पर ही सच्चा लोकतन्त्र स्थापित हो सकता है तथा विश्व का कल्याण हो सकता है।

(5) गाँधीजी ने राजनीतिक स्वतन्त्रता के साथ-साथ सामाजिक व आर्थिक स्वतन्त्रता का भी प्रतिपादन किया :- गाँधीजी की एक अन्य महत्त्वपूर्ण देन यह है कि उन्होंने राजनीतिक स्वतन्त्रता का भी प्रतिपादन किया। उन्होंने विश्व को यह विचार दिया कि सामाजिक व आर्थिक स्वतन्त्रता के बिना केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता का कोई मूल्य नहीं है। इसी प्रसंग में उन्होंने उत्पादन के सिलसिले में 'रोटी का श्रम' के उस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसे आर्थिक स्वतन्त्रता के प्रबल समर्थक साम्यवाद की इस मान्यता का ही एक रूपान्तरण कहा जा सकता है कि 'जो काम नहीं करेगा वह खाएगा भी नहीं' तथा वितरण के सिलसिले में उन्होंने अपरिग्रह व प्रन्यास के ऐसे सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है जिन पर यदि मनुष्य ईमानदारी से चल सके, तो सम्पत्ति के वितरण की समस्या का समाधान बिना किसी पारस्परिक कटुता के हो सकता है।

2.8 सारांश

गाँधीजी की विचारधारा की एक सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि वे साधन की पवित्रता पर बल देते हैं। महात्मा गाँधी के शब्दों में, 'यदि साधन अपवित्र है, तो पवित्र से पवित्र साध्य को भी सिद्ध नहीं किया जा सकता। ''गाँधीवाद के इस सिद्धान्त को ही स्वीकार कर लिया जाय तो इतना निश्चित है कि विश्व का अधिकांश समस्याओं का समाधान हो सकता है। आज के आणविक युग में यदि व्यक्ति जीवित रहना चाहता है तो उसे शस्त्रीकरण की दौड़ समाप्त करके सत्य, प्रेम और अहिंसा के सिद्धान्तों को अपनाना होगा, अन्यथा तृतीय विश्व युद्ध की विभीषिका से न बचा जा सकेगा। यदि राजनीति व्यवहार नैतिक सिद्धान्तों की पवित्रता पर आधारित हो, तो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्व की अनेक समस्याओं का समाधान सरलता से हो सकता है। अत: श्री मन्नारायन के शब्दों में यह कहा जा सकता है ''आज के मानव के दुःखों को दूर करने वाली एकमात्र रामबाण औषधि गाँधीवाद है।"

2.9 अभ्यास प्रश्न

1. गाँधी जीवन पर एक लेख लिखिए।
2. गाँधीजी की पृष्ठभूमि पर एक लेख लिखिए।
3. गाँधीवादी प्रविधि की विवेचना कीजिए।

2.10 संदर्भ ग्रंथ

1. महात्मा गांधी की आत्म कथा सत्य के साथ प्रयोग, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1966
2. महात्मा गांधी: हिन्द स्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990
3. नरेश दाधीच: गांधी एवं एक्लेस्टेन्दालिज्य रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 1993
4. गोपीनाथ धवन: दी पोलिटिकल फिलोसोफी ऑफ महात्मा गाँधी, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990
5. बी. अरूण कुमार: गांधीयन प्रोटेस्ट, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2008

इकाई - 03

गाँधी का अध्ययय

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 परिवार और उसका प्रभाव

3.3 बचपन और सत्य के प्रयोग

3.4 इंग्लैण्ड में गाँधी

3.5 भारत वापसी और एक वकील के रूप मे

3.6 गाँधीवादी अहिंसा का जन्म (दक्षिण अफ्रीका में असहयोग आन्दोलन)

3.7 सत्याग्रह का जन्म

3.8 भारत वापसी और भारत के लोगों की मुक्ति

3.9 भारत - विभाजन

3.10 निष्कर्ष

3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.12 अभ्यास प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से निम्नलिखित के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

- गाँधी के जीवन का निरन्तर घटना क्रम
- गाँधी का बचपन
- गाँधीवादी अहिंसा का जन्म
- सत्याग्रह की उत्पत्ति की परिस्थितियाँ

3.1 प्रस्तावना

मानव क्रियाऐं एक या अनेक कारकों जैसे प्रकृति, वाध्यता, आदत, विवेक, प्रेम, लालसा और इच्छा से प्रेरित होती हैं। गाँधीजी के अनुसार लालच और आसक्ति मानव सभ्यता को नष्ट करते हैं।

कई लोगों ने महसूस किया कि दक्षिण अफ्रीकी सरकार से बन्दुआ मजदूरों के अधिकारों के लिए लड़ना एक डूबते हु ए जहाज के समान था। गाँधीजी ने इस चुनौती को स्वीकार किया। उन्हीं दिनों उन्होंने स्वयं कष्ट सहन करके विरोधी का हृदय परिवर्तन करके, जीतने के लिए एक तकनीक व प्रविधि के रूप में अहिंसक असहयोग एवं सत्याग्रह का अविष्कार किया। इस तकनीक से उस डूबते हु ए-जहाज को किनारे तक ले जाना गाँधीजी जी के लिए सम्भव हो सका और समय के प्रभाव से वे मोहन से महात्मा में परिवर्तित हो गये।

इस इकाई के नौ भाग हैं। प्रथम भाग मोहनदास करमचन्द गाँधी के जन्म, परिवार का प्रभाव और कुलीन संगत से सम्बन्धित है। द्वितीय भाग में उनके बचपन और सत्य के प्रयोग की योग्यता का परीक्षण किया गया है। तीसरे भाग में उनके इंग्लैण्ड में निवास और तीन प्रतिज्ञाऐ- शराब औरत और माँस खाने: हाथ नहीं लगाने तथा अनेक प्रकार की आसक्तियो से अपने व्यवहार को बचाने से सम्बन्धित है। चौथे भाग में एक वकील के रूप में गाँधीजी की दशा पर प्रकाश डाला गया है। पाँचवे भाग में दक्षिण अफ्रीका में उनका जीवन तथा रेलगाड़ी के प्रथम श्रेणी डिबे से धक्का देना और उससे प्रभावित होकर अहिंसक असहयोग आन्दोलन की शुरूआत से सम्बन्धित है। छठे भाग में सत्याग्रह जिसके माध्यम से शत्रु से घृणा किये बिना, प्रेम और सत्य के साथ गाँधी ने सभी बुराईयों का सामना किया, का वर्णन किया गया है। सातवें भाग में गाँधीजी द्वारा विभिन्न आन्दोलनों में अपनी सत्याग्रह की तकनीक को प्रयोग में लेने का वर्णन किया गया है। आठवें भाग में भारत का विभाजन तथा भगत सिंह के साथ सम्बन्ध में उनकी भूमिका तथा उनकी हत्या से सम्बन्धित है। अन्त में नौवां भाग जो निष्कर्ष से सम्बन्धित है। गाँधी के अनुभव तथा वर्तमान सन्दर्भ में यद्यपि गाँधी शारीरिक रूप से हमारे साथ नहीं है, फिर भी उनके सन्देश, उनकी भावना भारत एवं समस्त संसार को निरन्तर मार्गदर्शन करते रहेंगे।

3.2 परिवार और उसका प्रभाव

मोहनदास करमचन्द गाँधी का जन्म 2 अक्टूबर 1869 को पोरबन्दर, जिसे सुदामा नगरी कहा जाता है एक वैश्य परिवार में हुआ। लेकिन तीन पीढ़ियों से मोहनदास करमचन्द गाँधी के दादा गुजरात (कठियाबाद) के कुछ राज्यों के प्रधानमन्त्री रहे। उनके दादा उत्तमचन्द गाँधी एक सिद्धान्तवादी आदमी थे। एक बार जब उन्हें पोरबन्दर छोड़ने के लिए विवश किया, जहाँ वे दीवान थे और उन्होंने जूनागढ़ (गुजरात) में शरण ली। वहाँ उन्होंने अपने बाँऐं हाथ से नबाव को सलाम किया, किसी ने उनकी इस असम्मानीय उपस्थिति को देखा और इसका कारण पूछा। जिसका उत्तर इस प्रकार दिया गया - "सीधा हाथ हमेशा पोरबन्दर के सम्मान में उठाता है।" इस प्रकार की स्वामी भक्ति देखकर नवाब प्रसन्न हुआ और उत्तमचन्द को पुन: पोरबन्दर के दीवान के रूप में पद: स्थापित कराने का प्रयास किया। उस समय रानी माँ का स्वर्गवास हो चुका था और उत्तराधिकारी ने सिंहासन का आरोहण किया। लेकिन उत्तम चन्द ने मना कर दिया और उनके पुत्र करमचन्द को 24 वर्ष की आयु में दीवान नियुक्त कर दिया गया।

गाँधी ने पिता करमचन्द गाँधी, उपनाम काबा गाँधी राजस्थानिक कोर्ट के सदस्य थे। उन दिनों मुखिया और उनके साथी चेयरमैन के बीच विवादों का समाधान करने में उन्हें एक प्रभावशाली व्यक्ति के रूप में माना जाता था। वे कुछ समय के लिए राजकोट और बीकानेर के प्रधानमन्त्री रहे थे। जब उनका स्वर्गवास हुआउस समय वे राजकोट राज्य के पेन्दानर थे।

उनके पिताजी को अपना कुल, सत्यता, बहादुरी, उदारता बहुत प्रिय थे, परन्तु अल्प-मिजाजी थे। लेकिन बहुतही पवित्र थे और वे अपने घर और बाहर अपनी निष्पक्षता के लिए जाने जाते थे। राज्य के प्रति उनकी स्वामीभक्ति सर्वविदित थी। एक सहायक राजनीतिक एजेन्ट

(करमचन्द गाँधी के प्रमुख) राजकोट थाकोरे साहिब से असम्मानपूर्वक बोला जिसका करमचन्द गाँधी ने प्रभावपूर्ण ढंग से विरोध किया। एजेन्ट नाराज हुआ और काबा गाँधी से क्षमा माँगने के लिए कहा। उन्होंने ऐसा करने से मना कर दिया इसलिए उन्हें कुछ घन्टे बन्धक बनाकर रखा। लेकिन जब एजेन्ट ने देखा कि वह (काबा गाँधी) अपनी बात पर दृढ़ हैं तो एजेन्ट ने उन्हें मुका करने का आदेश दिया।

गाँधीजी के पिता को व्यावहारिक मामलों का अच्छा अनुभव था। उन्हें बहुत कठिन समस्याओं और सैकड़ों लोगों का प्रबन्धन करने का अनुभव था।

उनकी माँ (पुतली बाई) एक सन्त प्रकृति की महिला थी। वह बहुत धार्मिक थी। वह प्रतिदिन प्रार्थना के बिना भोजन नहीं करती थी। वह कठिन से कठिन व्रत करने में कतई नहीं कतराती थी। बीमारी की स्थिति में भी यह सब करती रहती थी। दोनों करमचन्द गाँधी और पुतलीबाई बहुतधार्मिक थे। बहुतसे साधु और सभी धर्मों (हिन्दु, मुस्लिम और पारसी) के धार्मिक व्यक्ति उनके घर आते थे और धार्मिक विचार-विमर्श करते थे। परिवार के सभी सदस्य और बच्चे युवा मोहन दास गाँधी सहित इस विचार विमर्श में गहरी रुचि और श्रद्धा रखते थे। परिवार में हिन्दू धर्म की कहानियाँ जैसे-भागवत गीता और रामायण भी सुनायी जाती थी। मोहनदास गाँधी में भगवान के समर्पण और भक्ति के गुण आ गये।

मोहनदास को श्रवण पित्र-भक्त नाटक पढ़ने का अवसर मिला। उन्होंने उसे बहुतरूचि से पढ़ा और चित्र में देखा कि श्रवण कुमार अपने अन्धे माता-पिता को अपने कन्धों पर ले जा रहा है, इसने युवा गाँधी के मानस पर गहरी छाप छोड़ी। उनके मन में एक विचार आया कि वह भी श्रवण की तरह अपने माता-पिता की भक्ति करे और श्रवण की तरह पूरी निष्ठा और समर्पण से उनकी सेवा करे। एक दूसरा चित्र जिसने मोहनदास के मस्तिष्क पर अपनी अमिट छाप छोड़ी वह था राजा हरिश्चन्द्र जिसने सत्य के लिए अपना जीवन समर्पण कर दिया। सत्य के मार्ग पर चलकर राजा ने यातनाओं, बलिदान और कष्ट सहन की परीक्षा दी। इससे मोहनदास का हृदय परिवर्तित हो गया। परिवार ने उन्हें मोहन का नाम दिया। वे परिवार में और समाज में मोहन के रूप में लोकप्रिय हुए।

3.3 बचपन और सत्य साथ प्रयोग

स्कूल में सत्य के प्रति स्वाभाविक भक्ति के प्रयोग देखे गये। एक बार जब वे कक्षा में थे, स्कूल म स्कूल-निरीक्षक का निरीक्षण हुआ। उसने शब्दो के अभ्यास के लिए पाँच शब्द लिखे। उनके एक शब्द ' 'केतली' “kettle” था। मोहनदास के अक्षरों में गलती हो गयी, अध्यापक ने सही करने के लिए गाँधी से इशारा किया परन्तु वे नहीं समझे। अध्यापक चाहता था कि पड़ोस में बैठे छात्र के अक्षरों की नकल कर सही कर ले। गाँधी ने ऐसा नहीं किया क्योंकि उसने सोचा कि अध्यापक वहाँ नकल के विरूद्ध छात्रों का वीक्षण कार्य कर रहा है। परिणाम यह हुआ कि गाँधी के अलावा सभी छात्रों के सभी शब्द सही थे। अध्यापक ने गाँधी की इस मूर्खता को बाद में बताया लेकिन उसे कोई सफलता नहीं मिली। ऐसे अनेक घटनाक्रम है जिनमें गाँधी के सत्य के साथ अनुराग, निष्ठा, प्रेम एवं ईमानदारी प्रदर्शित होती है।

स्कूल के अधिकांश छात्र नियमित कक्षाओं के बाद घर जाया करते और जिमनास्टिक के पीरियड के लिए वापस आते थे। गाँधी भी इस प्रकार किया करते थे। एक दिन गाँधी जिमनास्टिक के लिए स्कूल गये, समय समाप्त हो चुका था और सभी लड़के अपने घर जा चुके थे। उन्हें अनुपस्थित होने पर प्रधानाचार्य के सामने उपस्थित किया गया। गाँधी ने स्पष्टीकरण दिया कि वह अपने बीमार पिता की सेवा कर रहा था। इसके अतिरिक्त गाँधी ने सोचा कि अध्यापक उनके समय को खराब कर सकते हैं। लेकिन प्रधानाचार्य ने गाँधी की बातों पर विश्वास नहीं किया, उसे झूठा कहा। झूठ बोलने का अपराधी माना और दण्डित किया। वह दण्डित ही नहीं हुआ बल्कि ठेस पहुँची, लेकिन उसने सोचा कि वह झूठा दिखायी देता है। उस दिन गाँधी ने सीखा कि जो सत्य बोलना चाहते हैं और सत्य बोलने का व्रत लेते हैं उन्हें प्रत्येक वस्तु से सावचेत व सावधान रहना चाहिए।

गाँधीजी की मित्र-मण्डली ने उन्हें पथ भ्रष्ट करने की कोशिश की। उन्होंने धूम्रपान करना व माँस खाना आरम्भ कर दिया। उन्हें चोरी करने के लिए विवश करते थे। इन सब आदतों के लिए वह और उनके बड़े भाई ने अपने भाई के सोने के ब्रासलेट से एक छोटा टुकड़ा काटने की कोशिश की।

गाँधीजी के अन्त: विवेक के लिए यह काफी था। वह कहीं जा रहा है और यदि वापस नहीं लौटा तो वह कही पहुँचेगा, सोचने लगे। वह असत्य के साथ ही नहीं जी रहा था, बल्कि अपने पिताजी के साथ धोखा कर रहा था जिनका उसमें दृढ़ विश्वास था। वह अपने पिताजी को और अधिक धोखा, चोरी और छल, कपट नहीं कर सकता। उसने महसूस किया यदि वह मृत्यु को रोक सकता, तो वह इन बुरी आदतों को निरन्तर कर सकता है। अर्थात मृत्यु को कोई नहीं रोक सकता, यह सत्य है।

इन सबसे बाहर निकलने का एक ही रास्ता था। उन्होंने अपने पिताजी के सामने अपनी समस्त गलतियों को स्वीकार कर लिया और कभी भी दुबारा नहीं करने का निश्चय किया। अपने पिताजी से अपनी गलतियों के लिए दण्ड देने के लिए कहा।

गाँधीजी ने लिखा है कि अपने पिता के सामने अपनी गलती स्वीकार की और माफ करने के लिए कहा। जब एक बार गाँधीजी भगन्दर रोग से पीड़ित थे और अपने बिस्तर तक ही सीमित हो गये। अपने हाथ में एक नोट बुक ली और तख्ता के सामने बैठ गये। उनके पिता ने इसे पढ़ा, उनके आँखों से आसू गिर रहे थे, कागज भीग रहा था। एक क्षण के लिए उन्होंने अपनी आँखें बन्द की, सोचा और कागज को फाड़ दिया। गाँधीजी भी रोने लगे।

गाँधीजी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि उनकी आँखों से जो प्यार के आँसू निकल रहे थे उनसे उनका हृदय शुद्ध हो गया और पाप कर्म धुल गये। उन्होंने यह सीखा कि जब कोई गलती हो जाय तो बिना समय खराब किये उस गलती को स्वीकार कर लेना चाहिए और गलती दुबारा नही हो ऐसा प्रयास करना चाहिए। जब कोई गलती हो जाय तो प्रसन्नता से दण्ड के रूप में कष्ट सहन करना चाहिए। गाँधीजी ने यह सीखा अपने काम को उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना चाहिए। गाँधी ने आगे के जीवन में अपनी कमियों को, गलती को स्वीकार किया

गाँधीजी का 13 वर्ष की आयु में विवाह हो गया और वैवाहिक जीवन के समुद्र में फैंक दिया। गाँधीजी ने अपनी मैट्रिक परीक्षा सन् 1887 में पास की और उन्हें इंग्लैण्ड जाने का सुझाव दिया गया, वहा से बैरिस्टर बनकर आये।

लेकिन उनके इस मार्ग में अनेक बाधाऐं थी। धन की भी व्यवस्था करनी थी। बड़े विशेषकर गाँधीजी की माताजी ने अपनी सहमति दे दी। उनके बड़े भाई धन की व्यवस्था करने के लिए सहमत हो गये और गाँधी की माता शराब, औरत और माँस से दूर रहने की शर्तो पर मोहनदास को इंग्लैण्ड भेजने के लिए सहमत हो गयी। गाँधीजी ने सभी व्रतों को गम्भीरता से लिया और इंग्लैण्ड जाने के लिए बम्बई गये।

बम्बई में समाज के कुछ व्यक्तियों ने अनादर किया और कुछ व्यक्तियों ने समर्थन किया। गाँधी समुद्र पार विदेश जाने के लिए आगे बढ़े। गाँधीजी उस समय मुश्किल से 18 वर्ष के थे, लेकिन उसने यह माना कि वह डरकर रहने वाला आदमी नहीं है। उसने किसी भी विरोध या कड़वाहट का उत्तर नहीं दिया। वह शान्त रहा और समाज के बड़े लोगों से कहा कि वह विदेश जाने का मन बना चुका है। उसने उन सभी का सम्मान किया लेकिन उनके आदेश को नहीं माना और अवज्ञा के परिणामों को भुगतने के लिए तैयार हो गये। जीवन के बाद के वर्षा में गाँधीजी ने यह माना कि यह पहला अवसर है जब सत्याग्रह का विचार उनके मन में आया। वे यह नही जानते थे कि यह सत्याग्रह का समय था।

3.4 इंग्लैण्ड में गाँधी

मोहनदास इंग्लैण्ड जाने के लिए 4 सितम्बर 1888 को जहाज में बैठ गया। वे समुद्र की अनेक कठिनाइयों को सहन करते हुएइंग्लैण्ड पहुँचगये। वहाँ के लोग, उनके रीति-रिवाज, जीवन शैली एवं उनकी आदतें सब कुछ अपरिचित व अजनबी दिखायी दे रहा था। उन्हें अपने घर की याद आ रही थी तथा साथ में जो भारत में अपने पीछे छोड़ गये जैसे - अपनी पत्नी, बच्चे, माता, भाई और खाना भी याद आ रहा था। अपनी जिम्मेदारी और दृढ़ निश्चय याद आ रहा था कि वह एक बेरिस्टर के रूप में भारत जायेगा, इसे पहले नही।

उन्होंने जल्दी समझ लिया कि इंग्लैण्ड में रहने के लिए नहीं आये हैं और उन्हें अंग्रेजों की तरह खण्डित व कमजोर अंग्रेज नहीं बनना है, बल्कि अपने सत्य को पहचानना है। उसे हमेशा याद रहा कि वह इंग्लैण्ड के अध्ययन के लिए आया है और इसलिए पूरा ध्यान अपने अध्ययन पर लगाना चाहिए। उन्होंने इस तथ्य को अच्छी तरह स्वीकार कर लिया कि एक अच्छा आदमी बनने के लिए यह बाहरी आयाम नहीं था बल्कि चरित्र का आन्तरिक आयाम था।

इंग्लैण्ड में बहुतसारे नये विचारों में एक शाकाहारबाद का विचार था। इस नये उत्साह में गाँधी शाकाहारबाद में अपने आलेखों के माध्यम से योगदान देने लगे। वे शाकाहारी समाज में शामिल हो गये, प्रतिनिधि मण्डल में भाग लेने लगे और जहाँ वे रहते थे उस क्षैत्र में एक शाखा खोल दी तथा सोसायटी के सचिव के रूप में कार्य करने लगे। इस समय उन्हें यह सीखने का अवसर मिला कि किसी संगठन को किस प्रकार चलाया जाता है और सोसायटी को किस तरह अधिक उपयोगी

बनाया जा सकता है । यहाँ से उनमें आनासक्ति का भाव पैदा हु आ और अपने स्वतन्त्र विचारों का निर्माण आरम्भ हु आ। उन्हें बोलने में लज्जा का अनुभव होता था। तो भी जब वे बोलने के लिए अपने आपको तैयार करते, जब वे बोलने के लिए खड़े हो जाते तो उनका सिर चकराने लग जाता है । उनका मुँह सूख जाता। इस तरह कोई और उनके लिए उनके भाषण को पढ़ाता था।

वेजीटेरियन सोसायटी में कार्य करते हु ए अनेक अच्छे पुरूष और महिला से सम्पर्क हु आ जो शाकाहारी बन गये। उनमें थियोसोफिस्ट सहित सभी धर्मों के लोग थे। उन्होंने उन्हें थियोसोफी के रूप में परिचय दिया। मैडम बालवस्की और डा. ऐनीबेसेन्ट दोनों इस तरह के थियोसोफिस्ट थे जो बाद में भारत में बहु तप्रसिद्ध हु ए।वे चाहते थे कि गाँधी गीता का अध्ययन करे। गाँधी ने हिन्दी या संस्कृत में गीता नहीं पढ़ी जबकि वे भारत में थे। गाँधी ने इस बात को स्वीकार किया। उन्होंने सोचा कि संस्कृत सीखने पर उन्हें गीता के श्लोकों का अर्थ समझने में सहायता मिलेगी। इस प्रकार उन्होंने एडविन आर्नोल्ड की गीता के इंगलिश से अनुवाद से स्वर्ग से सम्बन्धित गीत को समझा। उसका सन्देश विशेष रूप से व्यक्ति के स्थायी विवेक से सम्बन्धित था, जिसका गाँधी के ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने गीता को बड़ी रूचि से पढ़ा। एडविन आर्नोल्ड का द लाइट ऑफ एशिया पुस्तक जिसमें बुद्ध के जीवन व सन्देशों का वर्णन है।

एक बार पुस्तक पढ़ना आरम्भ किया पूरी होने तक पढ़ते रहे। बुद्ध के त्याग और करूणा ने गाँधी के मानस पर अमिट छाप छोड़ी। बाद में उन्होंने बाइबिल सहित बहु तसे धर्मों के पवित्र ग्रन्थों का अध्ययन किया। द सरमन ऑन द माउण्ट ने उनके हृदय को सीधा प्रभावित किया और भारतीय कवि श्याम लाल भट्ट के श्लोक याद दिलाऐ। जब कोई एक कप पानी के लिए कहता है तो उसे अच्छा खाना दीजिए।

शाकाहारबाद केवल ऐसा क्षेत्र नहीं था जहाँ गाँधी ने अपने संकल्प व व्रतों को प्रयोग के लिए रखा। एक ऐसा अवसर था जब गाँधी महिलाओं की मित्रता के लालच के वशीभूत हो गये। लेकिन जैसे ही मित्रता के वशीभूत हु ए, वे सावधान हो गये। समय रहते हु एपूरे प्रकरण को छोड़ दिया। उन्हे यह विश्वास हु आकि यह ईश्वर था जिसने उसने पाप में डूबने से बचा लिया।

गाँधी जब तक इंग्लैण्ड में रहे तब तक शर्मीले व लज्जावान बने रहे। जब वे बहु तसे लोगो की उपास्थति में सामाजिक मुद्दों पर विचार करते, अपनी अभिव्यक्ति में असहाय हो जाते। इंग्लैण्ड से अपने घर वापस आते समय सार्वजनिक भाषण देने का अन्तिम बार प्रयास किया। लेकिन इस बार हंसी उत्पन्न करने वाले बेढंग से भाषण देने में सफल हु ए।बड़ी सावधानी से कुछ बोलने के लिए सोचा परन्तु वे एक वाक्य से ज्यादा आगे नहीं बढ़ सके।

गाँधी ने एडीसन के बारे में पढ़ा कि जब उन्होंने हाउस आफ कामनस में अपना भाषण आरम्भ किया, उन्होंने तीन बार एक वाक्य को दोहराया लेकिन जब आगे कुछ नहीं बोल सके। सचेतक खड़े हु ए और उनसे बेढंगपने से बोले, "भले आदमी तीन बार अपनी अभिव्यक्ति कर चुके हैं, लेकिन चौथी बार कुछ नहीं।" उन्होंने इस छोटी सी घटना पर विनोदपूर्ण भाषण लिखने का विचार किया। इसलिए उन्होंने अपने आप को तैयार किया परन्तु वे असफल रहे, अपनी हास्यपूर्ण स्थिति बना ली। तो भी गाँधी के शर्मीलेपन ने उनकी सत्यता को बनाए रखा। आगे बढ़ने के लिए

प्रेरित किया, सत्य पर विचार करने में सहायता की। उनकी सत्यता, दृढ़ संकल्प, व्रत और शर्मीलेपन ने उन्हे जीवन के कपटपूर्ण आचरण, धोखा से बचाया जैसा कि बहुत से भारतीय विद्यार्थीयों ने इंग्लैण्ड में किया । इन सबके के बीच में, गाँधी ने अपना समय ब्रिटिश अनइवर्सिटी की मैट्रिकुलेशन की परीक्षा पास करने में और बार के लिए योग्यता प्राप्त करने में लगाया। उन्होंने लैटिन भाषा सीखी तथा बार ने उन्हें 10 जून, 1891 को बुलाया। वे हाईकोर्ट में 11 जून, 1891 को पंजीकृत हुएऔर 12 जून, 1891 को भारत के लिए जहाज में बैठ गये।

3.5 भारत वापसी और एक वकील के रूप मे उनकी स्थिति

सन् 1891 की गर्मियों के दिनों में, गाँधी बार में' पंजीकृत होने के बाद भारत वापस आ गये। उन्होंने बम्बई और राजकोट में वकालत आरम्भ की। यद्यपि उन्होंने इंग्लैण्ड में कानून की परीक्षा पास की। उन्होंने भारतीय विधियों का अध्ययन नहीं किया। यही भी कठिन प्रतिद्वन्द्वता थी।

गाँधी ने अपने आप को बम्बई कोर्ट में पंजीकृत कराया उनके पास कोई क्लाइन्ट नहीं आया क्योंकि वे दलालों की सहायता लेने के पक्ष में नहीं थे। अन्त में उन्हें एक केस मिला। उन्होंने अपनी फीस के रूप में 30 रु. लिये। वे कोर्ट में उपस्थित इए और अभियोगी गवाह से क्रास प्रश्न करने के लिए तैयार हुए। वे खड़े हुए लेकिन उस गवाह की स्थिति देखकर उनका हृदय दुखी हुआ, उनका सर चकरा रहा था। उन्होंने यह महसूस किया। पूरा कोर्ट इसी तरह काम कर रहा था। वे पूछने के लिए कोई प्रश्न सोच नहीं सकें। वे बैठ गये और उस क्लाइन्ट को अपनी फीस वापस लौटा दी।

बम्बई में एक दूसरा केस और मिला। इसका स्मरण पत्र बनाना था। उन्होंने क्लाइन्ट के लिए स्मरण-पत्र बनाने के लिए विचार-विमर्श किया । यद्यपि उस स्मरण-पत्र की छपाई की कीमत क्लाइन्ट द्वारा वहन करनी थी। उन्होंने स्मरण पत्र बनाया और इसे पढा, मित्रों ने भी पढ़ा। उन मित्रों ने इसे पढकर कुछ विस्तार किया, उनमें विश्वास जाग्रत हुआकि उसमें स्मरण-पत्र बनाने की योग्यता है।

गाँधी और उनके भाई ने सोचा कि मुम्बई में अधिक समय बिताने का कोई उपयोग नहीं था। उन्होंने अपनी आफिस को सिमेंट लिया और वापस राजकोट चले गये। वहाँ उन्हें क्लाइन्ट के लिए प्रार्थना-पत्र और स्मरण-पत्र का काम मिल गया जिससे उनकी आय औसत 300 रूपये मासिक होने लगी।

उन्हें अपने कमीशन न देने के सिद्धान्त के साथ समझौता करना पड़ा जो उन्होंने मुम्बई में सीखा था। उन्होंने कहा कि दोनों शहरों की स्थिति में अन्तर था । मुम्बई में, दलालों को कमीशन देना पड़ता था जबकि राजकोट में, वकीलों को कमीशन देना पड़ता था जो बैरिस्टर को परामर्श देते थे। लेकिन उन्होंने यह जल्दी समझ लिया कि राजनीतिक वातावरण अधिक दूषित और षड्यन्त्रपूर्ण हो रहा था। अस्थिरता बने रहना एक बहुतबड़ी समस्या थी और निरन्तर रूप से उनके लिए यह भी समस्या बनी हुईथी।

इसी समय पोरबन्दर की मेमन फर्म ने उनके बड़े भाई के लिए लिखा कि दक्षिण अफ्रीका में उनका बड़ा व्यापार है। फर्म के पास 40,000 पौण्ड के दावे के कानूनी केस हैं। केस लम्बे समय से चल रहे हैं। उन्होंने अच्छे वकीलों व बैरिस्टरों की सेवाऐं ले रखी हैं। उन्होंने गाँधी के बड़े भाई से कहा कि यदि वे गाँधी को भेज देते हैं तो वह अपने परामर्शदाताओं को निर्देश दे सकते हैं। उन्हें संसार का एक नया भाग देखने का अवसर मिलेगा और अपनी एक नई पहचान बनेगी।

इस प्रस्ताव कर उनके भाई ने गाँधी से विचार-विमर्श किया। भाई ने उन्हें स्वर्गीय सेठ अब्दुल करीम जावेरी जो दादा अब्दुला एण्ड कम्पनी का भागीदार था, से परिचय कराया। फर्म प्रश्न काल में थी। गाँधी ने सोचा कि यह कोई कठिन कार्य नहीं होगा। गाँधी ने माना कि वह दक्षिण अफ्रीका में एक बैरिस्टर की तरह नहीं जा रहा था बल्कि फर्म एक नौकर की तरह जा रहा था। लेकिन वह भारत को छोड़ना चाहता था। उन्हें नये देश व नये अनुभव का अवसर देने का लालच दे रखा था। उसने यह भी सोचा कि वे अपने भाई के लिए कुछ धन भेज सकेंगे और घर के खर्चो में कुछ सहायता कर सकेंगे। उन्होंने प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और दक्षिण अफ्रीका जाने के लिए तैयार हो गये।

3.6 सत्याग्रह का जन्म

गाँधी जब दक्षिण अफ्रीका गये, उन्हें घर छोड़ने की असहजता महसूस नहीं हुईक्योंकि जब इंग्लैण्ड गये तब घर छोड़ने का अनुभव था। उनकी माता का स्वर्गवास हो चुका था। वे विदेश यात्रा भी कर चुके और संसार का कुछ ज्ञान भी प्राप्त कर चुके थे।

वे मई 1893 में डरबन पहुँचे।अब्दुल्ला सेठ जो फर्म के मुखिया थे, उन्हें लेने के लिए पहुँच गये। डरबन में कुछ समय रूकने के दौरान अब्दुल्ला उन्हें कोर्ट ले गये। गाँधी कोर्ट में भारतीय पगड़ी पहन कर बैठ गये। मजिस्ट्रेट ने उनकी तरफ देखा और पगड़ी उतारने के लिए कहा। गाँधी ने पगड़ी उतारने से मनाकर दिया और कोर्ट से बाहर आ गये।

19वीं शताब्दी में भारत और दक्षिण अफ्रीका दोनों ही ब्रिटिश साम्राज्य के भाग थे। दक्षिण अफ्रीका की गोरी जनता अपने बगीचे विकसित करना चाहती थी। वे ऐसे श्रमिक चाहते थे जो सस्ती दरों पर कठिन मेहनत कर सकें। उन्होंने भारत से श्रमिक भर्ती करने का निश्चय किया।

उन्होंने बंधुआ मजदूर व्यवस्था पर श्रमिकों की भर्ती की। इस व्यवस्था के तहत, भारतीय प्रति वर्ष कुछ शिलिंग पर काम के लिए भर्ती हुए।उन्होंने एक बन्दुआ-पत्र पर हस्ताक्षर किये कि वे पाँच वर्षा तक सेवा करेंगे। उन्हे इससे पहले भारत आने की अनुमति नहीं मिलेगी। पाँच वर्षो के अन्त में, वे अपने समझौते को काम करने के लिए पाँच वर्षो के लिए या भारत लौटने के लिए पुन: नया करा सकते थे।

इकरारनामा की अवधि समाप्त होने के बाद, दक्षिण अफ्रीकी सरकार नहीं चाहती थी कि भारतीय वहाँ स्वतन्त्र नागरिक की तरह रहें। वे उनकी उधमशीलता और किफायती तरीके से भयभीत थे। भारतीयों पर अनेक अपमानित करने वाले प्रतिबन्ध थे। वे बकुआ मजदूर की तरह

जीवन जी रहे थे उनकी स्थिति अर्द्ध-भूखे और अर्द्ध-दासता की थी, एक स्वतन्त्र नागरिक की तरह जीवन नहीं था।

कुछ राज्यों में भारतीय सड़क पर नहीं चल सकते थे या रात के समय अपने घर से बाहर नहीं जा सकते थे। कुछ भारतीय दक्षिण अफ्रीका में व्यापारी के रूप में गये और उनमें से कुछ का अच्छा धन्धा चल रहा था। लेकिन अधिकांश राज्यों में भारतीयों को सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन से अलग रखा गया था।

गाँधी को प्रिटोरिया जाना पड़ा जहाँ मुकदमे की सुनवाई होनी थी। उन्हें ट्रेन से यात्रा करनी थी। प्रथम श्रेणी की टिकट उनके लिए बुक करायी और गाँधी ने यात्रा आरम्भ की। गाँधी प्रथम श्रेणी के टिकट के साथ प्रथम श्रेणी के डिबे में थे। जब ट्रेन पिटवर्ग पहुँचीएक गोरे यात्री ने डिबे में प्रवेश किया। उसने गाँधी जैसे काले आदमी की इस डिबे में यात्रा करने पर आपत्ति जतायी। वह गाँधी जैसे काले यात्री को डिबे से बाहर निकालना चाहता था। गाँधी ने डिब्बे से बाहर जाने से मना कर दिया। गार्ड ने कहा गाँधी को ट्रेन से बाहर फैंक दो। ट्रेन चल पड़ी और उन्हें बड़ी निर्ममता गो निर्जन और सुनसान जगह की कड़ी ठण्डी रात में प्लेटफार्म पर फैंक दिया।

गाँधी चले गये और प्रतीक्षा हाल में बैठ गया। रेलवे अधिकारयों ने उनके सामान को संभाला जिसमें उनका ओवरकोट भी था। लेकिन उनके मस्तिष्क में रिथरत नहीं थी कि वे इस घटना के लिए पूछ सकें। घर से बहु तदूर निर्जन, सुनसान प्लेटफार्म पर अंधेरे में कड़ी ठण्डी रात में अकेले बैठै काँप रहे थे। कोई सहायता करने वाला नहीं था, अपने जीवन की सबसे बड़ी कठिनाई का सामना किया।

पहले उसे अपमानित किया गया लेकिन उन्होंने महसूस किया कि इस समय क्या मानव की प्रतिष्ठा का हनन हु आ।क्या इस घटना का साथ देना है? जिन्होंने उनसे एक दास, अमानुष की तरह व्यवहार किया।

उनके मन में अनेक सवाल उठे, क्या उसे सहयोग करना है? क्या उसे कायर बनना है? या अपने मानव होने के अधिकार को छोड़ दिया जाय ? क्या उसे खड़ा होकर प्रतिरोध करना चाहिए? यदि अपने लिए नहीं लड़ता है तो उसके लिए कौन लड़ेगा, क्या वह इस आदेश को स्वीकार कर ले कि बुद्धिमानी वीरता का एक भाग है और भारत वापस लौट जाय। इस कर्म-युद्ध क्षेत्र को छोड़ दिया जाय। क्या वह आत्म सम्मान को बचा सेकेंगे? इन सभी प्रश्नों का उत्तर गाँधी धीरे-धीरे निकालने लगे। उसने कुछ निश्चय किया। वह अपना अपमान सहन नहीं करेगा और न इस अपमान में सहयोग करेगा। वह सहमति देने के बजाय वह संघर्ष करेगा। उसके खिलाफ शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। लेकिन अपनी इच्छा शक्ति और अपनी योग्यता से अपने विरोधी का असहयोग करेगा। वह प्रतिरोध करेगा। उस रात गाँधी ने अपनी आपको खोजा। उस रात गाँधी ने भय को बाहर निकाल दिया। उन्होंने यह खोजा कि यदि कुछ करने का निश्चय कर लेता है तो कोई भी भय उनके पास नहीं आ सकता। उस रात गाँधी अपने कमजोर व शर्मीलेपन के आवरण को छोड़कर एक महान व्यक्तित्व वाला महान आदमी बना जिसको दुनिया ने बाद में पहचाना। उन्होंने स्वयं कहा यह

उनके जीवन का सबसे सृजनात्मक अनुभव था। अपने अन्दर शक्ति की खोज करना और पाप कर्म के अपराध के साथ असहयोग करने की शक्ति का निश्चय किया।

उन्होंने कई विचार-विमर्श के बाद अहिंसक असहयोग की पद्धति और विचार को स्वीकार किया। इसका सरलतम प्रयोग करने का प्रयास किया। अनुशासन यह है, नीति यह है - मैं आपसे घृणा नहीं करूंगा, लेकिन जब आप गलती करते हैं, मैं आपकी आज्ञा पालन नहीं करूंगा। जैसा आप समझते हो। मैं अपनी आत्मशक्ति के माध्यम से आपकी पाशविक शक्ति का पूरी सामर्थ्य से विरोध करूंगा। मैं अपनी इच्छा शक्ति से आपको झुकाने का प्रयास करूंगा।

दो घटनाओं ने गाँधी के जीवन को प्रभावित किया। प्रथम, मानव इतिहास में बहिष्कार की नीति (धक्का मारकर भगना), उस रेलगाड़ी के डिब्बे से गाँधी का बहिष्कार, इसका तात्पर्य है एशिया और अफ्रीका के शासन से गोरे लोगों का बहिष्कार। इसका मतलब यह हुआ संसार के दबे हुए लोगों का आधुनिक विद्रोह का जन्म। उपनिवेशवादियों को वही मिलेगा जो उन्होंने बोया है । उन्होंने अत्याचार बोया है तो उन्हें अपना अत्याचार ही भुगतना पड़ेगा।

दूसरी महत्वपूर्ण यह थी- नैतिक शक्ति के युद्ध का आरम्भ। पूर्व और पश्चिम के राष्ट्रों को अपने मतभेद युद्ध के द्वारा समाप्त करने की आदत हो चुकी थी। यह महसूस हो चुका था कि युद्ध एक महती आवश्यकता थी और इसका कोई विकल्प नहीं था। एक बात स्पष्ट हो चुकी थी कि सफलतापूर्वक युद्ध करे या एक दास का जीवन जीने के लिए तैयार रहे।

तब गाँधी ने भारत और संसार को दिखाया कि इन विकल्पों में से अपनाने की कोई आवश्यकता नहीं है। पाशविक शक्ति का विरोध आत्म-शक्ति से किया से किया जा सकता है और विरोध के साथ सह-अस्तित्व आत्मशक्ति की सद्भावना से हो सकता है।

गाँधी ने अपनी यात्रा अनेक बाधाओं के यावजूद जारी रखी। वे पहले जोहनयर्ग और फिर प्रिटोरिया गये। उन्होंने अपने आपको लीगल काम मे स्टस्त किया जिसके लिए थे दक्षिण अफ्रीका गये थे। उन्होंने केस के तथ्यों का अध्ययन किया। उन्होंने यह पाया कि यदि एकाउन्टिग एवं बुक-कीपिंग का अच्छा ज्ञान है एवं अच्छी पकड है तो सत्य को सामने लाया जा सकता है। इसलिए उन्होंने एकाउन्टिंग की गहनताओं को समझने के लिए अध्ययन आरम्भ कर दिया। उन्होंने हमेशा महसूस किया कि न्याय की प्राप्ति के लिए कटुता, दुश्मनी और बदले की भावना के बिना एक वकील के रूप में कार्य किया जाय तो सच्ची सेवा हो सकती है। न्याय को रिश्वत की आवश्यकता नहीं है। इसलिए उन्होंने विश्वास किया कि कोर्ट से बाहर विवादों का निपटारा करने के लिए कानून और कामनसेन्स का प्रयोग करना चाहिए, कटुता व घृणा जैसा कि विवादों में देखने को मिलता है, उससे बचना चाहिए

गाँधी अपने ग्राहक सेठ अब्दुल्ला का विश्वास पाने में सफल हुए। केस की दूसरी पार्टी भी गुजरात से भारतीय मुस्लिम व्यापारी था। अन्त में, गाँधी के तर्क-वितर्क एवं निरन्तर प्रयासों से कोर्ट से बाहर विवाद का समाधान करने में सफल हुए जिससे सभी सन्तुष्ट थे। दक्षिण अफ्रीका में गाँधी का काम सम्पन्न हुआ और भारत वापस आने की तैयारी की।

जब गाँधी का विदाई समारोह आयोजित हो रहा था, समारोह में गाँधी बोलने वाले थे कि उनकी नजर एक नेटाल मर्करी की कापी पर पड़ी। इसमें एक रिपोर्ट थी जिसका सम्बन्ध नेटाल में रह रहे सभी भारतीयों को मताधिकार से वंचित करने से सम्बन्धित बिल था। गाँधी ने इस बिल को देखा और यह माना यह बहु तबड़ी व्यवधान, रूकावट की शुरूआत है। उन्होंने कहा यदि बिल पास हो जाता है तो भारतीयों के बहु तबड़ी मुसीबत हो जायेगी। उनके अनुसार अपने आत्मसम्मान के लिए संघर्ष करना चाहिए, आन्दोलन करना चाहिए। सभी ने यह महसूस किया कि बिल का विरोध होना चाहिए। लेकिन सवाल इस बात का था नेतृत्व कौन करे? जनमत को संगठित कौन करे? और जिससे विधायिका को दबाव में लाया जा सके।

जवान भारतीय जो पढ़े-लिखे थे, वे ऐसा कर सकते थे। लेकिन उनके हित दूसरे प्रकार के थे। समारोह पार्टी के सभी सदस्य गाँधी की ओर मुड़ गये। उन्होंने कहा कि वह ऐसा आदमी है कि जो भारतीय समुदाय को बचा सकते हैं। गाँधी विमुखता की ओर थे। वे भारत अपने घर वापस आने की इच्छा रखते थे। लेकिन भारतीय समुदाय के प्रमुख सदस्यों की निरन्तर माँग और अपनी कर्त्तव्यपरायणता के वशीभूत होकर भारत आना एक महीने के लिए स्थगित करने पर सहमत हो गये। उन्होंने सार्वजनिक सेवा के लिए कोई पारिश्रमिक लेने से मना किया। एक समूह की आवाज सुनाई दी कि अल्लाह महान और दयालू है। आवश्यकता के अनुसार धन और आदमियों की व्यवस्था हो जायेगी। उन्होंने उन लोगों का नाम देने के लिए कहा जिनका नाम मतदाता सूवी में था और वहाँ रूकने का मन बना लिया। गाँधी ने महसूस किया कि दक्षिण अफ्रीका में ईश्वर उनके जीवन की आधार भूमि बना चुका है और राष्ट्रीय आत्मसम्मान के लिए लड़ाई, संघर्ष के बीज की बुवाई हो चुकी है

इस प्रकार प्रतिबद्धता के लिए गाँधी अफ्रीका में दो दशक रूके जबकि अपने ठहराव के लिए केवल एक महीना स्थगित किया था। उन्होंने वहाँ कोई कमी नहीं छोड़ी। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में और इंग्लैण्ड में जनमत निर्माण करने की कोशिश की। इसके लिए उन्होंने प्रेस और सार्वजनिक व्यक्तित्व का भी सहारा लिया। उनके संघर्ष के अपने परिणाम थे। ब्रिटिश सरकार ने नेटाल विधायिका द्वारा पास किये बिल पर वीटो (टमजव) किया। लेकिन नेटाल में दूसरे बिल पर भी वीटो (टमजव) हो रहा था। इस बिल का सम्बन्ध नेटाल में उन सभी बत्युआ मजदूरों पर तीन पाउण्ड का पोल टैक्स लगाने से था जो अपने बन्दुआ-पत्र के बिना नवीनीकरण कराये दक्षिण अफ्रीका में रहना चाहते थे।

यह अमानवीय कदम का और गरीब श्रमिक जो महीने केवल 14 शिलिंग ही कमाते थे, उन्हें दयाव में लाना था। भारतीयों पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगाए गये थे। गाँधी ने देखा संघर्ष लम्बा और कठिन हो सकता है। इसलिए उन्होंने भारतीयों का सगठन बनाया जिसे नेटाल भारतीय कांग्रेस नाम दिया। उन्होंने उन लोगों का संगठन मनाया जो चन्दा देते थे और उनके आचरण के कुछ नियम थे। वे भारतीय समुदाय की मिटिंग करना, याचिका लगाना, स्मरण-पत्र देना, जनरल में आलेख निरन्तर रूप से करके जनमत निर्माण करने में लग गये। उन्हें चारों ओर से समर्थन और सहयोग प्राप्त हुआ। उन्होंने यह माना कि भारतीयों के अपमान को अपना अपमान समझे।

इस प्रकार उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में अपने ठहराव की अवधि को बढ़ाया। वे भारत गये और अपने परिवार को दक्षिण अफ्रीका में ही ले आये।

वे जानते थे कि गोरे लोगों का नजरिया पहले से ही कठिन है। आगे गोरे लोगों का व्यवहार और भी कठिन हो सकता है क्योंकि उनके हितों के लिए खतरा बढ़ रहा था। अधिकार इतनी आसानी से नहीं मिलेंगे। गाँधी ने यह माना कि अधिकार गोरे लोगों के कठोर हाथों में से निकालने होंगे।

इसके लिए उन्होंने दो वस्तुओं को आवश्यक माना। भारतीय समुदाय को संगठित रहना चाहिए। उनका संगठन मजबूत होना चाहिए। कष्ट सहने के लिए तैयार रहे बिना कुछ भी करना सम्भव नहीं है। इसके लिए उन्हें अपने छोटे हितों का बलिदान करना चाहिए और समानता एवं स्वतन्त्रता के लिए कीमत चुकाने के लिए तैयार रहना चाहिए।

उन्होंने आत्म-इच्छा की शक्ति की खोज की। यह आत्म-इच्छा की शक्ति सभी में विद्यमान है। लेकिन प्रत्येक को इस इच्छा शक्ति को खोजने का प्रयास करना होगा और बुराई के खिलाफ इसका प्रयोग करना होगा। गाँधी ने इस शक्ति को खोजने में उनकी सहायता की। लेकिन वे ऐसा तभी कर सकते है। यदि वे स्वार्थ रहित होकर निष्पक्षता से अपनी शक्ति का प्रदर्शन करें। वे ऐसा करने के तभी योग्य होंगे, यदि वे अपने आपको शुद्ध कर लेंगे और सभी प्रकार के लालच से अपने आपको ऊपर कर सकेंगे। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक नेता को अपनी इच्छाओं पर कमाण्ड करना होगा। उन्होंने महसूस किया कि जीवन में ब्रह्मचर्य का पालन किये बिना वह कोई सार्वजनिक कार्य नहीं कर सकते। उन्होंने इस सम्बन्ध में अपनी पत्नी से विचार-विमर्श किया। उनकी पत्नी को कोई आपत्ति नहीं थी। 1906 में उन्होंने ब्रह्मचर्य का व्रत लिया जब वे 37 वर्ष के थे।

उन्होंने पोलकर के विरोध में एक भयंकर आन्दोलन खड़ा कर दिया। यदि नेटाल कांग्रेस इस विषय पर शान्त रहती तो वायसराय से 25 पाउण्ड स्टार्लिंग टैक्स की स्वीकृति हो गयी। भारत के कल्याण के लिए ट्रस्टी के रूप में, वायसराय को इस अमानवीय टैक्स की स्वीकृति कभी नहीं देनी चाहिए थी। कांग्रेस के लिए यह दुख की बात है कि वह बकुआ भारतीयों के हितों को पूरी तरह नहीं बचा सकी। भारतीयों से टैक्स हटना ही चाहिए। इस निश्चय को कांग्रेस ने कभी नहीं भुलाया। इस निश्चय को पूरा करने में बीस वर्ष लग गये।

भारतीयों की तपस्या में सत्य मूर्तिमान हुआ। यद्यपि यह विजय अविचल सत्य, साहस, धैर्य और निरन्तर समर्पण पूर्ण कार्यो के बिना सम्भव नहीं हुई। यदि भारतीय समुदाय संघर्ष छोड़ देता- हार कर बैठ जाते, कर को अनिवार्य समझकर उसके आगे झुक जाते तो वह कर आज तक वसूल होता रहता और यह शाश्वत लज्जा (कलंक) दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों पर और समूचे हिन्दुस्तान पर लगता।

3.7 गाँधी के सत्याग्रह का जन्म

ट्रान्सवेल राज्य ने यह सूचित किया कि सन् 1906,22 अगस्त का नया अध्यादेश सभी भारतीयों पर अनिवार्य रूप से लागू है। यहाँ तक है बच्चों पर भी, उन्हें फिंगर प्रिन्ट सहित अपना

नाम पंजीकृत करना है। प्रत्येक भारतीय को इस प्रकार का प्रमाण-पत्र अपने साथ लेकर चलना होगा। जो ऐसा नहीं करेगा उसे ट्रान्सवेल से निर्वासन कर दिया जायेगा।

इस अध्यादेश का प्रतिकार करने के लिए, गाँधी ने सितम्बर 11, 1906 को जोहन्सबर्ग के एम्पायर रंगमंच में सभी भारतीयों की मिटिंग की। हाल पूरी तरह से लोगों से भर गया। हाजी हबीब ने गाँधी द्वारा बनाया गया प्रस्ताव पढकर सुनाया। यह घोषणा की कि भारतीय इस अध्यादेश को नहीं मानेंगे। इसके लिए वे सजा भुगत सकते हैं, लेकिन स्वीकार नहीं करेंगे।

चेयरमैन ने सुझाव दिया कि उन्हें ईश्वर को साक्षी मानकर प्रस्ताव पास करना चाहिए। यह ईश्वर के सामने एक प्रतिज्ञा होगी। यह एक आध्यात्मिक कर्तव्य होगा। सभी खड़े हो गये और ईश्वर के नाम की शपथ ली। यह सत्याग्रह का जन्म था।

जनरल स्मट जो प्रधानमन्त्री थे, घबराया हुआ था। वह समझौता करना चाहता था और उसने गाँधी से कहा कि उनकी सरकार ट्रान्सवेल में भारतीयों के निर्वासन को आगे रोकना चाहती है। इसलिए यदि भारतीय स्वेच्छा से पंजीकृत हो जाय तो अध्यादेश को वापस ले लिया जाएगा। गाँधी ने जनरल की बातों पर विश्वास कर लिया और समझौते के लिए सहमत हो गये। वह प्रथम पंजीकरण के रूप में सहमत हो गये।

जनरल स्मट ने गाँधी से विश्वासघात किया। जैसे ही उसे पता चला कि (एक बड़ी संख्या में भारतीय स्वेच्छा से पंजीकृत हो गये, जनरल बिल ले आया और घोषणा की कि अधिनियम वापस नहीं लिया जाऐगा और सभी पंजीकरण इस अधिनियम के अधीन होंगे।

हमीदा मस्जिद के मैदान में एक बहुत बड़ी मिटिंग का आयोजन किया गया। सरकार को एक अन्तिम चेतावनी पत्र भेजा। चुपचाप कष्ट सहन करने से गाँधी ने लोगों की निर्भयता और अवज्ञा की स्थिति का नेतृत्व किया। जिन्होंने सरकार को अन्तिम चेतावनी दी- हमें कहते हुए खेद है कि यदि समझौते के रूप में एशियाटिक एक्ट समाप्त नहीं होता है और एक विशेष तारीख तक इस अधिनियम का प्रभाव भारतीयों को बताने की सरकार की इच्छा नहीं है। भारतीयों द्वारा प्राप्त प्रमाण-पत्रों की होली जलायी जायेगी, वे विनम्र हैं परन्तु परिणाम के प्रति सुदृढ़ है।

काले अधिनियम के विरोध में संघर्ष और अधिक मजबूत हुआ। गाँधी ने अधिनियम को चुनौती देने के लिए आईनेक अच्छे तरीके निकाले। एक लम्बी अभियान का आयोजन किया गया। इस अभियान का आरम्भ नवम्बर 6, 1913 को हुआ। यह भारतीयों के दृढ़ निश्चय और बहादुरी का मूर्तिमान था। जब अभियान में एक नदी को पार कर रहे थे, एक स्थान पर, एक बच्चा अपनी माँ की पीठ पर था, वह नदी के भवराते हुए पानी में गिर गया। माँ ने बच्चे की मृत्यु पर न तो विलाप किया और दुखी हुई। परन्तु माँ ने अभियान में चलना जारी रखा।

अत्याचार की खबरों से पूरा संसार दुखी था और पूरे दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों द्वारा हड़ताल का आव्हान किया गया।

गोरे लोगों की तानाशाह और कट्टर, न झुकने वाली सरकार को प्रेम और तपस्या ने पिघला दिया। सरकार ने भारतीयों की तीन माँगों को स्वीकार किया-

1. पोल टैक्स की समाप्ति

2. विवाह का प्रमाणीकरण
3. निवास और यात्रा पर प्रतिबन्धों की समाप्ति

सत्याग्रह सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। सत्याग्रह की गाँधीवादी तकनीकों में निम्नलिखित शामिल था-

- तथ्यों को अच्छी तरह व्यवस्थित किया और सत्य को स्थापित किया।
- याचिकाऐं और प्रदर्शन जैसे- मिटिंग, मार्च, जुलूस निकालना।
- खुली घोषणाऐं, प्रतिज्ञाऐं, व्रत
- सामान की बिक्री एवं निर्माण पर रोक को चुनौती देना, अनादर करना।
- टैक्स समाप्ति के लिए आन्दोलन।
- सविनय अवइत एवं भूख -हड़ताल करना।

गाँधी ने महसूस किया कि उनका काम पूरा हो गया है। गाँधी ने भारत वापस लौटने का निश्चल किया और अपनी मातृग्रमइ में अपनी सत्याग्रह की शक्ति का प्रदर्शन करने का निश्चय किया।

3.8 भारत वापसी और भारत के लोगों की मुक्ति

जुलाई 1914 में गाँधी और उनके परिवार ने दक्षिण अफ्रीका छोड़ दिया और भारत लौट आये। गाँधी पहली बार रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिले। उन्होंने गाँधी को 'महात्मा' का उपनाम दिया, दोनों एक दूसरे को बहुत अच्छी तरह जानते थे, लेकिन दोनों की साधना के रास्ते अलग-अलग थे। जबकि रवीन्द्रनाथ टैगोर गाँधी को महात्मा कहने वाले पहले नेता थे। सरोजनी नायडू गाँधी को राष्ट्रपिता कहने वाली पहली नेता थी।

संसार के हजारों लोगों के लिए, गाँधी पहले ही महात्मा बन चुके और दिनो-दिन उनके अनुयायी बढ़ रहे थे। ब्रिटिश मजिस्ट्रेट जिससे भारत में पहली ट्राइल की, गाँधी को नमस्कार किया, जो एक अभियुक्त की तरह कोर्ट में खड़े हुए थे और कहा कि तथ्यों की अनदेखी करना असम्भव होगा जो अपने देश के लाखों लोगों की नजर में है। वह एक महान नेता और महान देशभक्त थे। उनका जीवन उच्च आदर्श, सरलता, सहजता और सज्जनता व साधुता का था।

भारत में गाँधी के कार्य काल-क्रम के अनुसार निम्नलिखित है:-

- सन् 1915 मई में अहमदाबाद के पास सत्याग्रह आश्रम स्थापित किया ।
- सन् 1917 में साबरमती नदी के किनारे पर आश्रम का विस्तार किया। चम्पारन (बिहार) में नील के किसानों के अधिकारों के लिए सत्याग्रह का सफलतापूर्ण नेतृत्व किया । क्षेत्र छोड़ने के आदेश को चुनौती दी, गिरफ्तार हुए लेकिन कुछ स्थितियों में केस वापस ले लिया गया।
- सन् 1918, फरवरी, गाँधी ने पहली उपवास की, अहमदाबाद के मिल- मजदूरों की हड़ताल का नेतृत्व किया, तीन दिन के उपवास के बाद मिल मालिक समझौते के लिए सहमत हो गये ।
- सन् 1918, मार्च में खेड़ा के किसानों के सत्याग्रह का नेतृत्व किया।
- सन् 1918, अप्रैल में रोलट बिल के विरोध में एक दिन के लिए सभी कार्यो का स्थगन किया और देश भर में हड़ताल का आव्हान किया। हिंसा होने पर साबरमती में तीन दिन की तपस्या व उपवास किया और सत्याग्रह आन्दोलन को स्थगित किया। जिसे उन्होंने बहुत बड़ी भूल कहा

क्योंकि जनता पूरी तरह से अनुशासित नहीं थी। इंगलिश वीकली के सम्पादक बने-यंग इण्डिया और गुजराती वीकली- नवजीवन, दिल्ली में अखिल भारत खिलाफत ककेरेन्स की अध्यक्षता की।

- सन् 1920, अप्रैल में, अखिल भारत होम रूल लीग के अध्यक्ष निर्वाचित हुए, असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव पारित कराया।
- अगस्त में युद्ध मेडलस का समर्पण किया, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सर्वोच्च नेता बन गये।
- सन् 1921, होमरूल का प्रचार करने के लिए केवल कटि वस्त्र पहने और एक साधारण आदमी के रूप में जनता के साथ अपनी पहचान स्थापित की।

गाँधी ने बहुतबड़े स्तर पर सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाया जिसमें हजारों भारतीय जेल गये। गाँधी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की ओर से कार्यकारिणी सत्ता से बात करने के लिए नियुक्त भी हुए।

- सन् 1922 में चौरी-चोरा में हिंसा होने के कारण सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर दिया और बारडोली में प्रायश्चित के रूप में पाँच दिन का उपवास रखा। यंग इण्डिया में विद्रोहकारी आलेख लिखने के आरोप में साबरमती में गिरफ्तार किया गया। जज ब्रुमफील्ड के सामने अहमदाबाद में ट्राइल के समय अदालत में बहस की और जज ने छ: वर्ष की सजा सुनाई। छ: वर्ष यरवदा जेल में निकाले।
- 1929 में कलकत्ता में विदेशी कपड़े की होली जलाने के आरोप में गिरफ्तार हुएऔर एक रूपया अर्थदण्ड हुआ।
- 1929 दिसम्बर में सम्पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में मतदान हुआऔर विधायिका के बहिष्कार की बात रखी। 26 जनवरी को राष्ट्रीय स्वतन्त्रता दिवस के रूप में मनाने का प्रस्ताव रखा।
- सन् 1930,12 मार्च को दण्डी मार्च का आरम्भ किया। साबरमती से 79 सत्याग्रहियों के साथ एतिहासिक नमक यात्रा (दण्डी मार्च) की।
- सन् 1930,06 अप्रैल को समुद्र के किनारे हाथ में नमक लेकर नमक कानून तोड़ा। पुलिस के द्वारा कराडी में गिरफ्तार किया गया और बिना ट्राइल के यरवदा जेल भेज दिया। बहुतसे लोग गिरफ्तार हुए।
- सन् 1931, जनवरी में बिना शर्त के 30 दूसरे कांग्रेस के नेताओं सहित रिहा किया गया। 1931, जनवरी में गाँधी-इरविन समझौता हुएजिससे सविनय अवज्ञाआन्दोलन समाप्त हुआ।
- सन् 1931 अगस्त में राउण्ड टेबिल ककरेन्स के लिए बम्बई से जहाज से रवाना हुए।
- सन् 1931, दिसम्बर में गाँधी भारत वापस आये, कांग्रेस ने पुन: सत्याग्रह करने के लिए अधिकृत किया। यह चौथा देशव्यापी प्रयास था।
- सन् 1932, जनवरी में गाँधी सरदार पटेल के साथ बिना ट्राइल के मुम्बई में गिरफ्तार किये गठे और यरवदा जेल में भेज दिया गया।

- सितम्बर 20 को अनशन आरम्भ किया। अछूत लोगों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र देने के ब्रिटिश कार्य का विरोध किया।
- सितम्बर 26 को ब्रिटिशसरकार के द्वारा पूना समझौता स्वीकार करने के बाद रवीन्द्र नाथ टैगौर के सामने अनशन समाप्त किया।
- सन् 1933, यंग इण्डिया को जगह हरिजन का साप्ताहिक प्रकाशन आरम्भ किया।
- जुलाई में उन्होंने साबरमती आश्रम को विघटित किया, जिसे अस्पृश्यता निवारण का केन्द्र बनाया।
- सन् 1934, अक्टूबर में अखिल भारत ग्राम उद्योग परिषद आरम्भ की।
- सन् 1936 में आश्रम सेवाग्राम (वर्धा) में स्थापित किया, शिक्षा के बारे में अपने विचार दिये।
- सन् 1939 में राजकोट में अनशन आरम्भ किया और वायसराय के हस्तक्षेप के बाद समाप्त हुआ।
- सन् 1940 में द्वितीय विश्वयुद्ध के सम्बन्ध में भारतीयों को अपनी राय देने पर ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रतिबन्ध लगाये जाने के विरोध में सीमित-व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया। इस वर्ष 23000 लोगों को कैद हुई।
- सन् 1942, मार्च गाँधी की सर स्टेफोर्ड क्रिप्स से नई दिल्ली में मुलाकात हुई, क्रिप्स के प्रस्ताव को पोस्टडैटड चैक कहा और अन्त में इसे कांग्रेस ने अस्वीकार कर दिया।
- अगस्त में कांग्रेस की मिटिंग में भारत छोडों आन्दोलन का प्रस्ताव पारित किया गया। गाँधी के नेतृत्व में पूरे भारत में सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ हुआ।
- सन् 1942, 9 अगस्त को गाँधी कस्तूरबा और कांग्रेस के नेताओं के साथ गिरफ्तार हुए और आगा खाँ पैलेस में कैद किये गये। देश के बहुतसे भागों में विद्रोह हुआ।
- सन् 1942, 15 अगस्त का नजरबन्दी के गांधी के सचिव, महादेव देसाई की मृत्यु हो गयी।
- 1943, फरवरी, आगा खाँ पेलेस में गाँधी ने 21 दिन का उपवास आरम्भ किया। भारतीय नेताओं और वायसराय के गतिरोध समाप्त हुआ।
- सन् 1944, 22 फरवरी जब आगा खाँ पैलेस में कस्तूरबा गाँधी को नजरबन्द रखा गया तो 74 वर्ष की आयु में कस्तूरबा की मृत्यु हो गयी।
- सन् 1944, मई 6, को गाँधी को स्वास्थ्य खराब होने की स्थिति में बिना शर्त नजरबन्दी से रिहा कर दिया गया। यह गाँधी का अन्तिम कारावास था। उन्होंने अपने जीवन के 2338 दिन जेल में बताऐं।
- सितम्बर, 1944 हिन्दू-मुस्लिम एकता पर मुस्लिम लीग के जिन्ना से मुम्बई में महत्वपूर्ण मिटिंग की।
- नवम्बर, 1946 में प्रान्तीय सरकार के मुस्लिम प्रतिनिधित्व देने के सम्बन्ध में साम्प्रदायिक दंगे को समाप्त करने के लिए पश्चिमी बंगाल के 49 गावों का चार महीने तक दौरा किया।
- मार्च, 1947, हिन्दू-मुस्लिम तनाव को कम करने के लिए बिहार का दौरा किया। देश का विभाजन भारत और पाकिस्तान को स्वीकारने के लिए सभाऐं आरम्भ हुई।

- अगस्त 15, स्वतन्त्रता प्राप्ति एवं विभाज के समय कलकत्ता में साम्प्रदायिक दंगों को रोकने के लिए उपवास और प्रार्थना की।
- जनवरी 13, 1948 को साम्प्रदायिक एकता के लिए दिल्ली में 5 दिन का उपवास रखा।
- जनवरी 20, 1948 को बिरला 'हाउस में प्रार्थना सभा के बीच में बम विस्फोट हु आ।
- जनवरी 30, 1948 हिन्दू-मुस्लिम एकता की गाँधी की वकालत के विरोध में नाथूराम विनायक गोडसे द्वारा बिरला हाउस में हत्या कर दी गयी।

3.9 भारत का विभाजन

गाँधी ने भारत विभाजन का विरोध किया। महात्मा बाई डीजी तडलकर की पुस्तक के वात्थूम सात के अन्तिम अध्याय के अन्तिम पेज में ऐसा माना है। उन्होंने कहा कि विभाजन के बाद प्राप्त की गई स्वतन्त्रता लकड़ी की रोटी के समान होगी। यह 1.6.1947 को सुबह की प्रार्थना से आधा घन्टा पहले कही। गाँधी ने प्रार्थना की कि ईश्वर मुझे विभाजन का दृश्य देखने के लिए जीवित रही रखे। साथ में उन्होंने यह भी कहा कि - यह नहीं कहा जा सकता गाँधी भारत की सर्जरी करने वालों में था। आगे की सन्तान यह जानेगी कि इस बूढी आत्मा ने इसके लिए घोर कष्ट सहन किये। गाँधी के विरोध में कुछ भी आलोचना की जा सकती, गाँधी को बचाव करने की आवश्यकता नहीं है। वास्तव में यह उनके लिए दुख की बात है। कांग्रेस के नेताओं और केबिनेट मिशन गाँधी के बिना लगातार विचार विमर्श कर रहे थे और उनके सचिव प्यारेलाल ने कहा कि "पाइलट" (गाँधी) को निकाल दिया। गाँधी उन्हे नहीं छोडेंगे।

प्रश्न यह नहीं है कि गाँधी ने तिभाजन का समर्थन किया लेकिन जो उनकी आँखों के सामने घटित हु आ उसे रोक नहीं सके। इसलिए उनके अपने कारण थे, अपने आपको इस उत्तरदायित्व से मुआ नहीं कर सकते। इसके अलावा वे नेहरू, सरदार पटेल या माउन्टबेटन पर किसी तरह का दोषारोपण नहीं करना चाहते। वह गाँधी के लिए ठीक नहीं था। उन्होंने यह घोषणा की भारत का विभाजन उनकी मृत्यु पर होगा और जब विभाजन हु आ अपने शरीर को काम में लेने में कोई समय नहीं खोया और छ माह से कम समय में ही उनकी मृत्यु हो गयी।

3.10 निष्कर्ष और सीख

गाँधी एक साधारण आदमी थे। उनमें कुछ भी असाधारण नहीं था। गाँधी और दूसरे मानव में अन्तर केवल इतना सा था कि हमने जो पीढ़ियों से सन्तों, महापुरुषों, सिद्ध पुरुषों, धर्म मन्थों के माध्यम से मूल्य प्राप्त किये, उनको उन्होंने आत्मसात किया। सत्य, अहिंसा और प्रेम उनके जीवन के आन्तरिक पहलू थे। उन्हें विश्वास था कि सभी मनुष्यों में दैवीयता है। उन्होंने उनमें दैवीयता को खोजने व जगाने का प्रयास किया। सभी मानव अधिकार मानव दायित्व से निकलते हैं। उन्होंने माना कि मानवता सभी के जीवन की पराकाष्ठा है। गाँधी सार्वभौमिकता में विश्वास करते थे। निष्कर्षत: यह माना जाता था कि हम एक-दूसरे पर परस्पर निर्भर हैं और इसलिए एक कार्य दूसरे के जीवन को प्रभावित करता है। उनका मानना था कि मानव का यह यथार्थ विचार है कि वह अपने साथियों (समाज-पड़ौस) के कल्याण के लिए कार्य करे।

गाँधी ने अनुभव किया कि हिंसा और असत्य मानव की उन्नति में सबसे बड़े बाधक हैं। राजनीति का आध्यात्मीकरण करने के लिए राजनीति में शामिल हु एजिससे लोगों का शोषण करने के बजाय लोगों की सेवा कर सकें।

गाँधी ने सत्याग्रह का अविष्कार किया। संसार ने सत्य की शक्ति को लेखकों, दार्शनिकों, धार्मिक नेताओं, गीता और वैदिक साहित्य के माध्यम से जाना है। परन्तु सत्य की शक्ति अर्थात सत्याग्रह का दिन-प्रति दिन के जीवन, व्यक्तिगत, निजी मामलों और सार्वजनिक जीवन में प्रयोग करने में गाँधी का अद्‌वितीय योगदान रहा।

सत्याग्रह में सत्य, अहिंसा और तपस्या जैसे मूल्य दिखायी देते हैं। सत्याग्रह के इन तीनों मूल्यों को लागू करने के लिए निम्नलिखित दूसरे मूल्य अनिवार्य एवं आवश्यक हैं- अभय, दूरदर्शिता, अच्छा आचरण, दयालुता, विनम्रता, उदारता, भक्ति एवं समर्पण। ये सभी मूल्य गाँधीवादी चिन्तन के हैं। गाँधी ने इन सभी मूल्यों को धारण कर रखा था। इसलिए वे मानवता के इतिहास में न्याय के लिए लड़ने वाले अद्‌वितीय एवं अतुलनीय योद्धा बन गये।

3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. गाँधी एम.के.: एन ओटोवायग्राफी और द स्टोरी ऑफ माई एक्सपरीमेन्ट विद टूथ, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 2001
2. गुडलर, चेरीजन: गॉधीज कन्सेप्ट ऑफ टूथ एण्ड जस्टिस, पूर्णोदय बुक ट्रस्ट, गाँधी भवन, कोच्चि, 1996
3. गणग्रेड, के.डी: मोरल लेसन फ्राम गाँधीज आटोबायग्राफी एण्ड अदर एसेज, कन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, न्यू देहली, 2004
4. बर्मा, रवीन्द्र: गाँधी (ए बायोग्राफी फोर चिन्द्रन एण्ड इन्जीनियरस), नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 2001

3.12 अभ्यास प्रश्न

1. गाँधीजी के बचपन का बर्णन कीजिए।
2. सत्याग्रह की अवधारणा का विवेचन कीजिए।
3. अहिंसा के जन्म के लिए उत्तरदायी परिस्थितियों का वर्णन कीजिए।
4. भारत के लोगों की मुक्ति के लिए गाँधीजी की भूमिका को समझाइये।

इकाई - 4

गांधीजी की सत्य अवधारणा

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 गाँधीजी के सत्य संबंधी विचार

- 4.2.1 गाँधीजी के अनुसार सत्य का विचार
- 4.2.2 सत्य और ईश्वर के बीच संबंध
- 4.2.3 सत्य और अहिंसा के बीच संबंध
- 4.2.4 सत्य और सत्याग्रह के बीच संबंध

4.3 सारांश

4.4 शब्दावली

4.5 अभ्यास प्रश्न

4.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में गांधीजी की सत्य की अवधारणा के संबंध में जानकारी दी जा रही है अर्थात् इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप अग्रांकित बिन्दुओं पर उनके दृष्टिकोण को जानने में सक्षम होंगे।

- गांधीजी के विचार में सत्य
- सत्य और ईश्वर के बीच संबंध
- सत्य व अहिंसा तथा सत्याग्रह के बीच संबंध
- सत्य के विचार का व्यावहारिक महत्व

4.1 प्रस्तावना

गांधीजी के चिंतन में सत्य की अवधारणा सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि उनका सम्पूर्ण चिंतन इसी अवधारणा पर टिका हु आहै। सत्य को उन्होंने व्यापक प्रावैगिक व व्यावहारिक अर्थों में व्याख्यायित किया है जो कि मानव जीवन व सामाजिक जीवन के विविध आयामों को प्रभावित करता है। सत्य को गांधीजी ने इसके तत्त्वमीमांसीय, ज्ञानमीमांसीय व मूल्य मीमांसीय जंजाल से मुक्त कराकर एक नैतिक जीवन जीने की शैली के रूप में प्रस्तुत किया। गांधीजी के अनुसार सत्य किसी आस्था या वस्तु का नाम नहीं है, बल्कि यह एक निरंतर खोज है। दूसरे शब्दों में सत्य कोई अमूर्त तत्व या सत्ता नहीं बल्कि यह हर पल खोजनीय व जीवन जीने योग्य शैली का नाम है। जिसको गाँधीजी ने ईश्वर, अहिंसा व सत्याग्रह जैसी अवधारणाओं से जोड़कर देखा व समझा और ज्यादा से ज्यादा व्यावहारिक व सार्थक बनाने का प्रयास किया।

4.2 गांधी के सत्य संबंधी विचार

4.2.1 गांधीजी के अनुसार सत्य का विचार

सामान्यतया सत्य को दार्शनिक विषय-वस्तु माना जाता है क्योंकि दर्शन-शास्त्र में ही इस बात की खोज की जाती है कि - सत्य क्या होता है, इसे कैसे जाना जा सकता है और इसका स्वरूप क्या है? लेकिन गांधीजी ने सत्य की इस निरपेक्ष व्याख्या को सापेक्ष व व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया जिसका स्पष्ट प्रमाण उन्होंने तब दिया जब ''आत्मकथा'' लिखने का निर्णय किया, तब एक निर्मल साथी ने गाँधीजी से यह पूछा कि-

“आप आत्मकथा क्यों लिखना चाहते हैं? यह तो पश्चिम की प्रथा है। पूर्व में तो किसी ने लिखी नहीं और लिखेंगे क्या? आज जिस वस्तु को आप सिद्धान्त के रूप में मानते हैं, उसे कल मानना छोड दें तो? अथवा सिद्धान्त का अनुसरण करके जो भी कार्य आज आप करते हैं, उन कार्यो में बाद में हेरफेर करें तो? बहु तसे लोग आपके लेखों को प्रमाण भूत समझकर उनके अनुसार अपना आचरण गढ़ते हैं। वे गलत रास्ते चले जायें तो इसलिए सावधान रहकर फिलहाल आत्मकथा जैसी कोई चीज न लिखें, तो क्या ठीक न होगा?''

इसके प्रति उत्तर में गांधीजी ने लिखा है कि ''मुझे आत्मकथा कही लिखनी है? मुझे तो आत्मकथा के बहाने सत्य के जो अनेक प्रयोग मैंने किए हैं, उनकी कथा लिखनी है। यह सच है कि उनमें मेरा जीवन ओतप्रोत होने के कारण कथा एक जीवन-वृतान्त जैसी बन जायेगी।''

गांधीजी ने आगे यह भी लिखा है कि -

“यदि मुझे केवल सिद्धान्तों अर्थात तत्वों का ही वर्णन करना हो, तब तो यह आत्मकथा मुझे लिखनी ही नहीं चाहिए, लेकिन मुझे तो उन पर रचे गये कार्यो का इतिहास देना है, और इसलिए मैंने इन प्रयत्नों को 'सत्य के प्रयोग' जैसा पहला नाम दिया है। इसमें सत्य से भिन्न माने जाने वाले अहिंसा, ब्रह्मचर्य इत्यादि नियमों के प्रयोग भी आ जायेंगे, लेकिन मेरे मन से सत्य ही सर्वोपरि है और उसमें अगणित वस्तुओं का समावेश हो जाता है। यह सत्य स्थूल-वाचिक सत्य नहीं है। यह तो वाणी की तरह विचार का भी है। यह सत्य केवल हमारा कल्पित सत्य ही नहीं है, बल्कि स्वतंत्र चिरस्थायी सत्य है अर्थात् जो परमेश्वर ही है।''

चूँकि 'सत्य' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'सत्' शब्द से हु ईहै जिसका अर्थ होता है - 'चेतना का अस्तित्व अर्थात सत्य का अर्थ है - 'जो अस्तित्त्ववान है। चूंकि अस्तित्ववानता ब्रह्माण्ड को परिचालित करने वाले नियमों से कहीं अधिक स्पष्ट होती है। इसलिए गांधीजी के अनुसार सत्य कुछ नही वरन् ब्रह्माण्ड में परिचालित होने वाला एक नियम है। गांधी के अनुसार विश्व की रीढ़ सत्य के बुनियाद पर ही टिकी है और यह बुनियाद ईश्वर के अलावा कुछ नहीं है।

गांधीजी एक गहन धार्मिक चिन्तक थे। हालांकि वे व्यापक रूप से हिडवाद, इसाईयत एवं जैन दर्शन से प्रभावित हु एथे। उनके धार्मिक चिंतन पर इनकी गहरी छाप थी और वह भी स्वयं इस श्रेणी में ही थे। उनका ईश्वर में विश्वास ही इसका आधार था । जब से गांधी चिंतन में ईश्वर को एक

सत्ता या व्यक्ति के रूप में प्रयोग किया जाने लगा - सर्वोच्च चेतना, या बुद्धिमत्ता, ब्रह्माण्डीय शक्ति, चेतना या उर्जा जैसी अवधारणाओं को उसके स्थान पर प्रयोग को प्राथमिकता प्रदान की गई, लेकिन आगामी जीवन में उन्होंने 'सत्य' को अंतिम आधार सत्ता के रूप में महत्त्व प्रदान किया। यह सत्य' बदलावों के बीच भी स्वयं अपरिवर्तनीय बना रहता है; और ब्रह्माण्ड को संचालित करता रहता है। उन्होंने लम्बे समय तक इस बात पर जोर दिया कि - 'ईश्वर ही सत्य है (God is Truth) ऐसा गाँधीजी इसलिए मानते थे, क्योंकि सत्य ईश्वर की बहु तसारी विशेषताओं या गुणों में से एक है और इस प्रकार ईश्वर की अवधारणा तार्किक रूप से सत्य की पूर्ववर्ती है, लेकिन आगे चलकर 1926 में गांधीजी सत्य की उक्त धारणा को परिवर्तित करते हु एकहा कि - 'सत्य ही ईश्वर है' (God is Truth)। इसको उसने सबसे महत्वपूर्ण खोजों में से एक माना और कहा कि यह वर्षो के सोचने के बाद दिया गया स्वरूप है। उसके अनुसार यह नई मान्यता उसकी सत्य की पुरानी मान्यताओं के ऊपर कई लाभ रखती थी। जिसमें शामिल हैं - यह ईश्वर की मानव-आरोपित परिकल्पना से बचाता है और यह आह्वान किया कि ईश्वर इसमें नया कुछ नहीं जोड़ता है। साथ ही सत्य की इस धारणा को लेकर आस्तिकों और नास्तिकों में भी कोई मतभेद नहीं रह जाता क्योंकि दोनों ही प्रकार के लोग सत्य की खोज व ब्रह्माण्ड के रहस्यों को प्रकट करने में रूचि रखते हैं। इसमें सत्य की मौलिक अवधारणा पर भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता, बल्कि गांधीजी यह कहते हैं कि – "मैने यह पाया कि सत्य तक पहुंचनेका सबसे निकट का मार्ग प्रेम से होकर ही गुजरता है।" यही कारण था कि मैंने देखा कि ''ईश्वर ही सत्य है। कहने की बजाय ''सत्य ही ईश्वर है'' श्रेयस्कर है। तद्नुसार सामाजिक परिवर्तन के अपने संघर्ष में हमें सत्य और एकमात्र सत्य पर ही टिका रहना चाहिए।

गांधीजी के चिंतन के सिद्धान्तों में सबसे अहम् सिद्धान्त 'सत्य' का सिद्धान्त है। उनका विश्वास था कि यह नीतिशास्त्र, राजनीति व धर्म का सर्वोच्च मूल्य है। सत्य ब्रह्माण्ड की नैतिक व्यवस्था का आधार रूप में एक सार्वभौमिक सिद्धान्त है। गांधीजी का सत्याग्रह का सिद्धान्त इरा पूर्व मान्यता पर आधारित था कि सत्य को अकेले जीता जा सकता है, जिस रूप में सत्य का अस्तित्व है जबकि असत्य का अस्तित्व ही नहीं है इसलिए उन्होंने घोषणा की कि 'यदि असत्य का अस्तित्व ही नहीं है तो इसकी विजय का तो प्रश्न ही नहीं उठता और सत्य का जिस रूप में अस्तित्व है उसका कभी नाश नहीं किया जा सकता।''

गाँधीजी का दावा था कि ''मानव की सत्य को देखने एवं अनुभूतकरने की क्षमता उसको दूसरी सत्ताओं से मित्र बनाती है और इसलिए सभी माननीय गतिविधियाँ सत्य की अनुभूति की प्रक्रिया की और निर्देशित करने वाली होनी चाहिए। सत्य न केवल सबसे महत्त्वपूर्ण और सर्वग्राही सिद्धान्त है बल्कि तार्किक रूप से यह मानव के सर्वगुण धर्मों व कौशलों से पूर्ववर्ती भी था।

जैसा कि विदित है कि सत्य गांधीवादी दर्शन का प्राण तत्त्व है क्योंकि यदि गांधी चिंतन से सत्य को निकाल दें तो वह शून्य के बराबर हो जायेगा। वास्तव में सत्याग्रह की नींव सत्य या आत्मबल पर ही टिकी है। अंतःकरण की आवाज ही सत्य व न्याय की आवाज है, व्यक्ति चाहे कितना भी क्रूर निष्ठुर क्यों न हो सत्याग्रही को इस बात का पूरा विश्वास होता है कि उसकी सुप्त पड़ी सत् प्रवृत्तियों को जाग्रत किया जा सकता है।

मानव और मानवीय मूल्यों को सर्वोपरि मानने वाले गांधीजी ने सत्य को आत्मिक मूल्य माना न कि बाह्य मूल्य। यही कारण था कि उनके लिए सत्य' रूपी दार्शनिक विचार का नैतिक व व्यावहारिक महत्त्व ज्यादा था बजाय तत्वमीमांसीय ज्ञानमीमांसीय व मूल्य मीमांसा के। गांधीजी के लिए सत्य की अवधारण अपने आप में कोई मायने नहीं रखती थी। उनकी नजरों में महत्वपूर्ण था - सत्य को साकार रूप में जीना, आत्मानुभूतिसत्य से साक्षात्कार का एक दूसरा रूप है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि गांधीजी ने सत्य और ईश्वर के बीच संबंधों को जोडकर देखा। गांधीजी ने कभी अपने प्रभु के दर्शन नहीं किए। किसी ने पूछा "आप हर घड़ी ईश्वर की बात करते हैं, क्या आपने कभी ईश्वर का साक्षात्कार किया है? गाँधीजी का उत्तर था, 'नहीं'। पर मुझे ईश्वर की अनुभूतिहर पल होती है।" अपने आपका प्रभु को व्यक्त करने के लिए उन्होंने 'सत्य' का माध्यम चुना। उन्होंने सत्य' को ईश्वर कहा। उसी का प्रयोग वह जीवन भर करते रहे। अपनी आत्म कथा लिखी तो उसका नाम 'सत्य के प्रयोग रखा।

'मंगल प्रभात' नामक पुस्तक मे सत्य की व्याख्या करते हुएउन्होंने लिखा है - साधारणत: सत्य का अर्थ - सच बोलना मात्र ही समझा जाता है, लेकिन हमने विशाल अर्थ में 'सत्य' का प्रयोग किया है। विचार में, वाणी में और आचार में सत्य का होना ही सत्य है। इस सत्य को सम्पूर्णत: समझने वाले के लिए और कुछ जानना शेष नहीं रहता, क्योंकि सम्पूर्ण ज्ञान उसमें समाया हुआहै। उसमें जो न समाये, वह सत्य नहीं है, ज्ञान नहीं है तब फिर उसमें सच्चा आनन्द तो हो ही कहीं से सकता है। यदि हम इस कसौटी का उपयोग करना सीख जायें तो हमें यह जानने में देर न लगे कि कौनसी प्रवृत्ति उचित है और कौनसी त्याज्य।" इस सत्य को जीवन में उतारना बड़ा कठिन काम है। खांडे की धार पर चलने के समान है।

सत्य गाँधीजी के बारह व्रतों में से एक व्रत है। व्रत को गाँधीजी परिभाषित करते हुएकहते हैं कि - 'जो चीज आत्मा का धर्म है, लेकिन अज्ञान या दूसरे कारणों से आत्मा को जिसका भान नहीं रहता है, उसके पालन के लिए व्रत लेने की जरूरत होती है।" अर्थात् व्रत - स्वगुण धर्मों की अनुपालना के लिए नहीं। चूँकि सत्य मानव का स्वत धर्म है, इसलिए यह एक व्रत है। जिसकी अनुपालनाअनिवार्य है। गांधी ने संक्षेप में कहा कि 'जो सब कुछ अस्तित्वमान है वह सत्य है, सत्य सम्पूर्ण ज्ञान का आधार है, यह मनुष्यों की तात्विक वस्तुनिष्ठता की अनुभूतिहै। उन्होंने सत्य को ईश्वर के रूप में नास्तिकों को उद्देश्यों के लिए भी परिभाषित किया। उन्होंने कहा कि चब आप ईश्वर के रूप में सत्य को खोजना चाहते हो तो प्रेम ही एदभ अपरिहार्य मार्ग दिखाई देता है जो कि अहिंसा है। साधन और साध्य एक ही सिक्के के दो पहलु हैं, मुझे ईश्वर प्रेम है कहने में कोई संकोच नहीं होता है। इस प्रकार गांधीजी सत्य को - व्यापक व मानवीय रूप में परिभाषित करते हैं।

4.2.2 सत्य और ईश्वर के बीच संबंध

गाँधी का विश्वास था कि अलग-अलग व्यक्तियों के लिए ईश्यर का अलग-अलग अर्थ है। हमारी दृष्टि में ईश्वर अवर्णनीय एवं असमावेशनीय है। “मेरे लिए ईश्यर सत्य और प्रेम है, ईश्यर नीति शास्त्र एवं नैतिकता है इश्वर निर्भयता एवं आशा की किरण और जीवन है, ईश्वर

अन्तश्चेतना है और वह भी इन सबसे ऊपर और परे है। वैष्णव धर्म के प्रभाव के कारण गाँधीजी व्यैक्तिक ईश्वर की धारणा में विश्वास करते थे और भक्ति मार्ग द्वारा उसे अनुभूत किया जा सकता है, लेकिन वह स्वार्थी व्यक्ति नहीं थे जो अपने आपके लिए मुक्ति चाहते हैं। भक्ति के माध्यम से बिना दूसरे लोगों की सहायता किए, जिन्हें देखभाल करने व निर्देश की जरूरत है।

गांधीजी ईश्वर को मानवता से अलग नहीं देखते थे। वह कहते थे कि यदि मैं अपने आपको यह समझा सकता तो मुझे ईश्वर को हिमालय की कंदराओं में खोजना चाहिए; तो मैं इसके लिए तुरंत कार्यवाही करता, लेकिन मैं जानता हूँ कि मैं उसे मानवता से अलग करके नहीं खोज सकता। उसकी तत्त्वमीमांसीय, ज्ञानमीमांसीय व मूल्यमीमासीय तथा नैतिक शिक्षाऐं हमें समाज सेवा से नहीं रोक सकती। गाँधीजी के लिए ईश्वर वैयक्तिक एवं निर्व्यैक्तित, निरपेक्ष एवं सापेक्ष दोनों हैं। वह कहते हैं कि ''सम्पूर्ण ब्रह्माण्डीय जीवन को संचालित करने वाले सभी नियम ईश्वर ही है। कानून और कानून निर्माता एक ही है। वैयक्तिक ईश्वर की धारणा को गांधीजी ने स्वीकार किया था क्योंकि आमजन के लिए यही धारणा उपयोगी है कारण कि वह प्रत्येक सत्ता को अपने से तुलना करके देखना आसान/सहज समझता है। गाँधीजी महसूस करते थे कि 'आमजन अपने आपको निरपेक्ष अद्वैतवादी ईश्वरीय धारणा से नहीं जोड़ सकता है।''

गाँधीजी कहते हैं कि 'ईश्वर बादलों में निवास करने वाली शक्ति नहीं है। ईश्वर अपने में वास करने वाली अदृश्यनीय शक्ति है जो अंगुली के नाखूनों व मांस से भी ज्यादा हमारे करीब है। यहाँ कई शक्तियाँ हमारे अंदर छुपी हु ईहैं और जिन्हें हम निरन्तर संघर्ष द्वारा खोजते हैं। यहां तक कि इस सर्वोच्च शक्ति को हम भी खोज सकते है यदि पक्का दृढ-निश्चय के साथ खोज कार्य में जुटे तो। ऐसा एक रास्ता अहिंसा का है। यह अति आवश्यक है क्योंकि हममें से प्रत्येक में ईश्वर है और इसलिए बिना किसी अपवाद के प्रत्येक मानव सत्ता के साथ अपने आप में हमें खोजना होगा। इसे वैज्ञानिक भाषा में ससंजक या आकर्षण कहते हैं। लोकप्रिय भाषा में इसे - प्रेम' कहते हैं। वह हमें एक-दूसरे से जोड़ता/बांधता है और भगवान से भी अहिंसा और प्रेम एक ही चीज का नाम है। जिनके द्वारा ही सत्य रूपी साध्य की साधना करनी है।''

गाँधीयन दर्शन में ईश्वर की अवधारणा बहु तमहत्वपूर्ण है। इस संदर्भ में उन्होंने कहा कि “मैं बिना हवा और पानी के रह सकता हूँ लेकिन बिना ईश्वर के नहीं रह सकता हूँ।'' उनके लिए ईश्वर मात्र तत्त्वमीमांसीय सत्ता के रूप में ही महत्त्व नहीं रखता, बल्कि एक नैतिक प्रतीक रूप में भी महत्त्वपूर्ण है। ईश्वर में उनका जीवित विश्वास था और इसलिए उन्होंने ईश्वर को तार्किक रूप से सिद्ध या असिद्ध करने का प्रयास नहीं किया। उन्होंने कहा है कि 'ईश्वर को बौद्धिक तरीके से अनुभूतनहीं किया जा सकता है। बौद्धिक रूप से कुछ हद तक जाना जा सकता है लेकिन उससे आगे नही। यह भावना, विश्वास व अनुभूतिका मामला है जो कि विश्वास से ही व्युत्पन्न होता है।

गाँधी चिंतन में सत्य और ईश्वर की अवधारणाऐं अन्तर्सबंधित है। जैसा कि सत्य की अवधारणा की व्याख्या से ही स्पष्ट है कि उन्होंने सत्य को परिभाषित ही ईश्वर के रूप में किया। यहां ईश्वर को वे एक माध्यम के रूप में प्रस्तुत करते है सत्य के मार्ग पर चलने हेतु न कि ईश्वर को

स्वयं सत्य के रूप में प्रस्तुत करते है। चूँकि गांधीजी सत्य की कोई निश्चित स्थिति नहीं मानते बल्कि उसे निरंतर जीवन जीने के एक तरीके के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

गांधीजी ने 'सत्य के साथ प्रयोग में लिखा है कि -

परमेश्वर की व्याख्यायें अनगिनत हैं, क्योंकि उसकी विभूतियाँ भी अनगिनत है। ये विभूतियाँ मुझे आश्चर्यचकित करती है। क्षणभर के लिए ये मुझे मुग्ध भी करती है, किन्तु मैं पुजारी तो सत्यरूपी परमेश्वर का ही हूँ। वह एक ही सत्य है, और दूसरा सब मिथ्या है। यह सत्य मुझे मिला नहीं है, लेकिन मैं इसका शोधक हूँ। इस शोध के लिए मैं अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु का त्याग करने को तैयार हूँ और मुझे यह विश्वास है कि इस शोधरूपी यज्ञ में इस शरीर को भी होम ने की मेरी तैयारी है और शक्ति है, लेकिन जब तक मैं इस सत्य का साक्षात्कार नहीं कर लूं तब तक मेरी अन्तरात्मा जिसे सत्य समझती है उस काल्पनिक सत्य को अपना आधार मानकर अपना दीपस्तम्म समझकर, उसके सहारे मैं अपना जीवन व्यतीत करता हूँ।

यद्यपि यह मार्ग तलवार की धार पर चलने जैसा है तो भी मुझे यह सरल से सरल लगता है। इस मार्ग पर चलते हु ए अपनी भयंकर भूले भी मुझे नगण्य सी लगी हैं, क्योंकि वैसी भूले करने पर भी मैं बच गया हूँ और अपनी समझ के अनुसार आगे बढा हूँ। दूर-दूर से विशुद्ध सत्य की ईश्वर की झाँकी भी मैं कर रहा हूँ। मेरा यह विश्वास दिन-प्रतिदिन बढ़ता जाता है कि एक सत्य है, उसके अलावा दूसरी कुछ भी इस जगत में नहीं है।

4.2.3 सत्य और अहिंसा के बीच संबंध

यदि सत्य को ईश्वरीय संदर्भ में परिभाषित करते है तो यह मनुष्य के लिए साध्य है और अहिंसा साधन है। गाँधीजी ने कहा है" बिना अहिंसा के सत्य की प्राप्ति व खोज असंभव है क्योंकि सत्य और अहिंसा इतने अन्तर्गुथित है कि व्यवहार में भी इनको आपस में अलग करना असंभव है। ये एक ही सिक्के के दो पहलुओं के समान है जिसमें सत्य साध्य और अहिंसा साधन है। अत: अहिंसा के बिना सत्याग्रह भी असंभव है।

शाब्दिक रूप से अहिंसा का अर्थ हत्या नहीं करने या चोट नहीं पहुंचाने से है। गाँधी के अनुसार सचेतन प्राणी के प्रति चोट पहुंचाने की कोई भी प्रवृत्ति या उसका समर्थन हिंसा का स्वीकार व अहिंसा का तिरस्कार है। इस प्रकार गांधीजी ने अहिंसा को मन, वचन व कर्म से हिंसा के निषेध के रूप में लिया, लेकिन यह सकारात्मक ज्यादा है, नकारात्मक कम है।

गाँधीजी द्वारा अहिंसा का सामाजिक क्षेत्र में सफलतापूर्वक अनुप्रयोग ने सत्याग्रह को जन्म दिया जो कि स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान उनके द्वारा छोड़ा गया महत्वपूर्ण राजनीतिक मंत्र था। यह भी अहिंसा पर आधारित था। गांधीजी का अहिंसा से पूर्ण लगाव था। वही सत्य उनके लिए सर्वोच्च कानून था, अहिंसा सर्वोच्च कर्तव्य था। गांधीजी का विश्वास था कि - आहिंसा सत्य प्राप्ति का केवल एकमात्र साधन था और सत्य के समान ही यह भी भावना एवं अनुभव का विषय है। यह देश-काल से परे है और विश्व की सबसे सक्रिय तथा महानतम शक्ति है तथा बिजली से ज्यादा

सुचालक, ईथर से ज्यादा शक्तिशाली, सभी शक्तियों को एकसाथ रखने से बनी शक्ति से भी ज्यादा शक्तिशाली शक्ति है।

सत्य के समान अहिंसा भी सर्वशक्तिमान, अनंत एक ईश्वरीय पर्याय है। अहिंसा प्रत्येक दर्शनीय स्थितियों में अनुप्रयोज्य हैं और इसका स्थायी प्रयोग ही किसी दी गई स्थिति में सफलता की गारंटी देता है। उन्होंने अहिंसा को अन्य सिद्धान्तों से ऊपर माना क्योंकि उनका विश्वास था कि बिना अहिंसा के उद्देश्य का चरित्र बदल सकता है। उन्होंने कहा कि "मेरे लिए अहिंसा स्वराज से पहले आती है इसलिए अहिंसा प्रत्येक वस्तुओं से पहले रखना चाहिए। जिस समय यह दावा किया जाता है फिर यह सिद्धान्त अप्रतिरोध्य बन जाता है।

भारतीय राजनीति में गांधी का नाम अहिंसा का पर्याय हो गया। उन्होंने अहिंसा का समय-समय पर प्रदर्शन किया। पुन: वह विरोध को वापिस ले लेते जब उन्हें लगता कि हिंसा का प्रतिरोध हिंसा बन चुकी है। गांधी ने अहिंसा का संकीर्ण अर्थों में नहीं लिया अर्थात वे अहिंसा को किसी की हत्या न करने तक या किसी को चोट न पहुंचानेतक ही सीमित नहीं किया। उनके लिए हिंसा से तात्पर्य "अनुचित, अशुभ, घृणा, झूंठ बोलना, किसी के बीमार होने की इच्छा करना और आवश्यकता से ज्यादा विश्व के संसाधनों पर कब्जा जमाना आदि। इस प्रकार गांधीजी के लिए अहिंसा से तात्पर्य है अनंत प्रेम, असीमित परोपकारिता, स्वैच्छिक स्व-पीड़ा, अलगाव, निर्भयता, शक्ति एवं अज्ञानता।

महात्मा गांधी ने इसकी प्रकृति एवं व्यवहारों के आधार पर अहिंसा के तीन प्रकार किये है - अहिंसा का सर्वोच्च प्रकार है - प्रबुद्ध अहिंसा या बहादुरों की अहिंसा। यह किसी की कठोर धारणाओं का अनुसरण करती है और जीवन की आदत या कानून बन जाती है क्योंकि कोई भी असहाय है हिंसा में स्वयं को संलग्न करने में स्व-शुद्धीकरण के बाद एक विशेष स्तर पर पहुंचनेके बाद। यह पूर्ण अवस्था प्रकृतित: काल्पनिक है और मानव के द्वारा इसका अनुसरणएक

आदर्श के रूप में ही लाभदायक है। गांधीजी भी अपने आपको इस श्रेणी में शमिल नहीं करते थे। इस रूप में वह जागरूक थे' अपनी कमियों के प्रति और इसे स्वीकार करने में कोई संकोच भी नहीं करते थे।

अहिंसा का द्वितीय प्रकार है जो कार्य साधकता के मापदण्ड एवं जीवन के कुछ क्षेत्रों में सही नीति के रूप में स्वीकार की जाती है। गांधीजी इसे असहायों की अहिंसा कहते हैं। तथापि उतनी प्रभावी नहीं है जितनी की प्रथम प्रकार की। हालांकि इसका पोषण आसान है व्यक्ति के साथ-साथ समूहमें थी।

अहिंसा का तृतीय प्रकार है - "कायरों की अहिंसा या दुर्बलों की अहिंसा" यह कायरों की अहिंसा है जो चुनौतियों का सामना नहीं कर सकते और डर के मारे अहिंसा का सहारा लेते हैं। गाँधीजी इसे अहिंसा के रूप में स्वीकार नहीं करते। अहिंसा और कायरता आगे और पानी के समान ही साथ साथ नहीं चल सकते। उन्होंने इस तरह की झूँठी अहिंसा के प्रकार को स्वीकारने की बजाय हिंसा की वकालत की। वह कहते हैं - कायर बनने की बजाय हिंसा करना ज्यादा अच्छा है क्योंकि

हिंसा में सक्रियता रहती है जबकि कायरता में निष्कियता जो कि नपुसंकता को अहिंसा के लबादे से ढकती है।

गाँधीजी ने कायरो की अहिंसा को उपदेश की बजाय हिंसा को महत्व दिया क्योंकि कायर का भगवान में विश्वास नहीं होता है और यहाँ तक कि स्वयं अपने आप में भी नहीं, जबकि एक हिंसक आदमी साहसी होता है अपने जीवन के रूपान्तरण के बाद एक जीवन शैली के रूप में अहिंसा को स्वीकार करके वह आत्म-पीड़ा को सहने की चुनौती का सामना कर सकता है। गांधीजी का विश्वास था कि अहिंसा सर्वोच्च सत्ता है जो उच्च स्तरीय साहस को चाहती है। यही साहस बिना किसी को मारने को तत्पर रहता है। गांधीजी सहमत हैं कि अहिंसा सर्वोत्तम शक्ति है इसका प्रयोग मानवता की सेवा करने में तथा मानव प्राणी द्वारा अशुभ से लड़ाई लड़ने में करना चाहिए।

4.2.4 सत्य और सत्याग्रह के बीच संबंध

जैसा कि विदित है - सत्य गाँधी चिंतन का मूलाधार है। यदि सत्य को सत्याग्रह से हटा दें तो वह शून्य के बराबर हो जाएगा। वास्तव में सत्याग्रह की नींव सत्य या आत्मबल पर ही टिकी है। अन्तःकरण की आवाज ही सत्य व न्याय की आवाज है, व्यक्ति कितना भी क्रूर या निष्ठुर क्यों न हो सत्याग्रही को इस बात का पूरा विश्वास होता है कि उसके सुप्त पड़े सत् प्रवृत्तियों को जाग्रत किया जा सकता है।

सत्याग्रह में सत्याग्रही अन्यायी व्यक्ति के हृदय को परिवर्तन करने का प्रयास बिना विरोधी के प्रति घृणा व द्वेष भाव के स्व-पीड़ा सहन करते हुए आत्म-बल के आधार पर करता है। यह अन्यायी के विरूद्ध आत्मबल द्वारा लड़ाई सत्य में या ईश्वर में विश्वास के आधार पर ही लड़ी जाती है। यदि सत्याग्रही का सत्य या ईश्वर में विश्वास नहीं हो तो वह अन्यायी के विरूद्ध न्याय की लड़ाई स्व-पीड़ा सहनता के आधार पर नहीं लड़ सकती, क्योंकि सत्याग्रही को अन्ततः शक्ति या ऊर्जा का आधार सत्य या ईश्वर ही होता है जिसके कारण ही वह सब कुछ सहन करता है। जैसा कि भारत में स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान सत्याग्रहियों ने गांधीजी के नेतृत्व में हँसते-हँसते लाठियाँ व गोलियां सही। हाँलांकि यह सब व्यावहारिक रूप से आसान कार्य नहीं है, लेकिन सब कुछ सत्य की शक्ति की वजह से संभव हो सका। यही शक्ति प्रेम/अहिंसा का रूपातंरण है।

गांधीजी की "सत्याग्रह" की अवधारणा अहिंसा के सिद्धांत का ही प्रयोग है। सामाजिक व राजनीतिक कार्यक्षेत्र में लक्ष्यों की प्राप्ति के साधन के बतौर। गांधीजी कहते है कि "सत्याग्रह" कहकर पुकारना शुरू किया था, यह वही शक्ति है जो सत्य व प्रेम से निकली है। "सत्याग्रह" का नाम गांधीजी ने 1906 में दक्षिण अफीका में भारतीयों के आव्रजन के मानवाधिकारों की सुरक्षा के लिए लड़ते हुए खोजा था। हालांकि 'सत्याग्रह' का पूर्ववर्ती नाम मगनलाल गांधी ने चत्याग्रह खोजा था। जो - "निष्किय प्रतिरोध" के विरूद्ध खोजा गया था। कारण कि गांधीजी का ऐसा मानना था कि - निष्कय प्रतिरोध - कमजोर, कायर, निःशस्त्र व असहाय लोगों का हथियार है। इसमें विरोधी के प्रति घृणा भाव उत्पन्न होता है जिससे हिंसा उत्पत्र होने का खतरा बना रहता है। जबकि 'सत्याग्रह' - एक सकारात्मक, व्यापक, प्रावैगिक व अहिंसक साधन है जिसमें - स्वैच्छिक आत्मपीड़ा सहने व

विरोधी के प्रति प्रेमभाव की भावना छुपी रहती है। सत्याग्रह, लड़ाई व आत्म-पीड़ा के माध्यम से न्यायोचित कार्यो के लिए लड़ने की ओर संकेत करता है। जेम्स लूथर एडम्स ने सत्याग्रह के बारे में कहा था कि यह किसी कानून विशेष या कानूनों की या कानून का प्रभाव रखने वाली किसी सरकारी नीति की ही अवज्ञा है जो कि एक सभ्य समाज में न्याय की भावना को व्यक्त करता है या समानो के बीच सहयोग की और जो कि सामान्तया स्वीकार की गई उच्चतर सत्ता के नाम के तहत उत्तरदायित्व लेता है, कानून के प्रश्न की बजाय अंतिम आश्रय के रूप में कानून में परिवर्तन के उद्देश्य के लिए तथा कानून द्वारा आरोपित दण्ड की स्वीकारोक्ति के साथ।''

सत्याग्रह की व्याख्या के दौरान गाँधी प्रतिरोध की अन्य तकनीकों जैसे - असहयोग, सविनय अवज्ञा एवं निष्क्रिय प्रतिरोध से अलग करते हुए दावा किया कि - सत्याग्रह एक व्यापक अवधारणा है। उनका कहना है कि सत्याग्रह बरगद के पेड़ के समान है असंख्य शाखाओं वाला पेड़ है। जिसमें सविनय अवज्ञा एक शाखा है। सत्याग्रह का दुराग्रह विलोम है । जान वी. बोंदुरा इनके बीच विभेद करते हुए कहते है कि - सत्याग्रह के विपरीत दुराग्रह में कार्यो के विरोध की नीति का अड़ियल या जिद्दी प्रतिरोध किया जाता है। दुराग्रही सत्य, न्याय एवं उचितता को अपना एकाधिकार स्वीकारता है और विरोधी इसे अशुभ या मूर्त रूप में देखता है। दूसरी ओर सत्याग्रह अन्यायी को बदलना और शांति स्थापित करने का सकारात्मक उद्देश्य रखता है। यह समस्याओं/टकराओ को अहिंसक तरीके से समझा-बुझाकर, मानव-प्रकृति में बदलने की छुपी संभावना व क्षमता के द्वारा समाधान करना चाहता है। गांधीजी ने लिखा है कि - ''सत्याग्रह में अन्यायी को बदलना महत्वपूर्ण विचार है, उसमें न्याय की भावना को जाग्रत करना है।''

4.3 सारांश

सत्य की अवधारणा गाँधी चिन्तन की मौलिक व मूलभूत अवधारणा है। गाँधीजी ने सत्य को तत्वमीमासीय स्वरूप से नैतिक व व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करते हुए ईश्वरीय रूप में परिभाषित किया और अन्त में कहा कि "सत्य ही ईश्वर है।'' सत्य पर ही - अहिंसा, सत्याग्रह आदि अवधारणाऐं आश्रित है। सत्य के कारण ही सत्याग्रही आत्मबल से पीड़ा सहता है और अन्यायी व्यक्ति के हृदय को परिवर्तित करने का दृढ़ निश्चय करता है। बिना सत्य की धारणा के गांधी चिंतन खोखला है। हालांकि गांधीजी सत्य की ओर निरंतर खोजमयी प्रवृत्ति में विश्वास करते है न कि निरपेक्ष अवधारणा में।

4.4 शब्दावली

1. अहिंसा

   यह एक सकारात्मक तकनीक है जिसके द्वारा अहिंसक तरीके से संघर्ष निवारण किया जाता है। यह शांति का पयार्य है। लेकिन उससे व्यापक भी है।

2. मानवत्वारोपी

   यह मत कि मनुष्य ही सृष्टि का केन्द्र है अथवा सब बातें मनुष्य सापेक्ष हैं।

3. तत्वमीमांसा

दर्शन की वह शाखा जो सत्ता के प्रतीयमान रूप के नीचे जाकर उसके वास्तविक स्वरूप का विवेचन करती है।

4. ज्ञानमीमांसा

   दर्शन की वह शाखा जो ज्ञान की उत्पत्ति, संरचना, प्रणालियों तथा सत्यता ओर उसकी कसौटियों का विवेचन करती है।

5. मूल्यमीमांसा

   दर्शन की वह शाखा जो मूल्यों के स्वरूप और मानदंड इत्यादि का अध्ययन करती है।

6. सत्याग्रह

   शत्रु के हृदय को परिवर्तन के इरादे से अन्याय के प्रतिरोध की तकनीक। जिसमें - असहयोग, सविनय अवज्ञा आदि शामिल है।

7. प्रतिरोध

   रचनात्मक विकास में अन्याय/शोषण रूपी बाधाओं के विरोध का तरीका।

8. नीतिशास्त्र -

   दर्शन की वह शाखा जो कर्म में उचित-अनुचित, शुभ-अशुभ इत्यादि भेदों का विवेचन करती है।

9. आत्मकथा

   एक व्यक्ति का स्वयं द्वारा रचित जीवन चरित्र।

4.5 अभ्यास प्रश्न

1. गांधीजी की सत्य की अवधारणा पर एक लेख लिखो।
2. गांधीजी की "सत्य की अवधारणा उनके सम्पूर्ण चितन का आधार है।'' स्पष्ट कीजिए।
3. गांधीजी की सत्य की अवधारणा के साथ अहिंसा और सत्याग्रह की अवधारणा के संबंधो की विवेचना कीजिए।
4. "सत्य और अहिंसा बतौर साध्य व साधन के एक ही सिक्के के दो पहलू है।" स्पष्ट कीजिए।
5. "बिना सत्य के अहिंसा असंभव है।'' स्पष्ट कीजिए।
6. गांधीजी आरम्भ में ''ईश्वर ही सत्य है'' की अवधारणा में विश्वास करते थे, लेकिन बाद में 'सत्य ही ईश्वर है'' की अवधारणा में विश्वास क्यों करने लग गये । कारण सहित व्याख्या कीजिए।

4.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पारिख, भीखू 'गांधी, शोर्ट इन्ट्रोडाक्सन', आक्सफोर्ड, लंदन- 2006
2. अय्यर, राघवन, एन. 'मॉरल एण्ड पॉलिटिकल थॉट आफ महात्मा गांधी' आक्सफोर्ड,न्यूयार्क- 1973

3. दाधीच, नरेश, 'गांधी एण्ड एक्जिसटेंशियलिज्म', रावत, जयपुर 1996
4. ट्रर्चक, रोनाल्ड, 'गांधी: स्ट्रगल फोर अटोनॉमी, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1999
5. गांधी, एम. के., 'मंगल प्रभात', नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1958
6. गांधी, एम. के. सत्य के साथ मेरे प्रयोग', नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1957
7. गांधी, एम. के. 'टूथ इज गॉड ', नवजीवन पब्लिशिंग हाउस अहमदाबाद, 1955
8. चटर्जी , मार्गेट, 'गाँधीज फिलॉसोफिकल एण्ड रिलिजिएस ऑट', लंदन – 1983
9. बोन्दुरा, जान वी., 'कॉक्वेस्ट ऑफ वायलेंस ', बर्कले- 1976
10. शार्प, जीन, गाणी विल्डस द वैपन ऑफ मॉरल पॉवर', नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1960

इकाई - 5

अहिंसा

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 अहिंसा और महात्मा गाँधी
5.3 अहिंसा और सत्य
5.4 अहिंसा के विविध स्वरूप
  5.4.1 अहिंसा और नैतिकता
  5.4.2 अहिंसा और दुर्बलता
  5.4.3 अहिंसा और कायरता
  5.4.4 अहिंसा और दया
  5.4.5 अहिंसा और धर्म
  5.4.6 अहिंसा और प्रेम
  5.4.7 अहिंसा और हिंसा
5.5 अहिंसा और सार्वकालिकता
5.6 अहिंसा और विश्व
5.7 सारांश
5.8 शब्दावली
5.9 अभ्यास प्रश्न
5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको अहिंसा के अर्थ एवं उसके स्वरूप से परिचित कराते हु एगाँधी जी के सिद्धान्त, आदर्श एवम् उपदेशों की आधुनिक सन्दर्भो में आवश्यकता एवम् उपयोगिता से परिचित कराना है इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- समझ पायेंगे कि अहिंसा का अर्थ क्या है
- अहिंसा और गांधी जी की अहिंसा में क्या सम्बन्ध है
- भौतिकतावादी परमाणु युग में गाँधी जी का अहिंसा सिद्धान्त कितना कारगर एवम् उपयोगी है,
- सत्य, नैतिकता, दुर्बलता, कायरता, दया, धर्म, प्रेम, हिंसा आदि के साथ अहिंसा का क्या सम्बन्ध है,
- अहिंसा का भारत के लिए और भारत का इस क्षेत्र में विश्व के लिए क्या महत्त्व है,

- अहिंसा के माध्यम से गाँधी जी एवम् उनके विचारों और उपदेशों को सही सन्दर्भो में समझने और उनका प्रचार
- प्रसार करने का अवसर सुलभ हो सकेगा
- अन्तत: विश्व शान्ति के लिए गाँधी जी के उपदेश और अहिंसा के महत्व को जान सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

इस इकाई में गाँधी जी के अहिंसा सम्बन्धी विचारों को संकलित कर सार रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। संकलित विचारों को उनके अपने ही शब्दों में संजोया गया है। आधुनिक भारतीय इतिहास में गाँधी जी के अहिंसा सम्बन्धी विचार अपूर्व और अप्रतिम है। उन्होंने भारतीय जीवन के प्रत्येक अंग को स्पर्श किया है। धर्म, शिक्षा, राजनीति, अर्थनीति, सार्वजनिक सदाचरण-प्रत्येक विषय में उनके अपने मौलिक विचार हैं। उन्होंने हमें अपने पैरों पर खड़ा किया; आजादी की मंजिल तक पहुंचाया। एक राष्ट्र की जिन्दगी में यह बहु तबड़ी बात है परन्तु गाँधी जी ने इससे भी बड़ी बात जो हमें सिखाई वह थी इंसान की इंसानियत अथवा मानव की मानवता। उन्होंने हमें बताया कि मानवता के मौलिक मूल्यों और गुणों से रहित होकर जीना, जीवन नहीं है, वही मृत्यु है। मानव-संस्कृति हिंसा, द्वेश, असत्य, अनीति और विलासिता पर नहीं टिक सकती, वह केवल प्रेम पर एक दूसरे के मंगल पर, समाज में सबके उदय पर ही टिक सकती है। हिंसा नहीं, अहिंसा ही मनुष्य की मूल प्रकृति है और असत्य नहीं सत्य ही उसका धर्म है, गन्तव्य है।

5.2 अहिंसा और महात्मा गाँधी

''जहाँ अहिंसा नहीं वहाँ हिंसा आयेगी।''

आधुनिक भारतीय जीवन में गाँधी जी ने जिस अहिंसा एव सत्य का व्यापक प्रयोग किया, वे कोई नवीन धर्म-सिद्धान्त नहीं हैं। बल्कि, प्राचीन काल से हमारे देश के धर्म, नीति एवं साहित्य में इनका प्रयोग होता आया है। 'अहिंसा परमोधर्म:' एवं 'सत्यात्रास्ति परोधर्म:' इत्यादि नीति-वाक्यों से इसकी पुष्टि होती है। भारतीय धर्मों में ही नहीं, विश्व के सभी प्रमुख धर्मों में इनका महत्व स्वीकार किया गया है। गाँधी जी ने भी अनेक स्थानों पर इसे स्वीकार किया है कि उन्होंने कोई नई बात नहीं कही है; जो अनन्तकाल से मानवधर्म में निहित है, उसका ही अपने ढंग से निरूपण किया है। अन्तर केवल मात्रा एवं प्रबलता का है।

उनकी अहिंसा वही नहीं है जो परम्परा से हमारे सामने आती रही है। उन्होंने अपने जीवन की प्रयोगशाला में उसका निरन्तर परीक्षण किया है; उसे नवीन मनोभूमियों पर प्रतिष्ठित किया, उसमें वृद्धि और काट-छांट की, तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसे व्यवहारोपयोगी बनाने का प्रयत्न किया है। उन्होंने ऐसे प्रयोग भी किए जिनके कारण वह मानव की मौन, पारमार्थिक शक्ति-मात्र न रहकर मानव-समाज की मुख्य प्रेरणा बन गई। उसकी वैयक्तिकता में सामाजिकता का प्रवेश हुआ और जहाँ वह निक्रिय और सैद्धान्तिक थी वहां अत्यन्त सक्रिय, प्रबल और व्यावहारिक शक्ति के स्फुरण के रूप में सामने आई। उसमें विशाल समूहों का सामना और सुधार करने की शक्ति आई।

गाँधी जी ने अहिंसा को एक ऐसे विराट कैनवेस पर चित्रित किया कि मानव जीवन का कोई भी भाग उसके लिए अछूता नहीं रह गया।

गाँधी जी केवल एक विचारशील महापुरुष ही नहीं थे। वे आचार को प्रधान मानते थे। जिस विचार को आचार में नहीं ला सकते उसे वे बहुत गौण समझते थे। साथ ही साथ वे बड़े भक्त थे अर्थात् परमात्मा के सतत् चिन्तन में वे अपना जीवन बिताते थे। इस दृष्टि से वे न केवल कर्मयोगी थे बल्कि भक्तियोगी और ज्ञानयोगी भी थे। उन्होंने जो कुछ भी लिखा है वह उनके आन्तरिक एवं बाहरी जीवन पर प्रकाश डालने वाला भाष्य है। हम कह सकते है कि गाँधी जी, उनकी जीवनी, उनके विचार और उन्होंने भारत और दक्षिण अफ्रीका में जो प्रयोग किए और उनमें जो कामयाबी मिली, वह सब एक 'महाभारत है। अक्सर ऐसा होता है कि कार्य करने वाले या ग्रन्थ लिखने वाले और उसका अर्थ लगाने वाले भिन्न-भिन्न होते हैं। परन्तु गाँधी जी की विशेषता यह है कि उन्होंने स्वयं विचार किया, उनको ही दर्शन हुआ, उस दर्शन को उन्होंने प्रत्यक्ष कार्य रूप दिया और उस पर भाष्य भी लिखा। वे मानव मन, मानव जीवन, और मानव समाज इन विषयों की ओर वैज्ञानिक दृष्टि से देखने वाले और प्रयोग करने वाले महापुरुष थे। यह ध्यान में रखकर हमें उनके जीवन और विचारों का अध्ययन करने की आवश्यकता है।

5.3 अहिंसा और सत्य

गाँधी जी की अहिंसा के साथ उनके सत्य का अटूट सम्बन्ध है। दोनों की स्थिति एक-दूसरे के बिना सम्भव नहीं। न सत्य अहिंसा के बिना टिक सकता है, न अहिंसा सत्य के बिना अस्तित्व ग्रहण कर सकती है। कोई असत्य से सत्य को नहीं पा सकता। सत्य को पाने के लिए सदा सत्य का आचरण करना ही होगा। क्या अहिंसा और सत्य की जोड़ी है? बिल्कुल नहीं। सत्य में अहिंसा छिपी हुईहै और अहिंसा में सत्य।.. सत्य और अहिंसा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों का मूल्य एक है। केवल पढ़ने में अन्तर है। एक ओर अहिंसा है, दूसरी ओर सत्य। पूर्ण पवित्रता के बिना अहिंसा और सत्य निभ नहीं सकते। शरीर या मन की अपवित्रता छिपाने से असत्य एवं हिंसा ही पैदा होगी। अहिंसा और सत्य केवल व्यक्तिगत आचार के नियम नहीं है। वे समुदाय जाति और राष्ट्र की नीति का रूप ले सकते हैं।

अहिंसा और सत्य आपस में इतने गुँथे हुए हैं कि उन्हें एक-दूसरे से सुलझा-कर अलग करना लगभग असम्भव है। फिर भी, अहिंसा साधन है, सत्य साध्य है। साधन वही है जो सदा हमारी पहुंचके भीतर हो, और इसलिए अहिंसा हमारा सर्वोच्च धर्म है। अगर हम साधन को सम्भाल लें तो हम साध्य तक देर या सवेर पहुंचकरही रहेंगे। एक बार यह बात अच्छी तरह समझ लें तो हमारी अन्तिम विजय असन्दिग्ध है। हमें रास्ते में चाहे जो कठिनाईयां आएँ, बाह्य दृष्टि से हमारी चाहे जितनी बार हार होती - दम सत्य की खोज न छोड़े और विश्वास के साथ एक ही मन्त्र जपें- सत्य है।

हम सत्य का दर्शन केवल अहिंसा का पालन करते हुएही कर सकते हैं। जबकि हिंसा का यह आवश्यक परिणाम नहीं है। यदि हम एकाग्रचित्त होकर अहिंसा के पीछे चलें, तो वह हमें

निश्चित रूप से सत्य के पास ले जायेगी। इसलिए मैं अहिंसा की हिमायत करता हूँ। सत्य मेरे स्वभाव में था लेकिन अहिंसा मुझे बड़े कष्ट और परिश्रम से मिली है। चूंकि अहिंसा साधन है; इसलिए हमें जनता को उसकी शिक्षा देनी है। सत्य की शिक्षा इसमें अपने आप मिल जाती है क्योंकि वह अहिंसा का नैसर्गिक परिणाम हैं।

"आप देखेंगे कि मैं यह बात कहने से कभी नहीं थकता कि चाहे जो हो जाए लेकिन सत्य और अहिंसा पर दृढ़ रहना चाहिए। मेरी नम्र सम्मति में अगर ये दोनों पर्तें पूरी हो जाए तो आप दुनिया की किसी भी शक्ति का मुकाबला कर सकते हैं और अन्त में न तो आपका कुछ बिगड़ेगा और न आपके उस नाम के विरोधी का बाल भी बाँका होगा उस समय हो सकता है कि वह आपके अहिंसक वारों का मतलब न समझ सके, आपके बारे में गलतफहमी फैलाये, लेकिन जब तक आप सत्य और अहिंसा पर डटे खड़े हैं आपको उसकी राय या भावों की चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। तब आपके लिए यह ठीक ही होगा और आप अन्य तरीकों की अपेक्षा कहीं अधिक तेजी से आगे बढ़ सकेंगे। यह रास्ता देखने में लम्बा मालूम पड़ता सकता है। लेकिन आप अगर मेरे 30 साल के निरन्तर अनुभव पर विश्वास करें तो मैं कहता हूँ कि यही रास्ता सफलता के लिए सबसे छोटा है। मैंने इससे छोटा रास्ता नहीं सुना और यह कही भी नहीं है।"

"मैं जानता हूँ कि अहिंसा के पूर्ण व्यवहार के लिए एक पक्ष का उसमें विश्वास रखना आवश्यक है। वस्तुत: यदि दोनों पक्ष उसमें विश्वास रखें और उसका व्यवहार करें तो उसमें अहिंसा की न कोई प्रशंसा है, न उसके प्रदर्शन की आवश्यकता ही है। एक-दूसरे के साथ सब लोग शान्ति से रहें, इस दिशा में प्रयत्न करना सर्वाधिक प्राकृतिक है। क्योंकि अहिंसा के व्यवहार में जो सौन्दर्य निहित है उसका लाभ किसी पक्ष को नहीं मिलता। दुर्भाग्यवश आज अहिंसा से अनभिज्ञ मानव अपनी इस अयोग्यता पर खेद प्रकट करते हैं यद्यपि उनके हृदय में वह है।"

इसीलिए अहिंसा के सम्बन्ध में गाँधी जी ने अपने अनुभव में लिखा है -

"अहिंसा सत्य का प्राण है।"

"मैं तो ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहता हूँ मैं जानता हूँ कि सत्य ही ईश्वर है और ईश्वर को पहिचानने का मेरे निकट तो एक ही अचूक साधन अहिंसा है--प्रेम है।"

"अहिंसा वह ज्योति है, जिसके द्वारा मुझें सत्य का दर्शन होता है।"

"अहिंसा ही सत्येश्वर का दर्शन करने का सीधा और छोटा-सा मार्ग है।"

"अहिंसा साध्य नहीं, साध्य सत्य है। लेकिन हम सत्य का दर्शन केवल अहिंसा का पालन करते हु एकर सकते हैं।"

5.4 अहिंसा के विविध स्वरूप

गाँधी जी ने लिखा है- "अहिंसा शब्द का मेरी दृष्टि में यह अर्थ निकलता है कि केवल घृणा के भाव से दूर रहना ही अहिंसा नहीं है बल्कि अहिंसा शब्द के सम्पूर्ण अर्थ को चरितार्थ करने के लिए हमें प्रेम का प्रसार करना चाहिए और अपने प्रति अनीति एवं पापाचरण करने वाले के साथ भी नेकी तथा दया का व्यवहार करना चाहिए। किन्तु, इसका यह अर्थ नहीं है कि बुराई करने वाले के बुरे

आचरण में उसकी सहायता करें अथवा बुराई को चुपचाप सहन करते जाएँ। इसके प्रतिकूल अहिंसाजनित प्रेम तो यही कहता है कि आपको पापी के साथ सहयोग नहीं करना चाहिए, उसके साथ सम्बन्ध तोड़ देना चाहिए चाहे इसके कारण उसको हानि पहुंचे अथवा किसी प्रकार का शारीरिक कष्ट हो।"

"अहिंसा चेतना-युक्त प्रचण्ड शक्ति है। उसके अन्त या विस्तार को कोई न तो माप सका है, न माप सकेगा। अहिंसा है विश्व-प्रेम, जीवमात्र के विषय में करुणा और उसमें से प्रकट होने वाली अपने देह को ही होम कर देने की शक्ति। यह प्रेम प्रकट होने में बहुत-सी भूलें हों तो भी उससे मानव धर्म के विस्तार की साधना छोड़ी नहीं जा सकती। मार्ग की खोज में होने वाली भूलें भी हमें उस मार्ग की ओर खोज में एक पग आगे ले जाती हैं। इसलिए मैं अहिंसा के मंत्र पर इतना मुग्ध हो गया हूँ कि यह मेरे लिए पारसमणि है। मैं जानता हूँ कि सम्पूर्ण विश्व को अहिंसा मन्त्र ही षान्ति दिला सकता है।"

गाँधी जी की अहिंसा की विशेषता उसकी व्यापकता है। प्राचीन काल में जो अहिंसा मुख्यत: जीव-दया तक सीमित थी, उसे उन्होंने असीम बना दिया। उनकी दृष्टि में यदि कोई समाज से अपनी अनिवार्य आवश्यकता से अधिक लेता है तो वह भी हिंसा है।

5.4.1 अहिंसा और नैतिकता

एक सज्जन ने गाँधी जी से पूछा कि चोर-उच्चकों के रंगे हाथ पकड़े. जाने पर सामान्य राह-चलते लोग उन पर निर्दयतापूर्वक प्रहार करने लगते हैं। क्या यह अहिंसा के अनुरूप है? विशेषकर उस स्थिति में जब कि मारने वालों में से अधिकांश काला-बाजारी, धँस या अन्य अनैतिक कार्य करने वाले प्रच्छत्र चोर होते हैं। गाँधी जी ने इस प्रश्न का उत्तर दिया-

ऐसी शिकायत का अनुभव असाधारण नहीं। बड़े शहरों में ऐसा अनुभव किसे न हुआ होगा? हम कायर हैं इसलिए गिरहकट जैसी चींटी पर चतुरंगिणी सेना लेकर चढ़ाई कर देते हैं। अहिंसा का तो यहां प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता, वीर हिंसक व्यक्ति भी इस तरह किसी पर चोट नहीं करेगा। बन्दी चोर अथवा हत्यारे को भी दण्ड देने का अधिकार जनता को नहीं है। जनता ऐसे व्यक्ति को पकड़कर पुलिस को सौंप सकती है।

सच है कि चोर को मारने वाले अनेक व्यक्ति स्वयं सफेद चोर हैं। इसीलिए प्राचीनकाल में जब लोगों ने एक वेश्या को पत्थर मारने का निश्चय किया तो ईसा मसीह ने मधुर वाणी में कहा था कि आप में जो निर्दोष हो वह पहला पत्थर फेंके। कथाकार का कथन है कि पत्थर फेंकने का साहस किसी को नहीं हुआ।

एक भूखा नंगे को क्या लूटेगा या गूँगा बहरे पर क्या हंसेगा? गिरहकट को सम्भवत: भोजन का अभाव रहा हो जब कि सफेद चोर तो अपनी वासनाओं, महत्त्वकांक्षाओं की तृप्ति-हेतु चोरी करता है। अपराधी अपराधी का न्याय नहीं कर सकता, इस विचार के विस्तार से ही अहिंसा का जन्म हुआहै। किन्तु अहिंसा के सरोवर तक न पहुँचेंऔर सामान्य न्याय की तलैया तक पहुँचजायें तो, इतना भी पर्याप्त है।

5.4.2 अहिंसा और दुर्बलता

गाँधी जी के अनुसार अहिंसा मठ-मन्दिर की ही चीज नहीं है, जो ऋषियों अथवा गुफाओं में रहने वालों के लिए हो। अहिंसा तो ऐसी है कि जिस पर लाखों आचरण कर सकते हैं-इसलिए नहीं कि उसके फलितार्थों का उन्हें पूर्ण ज्ञान है, बल्कि इसलिए कि वह हमारी मनुष्य जाति का नियम है। यह आदमी और पशु के बीच का अन्तर व्यक्त करती है। लेकिन मानव ने अपने अन्दर की पशुता को छोड़ा नहीं है। उसे पशुता को छोड़ने की कोशिश करनी होगी। वह कोशिश अहिंसा को व्यवहार में लाने के लिए हो, उसमें महज विश्वास करने तक सीमित नहीं हो। किसी सिद्धान्त के विश्वास के लिए मैं कोशिश नहीं करता। मैं उसमें या तो विश्वास करूं या न करूं। अगर उसमें विश्वास करता हूँ तो उस पर आचरण करने के लिए मुझे साहस के साथ प्रयत्न करना चाहिए। समझने वाली बात तो यह है कि अहिंसा तो सबल का गुण है। दुर्बलता और अहिंसा साथ-साथ नहीं चल सकते, जैसे पानी और आग।

जैसा कि एक भ्रम यह भी है कि अहिंसा दुर्बलों का अस्त्र है। वस्तुत: सच्चाई सर्वथा इसके विपरीत है। जहाँ भय है, वहाँ अहिंसा हो ही नहीं सकती। अहिंसा अभय की चरमावस्था है इसलिए वह दुर्बल के वश की चीज नहीं। गाँधी जी के शब्दों में तो "वह वीरता की परिसीमा है।" और "कायरता स्वयं में एक सूक्ष्म है इसीलिए भीषण प्रकार की हिंसा है।" इसीलिए गाँधी जी ने कायरता से, भय से दब जाने की जगह तलवार उठाने की छूट दी है क्योंकि जो मारकर मरता है उसमें भी मरण का भय तो, एक सीमा तक, नष्ट हो ही चुका रहता है। कायरता को तो वह मनुष्यत्व का निषेध ही मानते हैं। इसलिए उसे सहन करने को तो वह किसी प्रकार तैयार नहीं।

इस प्रकार हम देखते है कि गाँधी जी की अहिंसा केवल तात्विक या किताब की वस्तु नहीं है। वह जीवन के प्रत्येक बिन्दु में समाई हुईहै; वह प्रत्येक समय, प्रत्येक क्षेत्र की वस्तु है। जीवन की कोई ऐसी समस्या नहीं जिसमें उसका उपयोग न हो। इसीलिए वह केवल व्यक्तिगत नहीं है; उसका प्रयोग केवल निजी आध्यात्मिक साधनाओं तक सीमित नहीं है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसका प्रयोग सम्भव एवं उचित है। गाँधी जी का विश्वास था कि मानवमात्र की निर्लिप्त सेवा ही परमेन्दर की श्रेष्ठ उपासना है इसलिए वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अहिंसा को संगठित करके अन्यायों का निराकरण एवं धर्म की प्रतिष्ठा करने को तत्पर रहे हैं क्योंकि सच्चे वीर और ही मिट्टी के बने होते हैं। उनमें वैरभाव, क्रोध, विश्वास और मौत या शारीरिक आघात के भय का कोई स्थान नहीं। हां, अहिंसा अवश्य उन लोगों के लिए नहीं है, जिनमें ये आवश्यक गुण न हों।

दक्षिण अफ्रीका तथा भारत में उन्होंने संगठित अहिंसा के जो प्रयोग किये उनमें उन्हें पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई।पूर्ण सफलता और पूर्ण स्वतन्त्रता का जो स्वप्न वह देखते थे वह सिद्ध नहीं हुआ, इसका कारण, उनकी समझ से, यही था कि भारत ने दुर्बलों की अहिंसा अपना ली थी।..... जैसा कि आजकल मैं बार-बार कहता रहता हूँ हमारी अहिंसा बलवानों की अहिंसा नहीं रही है। कमजोर लोगों में ऐसी अहिंसा एकदम नहीं आ सकती। किन्तु मेरे औषधालय में दूसरी औषधि भी नहीं है। मैं तो वही नुस्सा बतला सकता हूँ जो मेरे पास है और अमोघ तथा रामबाण है। वह कहते हैं

कि जब दुर्बलों की अहिंसा से आजादी जैसी सफलता प्राप्त हुई हो तो वीरों की अहिंसा से क्या नहीं किया जा सकता? गाँधी जी ने लिखा है कि "मर्दो की अहिंसा तो देखने की चीज होती है। उसी अहिंसा को देखते हुए मैं मरना चाहता हूँ।"

अत: मैं चाहूंगा कि मेरी दृष्टि से आप 'हिन्द स्वराज' को पढ़ें और उसमें इस अध्याय को देखें कि भारत को अहिंसात्मक कैसे बनाया जा सकता है?

5.4.3 अहिंसा और कायरता

"अहिंसा के शब्दकोश में तो डर का कोई स्थान ही नहीं है।"

एक सज्जन ने गाँधी जी से पूछा- ' 'मैं रेलगाड़ी के किसी डिब्बे में चढ़ने जाता हूँ।अन्दर एक आदमी है जो जगह रहते हुए भी दरवाजा बन्द किये हुए है और मुझे चढ़ने नहीं देता। इस स्थिति में मैं क्या करूं?"

गाँधी जी तीन रास्ते हैं-

1. स्टेशन अफसर से फरियाद करना।
2. शरीर में बल और हिम्मत हो तो बलपूर्वक दरवाजा खोलकर अन्दर दाखिल होना, और भीतर बैठा हुआ मुसाफिर लड़ाई करे तो उसके साथ लड़ना,
3. यदि हिम्मत हो और आत्मबल हो तो उस अन्यायी को सगा भाई मानकर विनय करना; विनय न माने तो अपना अधिकार छोड़कर दूसरी जगह ढूंढना और वह न मिले तो ट्रेन छोड़ देना। विश्वास रखना चाहिए कि इसमें अपना और उस अन्यायी दोनों का लाभ है। यह विचार करने का अधिकार हमारा नहीं है कि वह कब समझेगा। तीनों रास्ते ग्राह्य हैं। पर तीसरा केवल धार्मिक है। पहले दो रास्ते व्यावहारिक हैं, मगर अधर्म नहीं हैं।

चौथा रास्ता भी सोच सकता हूँ। आप कायर होकर, लड़ने में मार खाने के डर से, दूसरी जगह ढूंढ सकते है। यह अधर्म है, इससे इसे ग्राह्य रास्तों में स्थान नहीं है क्योंकि अहिंसा और कायरता दोनों का परस्पर विरोध है। कायरता नामर्दी का दूसरा नाम भी है।

अहिंसा घर में बैठे-बैठे नहीं सीखी जा सकती। उसके लिए साहस की आवश्यकता है। हम भयमुक्त हुए हैं या नहीं, यह जानने के लिए हमें जंगल में मंगल करना सीखना चाहिए। हमें शमशान में भटकना चाहिए, शरीर का दमन करके अनेक कष्ट सहन करने की शक्ति प्राप्त करनी चाहिए। जैसे दो आदमियों को लड़ते देखकर जो मनुष्य काँपने लगता है या भाग जाता है वह अहिंसक नहीं, कायर है। अहिंसक ऐसे झगड़ों को रोकने में अपने को कुर्बान कर देगा। जोखिम उठाकर अहिंसक अपनी परीक्षा करता है। संक्षेप में अहिंसक की बहादुरी हिंसक की बहादुरी से बहुत आगे जाती है। एक बात और जो चीज अहिंसा के नाम से चलती है वह अगर आपको बहिनों की इज्जत-आबरू बचाने की ताकत नहीं देती या खुद बहिनों को इस लायक, नहीं बनाती कि वे स्वयं अपनी इज्जत बचा लें तो वह अहिंसा नहीं है । सचमुच वह कोई और ही चीज हैं

अगर आप मेरे पास यह कहते हुए आते हैं कि चूंकि आप अहिंसा की प्रतिज्ञा कर चुके हैं इसलिए अपनी बहिनों की रक्षा न कर सके तो मैं आपको अपने सामने खड़ा रहने नहीं दूंगा। अहिंसा

को कायरता की ढाल तो कदापि नहीं बनाना चाहिए। यह तो बहादुरों का हथियार है। अत्याचारों को बेबसी के साथ देखने रहने की अपेक्षा तो मैं यह ज्यादा पसन्द करूंगा कि आप हिंसक तरीके से लड़ते हुए मर मिटें। सच्चा अहिंसक पुरूष अत्याचारों की कहानी कहने के लिए कभी जिन्दा न रहेगा। वह तो अहिंसक तरीके से जूझता हुआ अपनी जान पर खेल चुका होगा, मर मिटा होगा। कायरता और निर्बलता के लिए अहिंसा में कोई स्थान नहीं है। क्योंकि एक हिंसा का उपासक अहिंसा का भक्त बन सकता है, परन्तु एक कायर से तो कभी अहिंसक बनने की कोई आशा ही नहीं की जा सकती है।

मेरे अहिंसा-धर्म में संकट के समय स्वजनों को मुसीबत में छोड़कर भाग खड़े होने के लिए स्थान नहीं है। मारना या नामर्दी के साथ भाग खड़े होना, इनमें से यदि मुझे किसी बात को पसन्द करना पड़े तो मेरा सिद्धान्त कहता है कि मारने का, हिंसा का रास्ता स्वीकार करो, क्योंकि यदि मैं अन्धे को प्रकश्ति का वैभव देखना सिखा सकूं। अहिंसा वीरता की सीमा है और मुझे इसका व्यक्तिगत अनुभव है कि हिंसा के मार्ग से शिक्षण पाने वाले लोगों के सामने अहिंसा की श्रेष्ठता सिद्ध करने में मुझे कठिनाई नहीं हुई। पहिले जब मैं स्वयं डरपोक था, मैं भी हिंसा के भाव रखता था किन्तु ज्यों-ज्यों मेरा डरपोकपन दूर होने लगा, त्यों-त्यों मैं अहिंसा का मूल्य समझने लगा। जो व्यक्ति अपने कर्तव्य का स्थान छोड़कर खतरे के समय भाग खड़े हुए, वे इसलिए नहीं भागे कि वे अहिंसा-परायण थे या वे मारना नहीं चाहते थे बल्कि इसलिए कि वे मरना-नहीं चाहते, अपने प्राणों को किसी प्रकार का कष्ट देना नहीं चाहते थे। जब खरगोश शिकारी कुत्ते से डरकर भागता है तब वह अहिंसा के ख्याल से नहीं भागता। बेचारा उसकी शक्ल देखकर ही घबरा जाता है और जान लेकर भाग खड़ा होता है।

गाँधी जी ने अहिंसा और कायरता में अन्तर करते हुए लिखा है-

अहिंसा सर्वश्रेष्ठ सद्गुण है, कायरता बुरी से बुरी बुराई है। अहिंसा का मूल प्रेम में है, कायरता का घृणा में अहिंसक सदा कष्ट-सहिष्णु होता है, कायर सदा पीड़ा पहुँचाता है। सम्पूर्ण अहिंसा उच्चतम वीरता है। अहिंसक व्यवहार कभी पतनकारी नहीं होता, कायरता सदा पतित बनाती है।

मैंने तो पुकार-पुकारकर कहा है कि अहिंसा, क्षमा-वीर का लक्षण है। जिसमें मरने की शक्ति है वही मारने से अपने को रोक सकता है। कहीं मेरे लेखों से तुम भीरूता को अहिंसा मान लो या अपने लोगों की रक्षा करने के धर्म को खो बैठो तो? मेरी अधोगति हुए बिना न रहे। मैंने कितनी ही बार लिखा है और कहा है कि कायरता कभी धर्म नहीं हो सकती। संसार में तलवार के लिए जगह जरूर है। कायर का तो भय ही हो सकता दे। और उसका क्षत उचित भी है। किन्तु मैंने तो यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि तलवार चलाने वाले का भी भय ही होगा। तलवार से मनुष्य किसको बचायेगा और किसको मारेगा? आत्मबल के सामने तलवार का बल ताणवत है। अहिंसा आत्मा का बल है। तलवार का उपयोग करके आत्मा शरीरवत् बनती है। जो इस बात को न समझ सके उसे तो तलवार हाथ में लेकर भी अपने आश्रितों की रक्षा अवश्य करनी चाहिए।

5.4.4 अहिंसा और दया

"जहां दया नहौ वहां अहिंसा नहीं।"

अहिंसा वीर का लक्षण और आत्मा का बल है। अहिंसा और दया में उतना ही भेद है जितना सोने में और सोने के गहने में, बीज और वक्ष में। जहां दया नहीं, वहाँ अहिंसा नहीं। अत: यह कह सकते हैं कि जिसमें जितनी दया है उतनी अहिंसा भी है। अपने पर आक्रमण करने वाले को मैं न मारूं उसमें अहिंसा हो भी सकती है और नहीं भी। यदि उसे भयवश न मारूं तो वह अहिंसा नहीं हो सकती। दया-भाव से ज्ञानपूर्वक न मारने में ही अहिंसा जो बात शुद्ध अर्थशास्त्र के विरूद्ध हो वह अहिंसा नहीं हो सकती । जिसमें परम अर्थ हो वह शुद्ध है । अहिंसा का व्यापार घाटे का व्यापार नहीं होता। अहिंसा के दो पलड़ों का जमा-खर्च घून्य होता है अर्थात् उसके दोनों पलड़े समान होते हैं । जो जीने के लिए खाता है, सेवा करने के लिए जीता है, जो मात्र पेट पालने के लिए कमाता है वह काम करते हु ए भी निष्किय है, वह हिंसा करते हु ए भी अहिंसक है। क्रियाहीन अहिंसा आकाश-कुसुम के समान है। क्रिया हाथ पैर से होती हो, ऐसा नहीं, मन हाथ पैर की अपेक्षा बहु तज्यादा काम करता है। विचार मात्र क्रिया है; विचार-रहित अहिंसा हो ही नहीं सकती। शरीरधारी मनुष्य के लिए अहिंसा-धर्म की कल्पना की गई है।

सर्वभक्षी जब दया से प्रेरित होकर भक्ष्य पदार्थो की मर्यादा निश्चित करता है तब उस हद तक वह अहिंसा धर्म का पालन करता है। इसके विपरीत जो रूढ़ि के कारण मॉसादि नहीं खाता, वह अच्छा तो करता है लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें अहिंसा का भाव है ही। जहां अहिंसा है वहां ज्ञानपूर्वक दया होनी ही चाहिए।

जब अहिंसाधर्म सच्चा धर्म हो तो व्यवहार में हर तरह, का उसका आचरण करना भूल नहीं बल्कि कर्त्तव्य है। व्यवहार और धर्म के बीच विरोध नहीं होना चाहिए। धर्म का विरोधी व्यवहार छोड़ देने योग्य है। प्रत्येक समय सभी जगह सम्पूर्ण अहिंसा सम्मव नहीं, ऐसा कहकर अहिंसा को एक ओर रख देना हिंसा, मोह और अज्ञान है । सच्चा पुरूशार्थ तो इसमें है कि हमारा आचरण सदा अहिंसा के अनुसार हो। इस तरह आचरण करने वाला मनुष्य अन्त में परमपद को प्राप्त करेगा क्योंकि वह सम्पूर्णतया अहिंसा का पालन करने योग्य बनेगा।

जहा अहिंसा है वहां ज्ञानपूर्वक दया होनी ही चाहिए।

5.4.5 अहिंसा और धर्म

"अहिंसा हमारा सर्वोच्च धर्म है। कायरता कभी धर्म हो ही नहीं सकती।"

गाँधी जी ने लिखा है- यदि भारत तलवार के सिद्धान्त को अपनाता है, तो सम्भव है कि वह क्षणिक विजय पा ले। किन्तु उस दशा में वह मेरे लिए उतना गौरवास्पद न रहेगा। मैं भारत को इसलिए चाहता हूँ कि मेरा सब कुछ उसी के कारण है। मेरा यह दृढ़ विथास है कि संसार के लिए उसका अपना एक मिशन है। उसे अन्धे की तरह यूरोप की नकल नहीं करनी है। मेरा धर्म भौगोलिक सीमाओं के परे है। यदि मुझमें उसके प्रति असीम श्रद्धा है, तो वह मेरे भारत-प्रेम पर भी विजय पा लेगा। अहिंसा-धर्म. के द्वारा भारत की सेवा करना ही मेरे जीवन का व्रत है।

अहिंसा का धर्म केवल ऋषियों और साधु-सन्तों के लिए ही नहीं है; जनसाधारण के लिए भी वह उतना ही आवश्यक है और सम्पूर्ण विश्व के लिए तो वह सर्वोच्च धर्म है।

जिस धर्म में सहज ही मुड अर्थ और काम समाये हु एहैं उस धर्म का हम आचरण क्यों नहीं करते? यह धर्म अहिंसा और सत्य आचरण का है। हमारे पास दो अमर वाक्य है- अहिंसा परम धर्म है, और सत्य के सिवाय दूसरा धर्म नहीं। इनमें वान्धनीय समस्त अर्थ और काम आ जाते हैं। फिर हम क्यों हिचकिचाते हैं? हमारे अन्दर इस मान्यता ने घर कर लिया है कि सत्य और अहिंसा का पालन करना बहु तकठिन है। यह होते हु एभी स्वीकार करना पड़ता है कि जो सरल है वही लोगों को कठिन मालूम होता है। यह दूषित जड़ता है। यह दोष हमें निकाल ही देना चाहिए। पहले तो यह संकल्प कर लेना चाहिए कि असत्य और हिंसा द्वारा कितना भी लाभ हो वह हमारे लिए त्याज्य है। वह लाभ लाभ नहीं, बल्कि हानिरूप ही होगा। हम निश्चयपूर्वक इतना मान लें तो दोनों गुणों को अपने अन्दर आसानी से विकसित कर सकते है।

"अन्य धर्मावलम्बियों के साथ भी भाईचारे का सम्बन्ध जोड़ना चाहिए। अपने आसपास रहने वाले विधर्मियों के साथ भी हमें वैसा ही बर्ताव करना चाहिए जैसा स्वधर्मियों के प्रति होता है या होना चाहिए। उनकी सेवा के अवसर ढूंढकर उनकी सेवा करनी चाहिए, कृत्रिमता नहीं होनी चाहिए। अहिंसा के शब्दकोश में तो डर का कोई स्थान ही नहीं है। इस तरह भाईचारा पैदा करने वाला ही साम्प्रदायिक दंगों में अपने आपको खपा सकता है। यहं क्षेत्र बहु त विशाल है। इसमें शुद्ध प्रेम के अतिरिक्त दूसरी किसी योग्यता की जरूरत नहीं।"

"एक ऐसा अनमोल अहिंसा-धर्म जिसे मैं अपने शब्दों के द्वारा प्रकट नहीं कर सकता। स्वयं पालन करके ही उसका पालन कराया जा सकता है। अहिंसा धर्म की परिसीमा है। क्योंकि उसमें अभय की सोलह कलाएं पूर्णत: खिल उठती हैं। अहिंसा-धर्म के पालन में पलायन या हार के लिए स्थान नहीं है। वह आत्मा का धर्म है, इसलिए दु:साध्य नहीं। जो समझता है, उसमें यह (धर्म) सहज ही खिल उठता है। मुझे विश्वास है कि भारतभूमि को इसके सिवाय दूसरा धर्म रास नहीं आयेगा।"

5.4.6 अहिंसा और प्रेम

प्रेम एक ऐसी बूटी है जो कट्टर शत्रु को भी मित्र बना देती है। यह बूटी अहिंसा से प्रकट होती है। सुशुप्तिअवस्था में जिसका नाम अहिंसा है, जाग्रत अवस्था में वही प्रेम है। प्रेम से द्वेश नष्ट हो जाता है। अपना हो या पराया सभी के साथ प्रेम करना चाहिए। हमें प्रेम से ही कार्य करना चाहिए और इसी से हमें सफलता मिलेगी। जब तक हमारी श्रद्धा सत्य, प्रेम और अहिंसा पर अचल न होगी, तब तक हम उन्नति नहीं कर सकतें सत्य और प्रेम को कदापि न छोड़िए।

5.4.7 अहिंसा और हिंसा

अहिंसा और हिंसा में अन्तर करते हु एगाँधी जी लिखते हैं -

"अहिंसा का स्वभाव ही यह है कि वह दौड़-दौड़कर हिंसा के मुँह में चली जाए। जबकि हिंसा का स्वभाव है कि दौड़-दौड़कर जो जहाँ मिले उसको खा जाए। अहिंसक प्राणी परस्पर इसका प्रयोग नहीं कर सकते क्योंकि वे सभी अहिंसक होते हैं। लेकिन अहिंसक प्राणी जब हिंसक के समक्ष खड़ा हो जाता है तब इसकी परीक्षा होती है। निर्दयता के समक्ष दया, हिंसा के समक्ष अहिंसा, द्वेश के समक्ष प्रेम और झूठ के समक्ष सत्य की परीक्षा हो सकती है। यदि यह बात सही है तो यह कहना गलत होगा कि खूनी के सामने अहिंसा बेकार है। ही, यों कह सकते हैं कि खूनी के सामने अहिंसा का प्रयोग करना अपनी जान देना है। लेकिन इसी में अहिंसा की परीक्षा है। इसकी विषेशता यह है कि जो लाचारी से मर जाता है वह अहिंसा की परीक्षा में पास नहीं होता। जो मरते हुएभी खूनी पर क्रोध नहीं करता और उसके लिए मन में ईश्वर से क्षमा मांगता है कि वह अहिंसक है। ईसामसीह के बारे में इतिहास यही कहता है। उन्हें जिन लोगों ने सूली पर चढ़ाया उनके लिए उन्होंने मरते-मरते भी ईश्वर से प्रार्थना की, 'हे ईश्वर, जिन्होंने मुझे सूली पर चढ़ाया है उन्हें तू माफ करना।' ऐसी दूसरी मिसालें सब धर्मी में मिल सकती हैं। लेकिन क्राइस्ट की यह बात सारे संसार में प्रसिद्ध है। अहिंसा ही सम्पूर्ण धर्मो का अन्तिम ध्येय है। यह अलग बात है कि हमारी अहिंसा उपर्युक्त सीमा तक न पहुंचीहो। अपनी कमजोरी या अनुभवहीनता के कारण हम अहिंसा की भव्यता को नीचे न उतारें।"

यह ठीक है कि मारने की अपेक्षा मरने का धर्म कठिन है। शत्रु को मारते हुएमरना सरल है क्योंकि मनुष्य उस समय प्रतिहिंसा की प्रचण्ड पाशविक भावना से अभिभूत होकर काम करता है; इसके स्थान पर छाती पर गोली खाते हुए, प्रतिपक्षी के प्रति मन में करूणा एवं दया का भाव रखते हुए, हँसते हुए, बिना दुर्भावना के मरना कठिन है किन्तु एक बार अभ्यास होने पर, उपयुक्त वातावरण बन जाने पर भी अपेक्षाकृत सरल हो जायेगा। हिंसक युद्ध में जितना धन-जन एवं संचित समाज-शक्ति स्वाहा होती है, यहाँ तक कि उसके बोझ से अपने को न्याय-पक्ष मानने वाले की भी कमर रू जाती है, उससे अहिंसक युद्ध में कहीं कम हानि होती है। परन्तु अहिंसा के लिए सबसे अधिक साहस की आवश्यकता होती है।

हिंसा करने वालों को लाभ तभी होता है जब उनका मुकाबला कमजोर की अहिंसा से हो। बहादुर की अहिंसा तो किसी भी हालत में पूरी तरह हथियारों से लैस एक बहादुर सिपाही से या समूची फौज से भी मजबूत ही होती है।

यदि हम शरीर-बल से स्वातंत्र-युद्ध लड़ रहे होते तो आज संसार भारत की ओर जिस प्रकार देख रहा है कादिचत् उस प्रकार न देखता। लगता है कि पाखण्ड और रक्त की नदियों से संसार ऊब गया है। (जहां देखिए उसे असत्य दिखाई देता है और वह स्वयं उसमें भाग लेकर दुखी होता है। इसलिए भारत द्वारा घोषि त अहिंसा एवं सत्य के दावे को स्वीकार कर विश्व आश्वासन पाता है। इसीलिए गाँधी जी के जन्म दिवस 2 अब्दुबर को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा "विश्व अहिंसा दिवस' घोषित किया गया है।

5.5 अहिंसा और सर्वकालिकता

"अहिंसा यत्र तत्र सर्वत्र व्याप्त है।"

मेरा यह विश्वास है कि अहिंसा सदैव के लिए है। यह आत्मा का गुण है इसलिए व्यापक है। अहिंसा सबके लिए है, सब जगहों के लिए है, सभी युगों के लिए है। यदि वह सचमुच आत्मा का गुण है तो हमारे लिए वह सहज हो जाना चाहिए। आज कहा जाता है कि सत्य व्यापार में नहीं चलता; राजकाज में नहीं चलता। तो फिर वह कहां चलता है?

"सत्य और अहिंसा कोई आकाश-पुष्प नहीं हैं। वे हमारे प्रत्येक शब्द, व्यापार और कर्म में प्रकट होने चाहिए।"

"हमें सत्य और अहिंसा को केवल व्यक्तियों की चीज नहीं बनाना है, बल्कि ऐसी चाज बनाना है जिस पर समूह, जातियां और राष्ट्र सभी अमल कर सकें। मैं इसी को चरितार्थ करने के लिए जीता हूँ और इसी की कोशिश करते हु एमरूंगा।"

"मैंने यह विशेष दावा किया है कि अहिंसा सामाजिक चीज है, केवल व्यक्तिगत चीज नहीं है। मनुष्य केवल व्यक्ति नहीं है; वह पिण्ड भी है और ब्रह्माण्ड भी। वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का बोझ अपने कन्धे पर लिए फिरता है। जो धर्म व्यक्ति के साथ समाप्त हो जाता है, वह मेरे काम का नहीं है। मेरा यह दावा है कि सारा समाज अहिंसा का आचरण कर सकता है।"

"यदि हिन्दुस्तान विश्व को अहिंसा का सन्देष न दे सका तो यह तबाही तो आज या कल आने ही वाली है। और कल के बदले आज इसके आने की सम्भावना अधिक है। दुनियां युद्ध के शाप से बचना चाहती है, परन्तु कैसे बचे, इसका उसे पता नहीं चलता। यह चाबी तो हिन्दुस्तान के हाथ में है।"

इस प्रकार गाँधी जी अहिंसा के संगठन द्वारा जहाँ वह एक ओर सामाजिक एवं समाजगत अन्यायों से लोहा लेने का मार्ग बताते हैं वहीं दूसरी ओर युद्ध का एक नैतिक प्रतिमान भी हमारे सामने रखते हैं।

5.6 अहिंसा और विश्व

मेरा धर्म भौगोलिक सीमाओं के परे है। उसके प्रति यदि मुझमें असीम श्रद्धा है, तो वह मेरे भारत-प्रेम पर भी विजय पा लेगा। जो मनुष्य अहिंसा-धर्म का पालन करता है, उसके चरणों पर सारा संसार आ गिरता है।

संसार तो आज भारत से कुछ नवीन और अपूर्व कर्तव्य देखने की प्रतीक्षा में है। यदि भारतीयों ने भी वही प्राचीन जीर्ण-शीर्ण कवच धारण कर लिया, जिसे संसार धारण किये हु एहै तो उन्हें सम्पूर्ण विश्व में कोई नहीं पहिचानेगा। भारत का नाम तो आज इसलिए है कि वह सर्वोत्तम राजनीतिक शस्त्र के रूप में अहिंसा का प्रतिनिधित्व करता है।

भारत यदि अहिंसा को गँवा देता है, तो संसार की अन्तिम आशा पर पानी फिर जायेगा। जिस सिद्धान्त का गत अर्द्धशताब्दी से मैं दावा करता आ रहा हूँ उसका अनुकरण मैं अवश्य करूंगा। मैं अन्तिम श्वास तक आशा रखूंगा कि भारत अहिंसा को एक दिन अपना जीवन-सिद्धान्त बनायेगा, मानव जाति के गौरव की रक्षा करेगा और जिस स्थिति से मनुष्य को ऊँचा उठा मान लिया गया है, उसमें लौटने से उसे रोकेगा। किन्तु यदि हिन्दुस्तान अहिंसा को छोड़कर हिंसा की

ओर ही बढ़ता गया, फौजी तैयारियां ही होती गई तो अन्त में हिन्दुस्तान को फौजी तानाशाही (मिलिटरी डिक्टेटरशिप) के नीचे जाना होगा।

मेरा विचार था कि भारत किसी तरह सच्ची अहिंसा सीख लेगा और इसीलिए मुझे यह अनुभव नहीं हु आकि सहकर्मियों को सशस्त्र प्रतिरक्षा के लिए प्रशिक्षण लेने को कहू ।इसके विपरीत मैं तलवार और लाठियों को निरूत्साहित ही करता रहा। अतीत के लिए मुझे आज भी पश्चाताप नहीं है। मेरे मन में आज भी वही असीम श्रद्धा है कि संसार के समस्त देशों में भारत ही ऐसा है जो अहिंसा की कला सीख सकता है। आज भी यदि उसे इस कसौटी पर कसा जाये तो भारत में आज भी सम्भवत: सहस्रों स्त्री-पुरूष मिल जायेंगे, जो अपने उत्पीड़कों के प्रति कोई द्वेशभाव रखे बिना प्रसन्नता से प्राणोत्सर्ग के लिए प्रस्तुत हो जायेंगे।

5.7 सारांश

गाँधी जी ने अहिंसा को एक ऐसे विराट कैनवास पर चित्रित किया कि मानव जीवन का कोई भी भाग उसके लिए अछूता नहीं रह गया। सत्य और अहिंसा हमारे ध्येय है। 'अहिंसा परमोधर्म:' से बड़ी साधना संसार में अन्य नहीं है। हम जब तक संसार के व्यवहार में स्थित हैं--जब तक हमारी आत्मा का व्यवहार शरीर के साथ रहता है, तब तक हमसे कुछ न कुछ हिंसा होती ही रहती है। किन्तु जिस हिंसा को हम छोड़ सकते हैं, उसको हमें छोड़ देना चाहिए । हम यदि भारत का उद्धार कर सकते हैं, तो सत्य और अहिंसा द्वारा ही कर सकते हैं।

गाँधी जी ने लिखा है: ''मुझे आशा है कि हिन्दुस्तान की अहिंसा की सुगन्ध सारे संसार में फैलेगी।"

5.8 शब्दावली

अभय	:	निडरता
आचरण	:	व्यवहार
अधोगति	:	दुर्गति
वान्धनीय	:	आवश्यक
भाष्य	:	अर्थ;परिभाषा
स्फुरण	:	फैलाव,विस्तार
ध्येय	:	उछेष्य;जीवन के आदर्श
ग्राह्य	:	ग्रहण करने योग्य
पिण्ड	:	अंश
ब्रह्माण्ड	:	संपूर्णता
नेकी	:	भलाई
भीरूता	:	कायरता
द्वेशभाव	:	ईर्ष्या;बुरा भाव
रूढ़ि	:	परम्परा
मर्यादा	:	सीमा

भक्ष्य पदार्थ	:	खाने योग्य
परमपद	:	सर्वोच्च आसन;मोक्ष
प्राणोत्सर्ग	:	जीवन का बलिदान
तृणवत	:	तिनके के समान
यत्न	:	कोशिश;प्रयास
कषत्रिमता	:	बनावटीपन
गिरहकट	:	जेब काटने वाले,उठाईगीर,नकबजनी,चोरी,जालसाजी करने वाले,छोटे चोर
धर्मावलम्बी		धर्म का अनुसरण करने वाले
विधर्मी	:	दूसरे धर्म को मानने वाला
परमधर्म	:	सर्वोच्च कर्त्तव्य, श्रेष्ठ कर्त्तव्य
परे	:	सामर्थ्य या सीमा से बाहर
नैसर्गिक	:	प्राकृतिक सुन्दरता
तलैया	:	लघु आकार का जलाशय

5.9 अभ्यास प्रश्न

1. सत्य और अहिंसा के मध्य परस्पर सम्बन्ध लिखिए।
2. सत्य और अहिंसा सम्बन्धी नीति वाक्य लिखिए।
3. गाँधी जी के सत्य और अहिंसा सम्बन्धी अनुभव बताइए।
4. अहिंसा से गाँधी जी का क्या आशय है?
5. अहिंसा और नैतिकता में क्या सम्बन्ध है?
6. क्या अहिंसा और दुर्बलता समानार्थक है? स्पष्ट कीजिए-
7. अहिंसा का प्रयोग कब और कहीं किया जा सकता है?
8. स्वजनों पर संकट के समय अहिंसक क्या करेगा?
9. अहिंसा और दया में क्या सम्बन्ध है?
10. जनसाधारण के लिए अहिंसा और धर्म क्या है?
11. अहिंसा और प्रेम में क्या सम्बन्ध है?
12. अहिंसा और कायरता में अन्तर स्पष्ट कीजिए?
13. गाँधी जी के हिंसा और अहिंसा सम्बन्धी विचारों को स्पष्ट कीजिए-
14. अहिंसा का विस्तार कहीं तक किया जा सकता है?
15. अहिंसा के सम्बन्ध में विश्व को भारत से क्या आशा है?
16. अहिंसा के धर्म की पालना के लिए हमें क्या करना चाहिए?
17. अहिंसा के बारे में अपने विचार और अनुभव लिखिए-

18. आधुनिक भौतिकवादी परमाणु युग में अहिंसा की नीति आपके विचार से कितनी कारगर है?

5.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. महात्मा गाँधी की आत्म कथा: सत्य के साथ मेरे प्रयोग, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1957
2. महात्मा गाँधी हिन्द: स्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990
3. नरेश दाधीच: गांधी एवं एक्लेस्टेन्दालिज, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 1993
4. बी. अरूण कुमार: गाँधींयन प्रोटेस्ट, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2008

अध्याय – 6

सत्याग्रह

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 सत्याग्रह के नैतिक सिद्धान्त

6.3 सत्याग्रह के प्रकार

- 6.3.1 शोधक और पश्चातापी युक्तियाँ
- 6.3.2 अहिंसक असहयोग
- 6.3.3 सविनय अवज्ञा
- 6.3.4 रचनात्मक कार्यक्रम

6.4 निष्कर्ष

6.5 संदर्भ मथ

6.6 अभ्यास प्रश्न

6.0 उद्देश्य

यह अध्याय गाँधी की सत्याग्रह की अवधारणा से सम्बन्धित है, इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप-

- सत्याग्रह की अवधारणा को समझ सकेंगे,
- सत्याग्रह के नैतिक सिद्धान्तों को जान सकेंगे,
- सत्याग्रह के विविध रूपों को समझ सकेंगे, तथा
- सत्याग्रह की पद्धतियों के महत्त्व को समझ सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

महात्मा गाँधी का एक सबसे आरम्भिक योगदान उनका दर्शन और सत्याग्रह की सक्रियता है। गाँधी ने सत्याग्रह की अवधारणा को उसमें आवेष्ठित विविध सिद्धान्तों के दृष्टिकोण से व्याख्या की है। उन्होंने इसकी सत्-शक्ति, आत्म-शक्ति, तपस्या, धर्मयुद्ध आदि के साथ पहचान की। उनका विश्वास था कि एक साधन के रूप में सत्याग्रह व्यक्ति के स्तर पर और साथ ही सामाजिक स्तर पर भी कई लक्ष्यों को मूर्त रूप दे सकता है। उनका यह विश्वास दक्षिण अफ्रीका और भारत में उनके निजी एवं सार्वजनिक जीवन के दौरान व्यापक रूप से प्रचलित हु आ।

सत्याग्रह *'संत'* और *'आग्रह'* की दो परम्परागत भारतीय अवधारणाओं के व्यक्त करने वाला एक संयुक्त शब्द है। सत् का अर्थ है – 'सत्य' और 'आग्रह' शब्द का अर्थ है- दृढ़ स्थिर बने रहना। गाँधी का विश्वास था कि सत्य के लिए निरन्तर आग्रह करने से एक प्रबल शक्ति का विकास होता है जो उन सभी व्यक्तियों को ऊपर उठाती है जो इसका अभ्यास करते हैं और साथ में वे भी

जिनके विरूद्ध इसका प्रयोग किया जाता है। यह सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही परिणाम रखती है। नकारात्मक रूप में यह व्यक्ति के ऊपर अपने कर्तव्यों की अनुपालना के बतौर जोर देती है कि वह अपने चारों के अशुभ वातावरण का परीक्षण करे और बुराइयों को समाप्त करें। दूसरी ओर सकारात्मक रूप में यह व्यक्ति को समाज की सेवा के दायित्व का स्मरण कराती है, ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करके जिनमें समाज का नैतिक व आध्यात्मिक प्रगति करना आसान होगा। इस प्रकार यह अपने आप में सभी व्यक्तियों और समाज, राष्ट्र व दुनिया के कल्याण के लिए सहायक है।

सत्य की अवधारणा सत्याग्रह का मूल है। गाँधी के लिए सत्य का अर्थ था - सभी सत्ताओं में ईश्वर का मूर्तिकरण। यह सत्ता सापेक्ष और निरपेक्ष दोनों ही अर्थ रखती है। दी गई परिस्थिति में एक व्यक्ति द्वारा देखी गई सत्ता सापेक्ष सत्य होती है और तात्त्विक सत्य उन्हीं सापेक्ष सत्यों का कुल जोड होती है। इसलिए तात्विक सत्य अपने आपको कई सापेक्ष सत्यों में प्रकट करती है और यह तात्विक सत्य गाँधी के लिए ईश्वर के समान था। इसलिए गाँधी के लिए सत्याग्रह को स्वीकारना ईश्वर का मूर्तिकरण करने की ओर प्रगति करना भी था।

गाँधी जोर देते थे कि जब एक व्यक्ति सत्याग्रह को अंगीकृत करता है उसे देखना चाहिए कि जो माँगे वह कर रहा है वे सत्य के साथ संगत तो है। इसलिए एक सत्याग्रही की माँग एक ही समय पर न्यूनतम और अधिकतम होती है। इसमें असत्य के लिए कोई स्थान नहीं है। यह असत्य से लड़ती है और उसे हटाती है। इसलिए गाँधी के लिए सत्याग्रही की सच्चाई सत्याग्रह की स्वीकारोक्ति व प्रगति का अपरिहार्य भाग है। यह सच्चाई केवल नैतिक प्रश्नों पर मात्र गहन दृष्टि द्वारा ही व्यक्त नहीं होती बल्कि इन सिद्धान्तों को मूर्त रूप देने में अन्तर्निहित परेशानियों को स्वीकारने की इच्छा शक्ति दिखाना सबसे महत्वपूर्ण है।

गाँधी के अनुसार सत्य को अहिंसा के व्यवहार में पक्का विश्वास किए बिना मूर्त रूप नहीं दिया जा सकता है। सत्याग्रह में अहिंसा केवल सभी प्रकार की हिंसा से दूर रहने तक ही सीमित नहीं है। सबसे अधिक यह विरोधी के प्रति प्रेम दिखाने में व्यक्त होती है। आरम्भिक २त्तर पर यह विरोधी को उसकी बुराइयों को छोड़ने के लिए सज्जनता से समझाती है। जब इसके फलदायी परिणाम नहीं आते हैं तब विरोधी को अशुभ से बचाने हेतु अन्य साधनों उस - स्व-पीड़ा तथा सभ्य विरोध आदि के तरीकों का प्रयोग किया जाता है। ईसाई सिद्धान्त के अनुसार पाप से घृणा करों पापी से नहीं। सत्याग्रही विरोधी से मित्रवत् व्यवहार करता है। ऐसे प्यार का प्रदर्शन विरोधी के लिए भी जरूरी है कि उसके प्रति सभी ताओ को त्याग दिया जाए और उसके प्रति हिंसा करने की कोई इच्छा नहीं हो। सत्याग्रही के लिए यह भी जरूरी है - विरोधी द्वारा दिए जा रहे दण्ड की सभी निर्दयताओं को इच्छा पूर्वक सहन की इच्छा का विकास करना। इसलिए, सत्याग्रह गाँधी का दावा था कि, शुभ द्वारा अशुभ का सक्रिय प्रतिरोध का साधन है।

सत्य, अहिंसा, प्रेम तथा स्व-पीड़ा जैसे सिद्धान्तों के के साथ जुड़ाव भी सत्याग्रह को स्वीकार करने वाले व्यक्ति में बड़े साहस और आत्म-निर्भयता को बढ़ावा देने हेतु जरूरी है। इस प्रकार गाँधी के लिए सत्याग्रह साहसी व्यक्तियों का शस्त्र है जो हमेशा अपने हाथ में थामे रहते हैं,

यह असहाय लोगों का शस्त्र कभी नहीं होता है। इसमें कायरता के लिए कोई स्थान नहीं है। गाँधीजी हिंसा को वरीयता देते थे यदि कोई अन्य विकल्प नहीं रहे।

हालांकि गाँधी ने निर्भयता को सत्याग्रही की एक महानतम शक्ति माना, यह शक्ति सत्याग्रही में एक घमण्ड या जिद्दी का भाव मन में ना बैठाए। गुस्सा और घृणा सत्य और अहिंसा के विरोधी हैं लेकिन गाँधी मानते थे कि यह जरूरी है कि सत्याग्रही को गम्भीर भड़काऊ परिस्थिति में भी विरोधी कार्यवाही नहीं करनी चाहिए। गाँधी ने सत्याग्रही को एक नैतिक रूप से साहसी व्यक्ति माना जो उदारता के साथ शैतानी कार्यों के साथ सहयोग को छोड़कर, एकता और गरिमा का समर्थन करते हु एअशुभकर्ता के साथ सहयोग कर उसकी आत्म-शक्ति के स्वर को अशुभ के विरूद्ध लगायेगा जो कि एक स्थायी वृत्ति होनी चाहिए।

सत्याग्रह को नैतिकता व चौकसी का एक हथियार के रूप में मान्यता दी गई। गाँधीजी बल देते थे कि - यह केवल पवित्र लक्ष्यों के लिए ही प्रयुक्त हो सकती थी और ऐसे लक्ष्य तब ही हासिल किए जा सकते हैं जब साधन भी पवित्र हो। इसलिए सत्याग्रह में साधन और साध्य दोनों की शुद्धता समान रूप से महत्वपूर्ण है। इस प्रकार गाँधी के लिए निर्माण प्रक्रिया के लक्ष्य में ही साधन निहित थे। गाँधी के अनुसार, "शारीरिक रूप से कमजोर आदमी सत्याग्रह में भाग ले सकता है क्योंकि सत्याग्रह उसे आध्यात्मिक रूप से मजबूत बना देता है।" इसलिए गाँधीजी ने कुछ नैतिक अवधारणायें या मूल्यों की भागीदारीपूर्ण व्यवस्था बनायी जो एक विशेष समाज द्वारा हृदय में सजोए रखी गयी जिसके स्वीकारकर्ता सत्याग्रह के अल्लंघनीय आधार के रूप में एक अंश है। इसलिए उन्होंने सत्याग्रह को रच-शिक्षा एवं -पूर्णता के साधन के रूप में भी मान्यता प्रदान की।

संविधानवाद ने सत्याग्रह के मौलिक अंग का निर्माण किया। उनके अनुसार, “व्यक्ति को सत्याग्रह का सहारा तब ही लिया जाना चाहिए जब उसकी समस्याओं के समाधान के लिए उपलव्य सभी साधन असफल हो गए हों।" उन्होंने देखो और इन्तजार करना, सार्वजनिक अवेषण द्वारा तथ्यों का मूल्यांकन करना, समझौते, वार्तालाप, मध्यस्थता आदि जैसी संवैधानिक युक्तियों का सहारा लेने की वकालत की, सत्याग्रह संघर्ष की शुरूआत से पहले।

मात्रा की बजाय गुणवत्ता महत्व की मान्यता पर जोर देने वाले गाँधीजी सत्याग्रह को असीमित उपलब्धियों के साधन के रूप में देखते थे। इसलिए उन्होंने कहा कि "संख्याओं की शक्ति कायर की खुशी है। साहसी व्यक्ति आत्मगौरव के साथ अकेले ही लड़ते हैं।” उन्होनें आगे माना कि सबसे अच्छा और सबसे ठोस कार्य अल्पसंख्यकों के निवार्सन में ही किया है। हालांकि गाँधी ने जोर दिया कि जब कभी बड़ी संख्या में लोग सत्याग्रह को जारी रखे, तब इसे विशेषज्ञ व चौकन्ने नेताओं के निर्देषन में चलाया जाना चाहिए। गाँधी ने प्रेक्षित किया कि सत्याग्रह में सभी सहभागियों को अपने नेताओं द्वारा निर्देशित नियमों के प्रति अनुशासन बनाये रखना चाहिए।

6.2 सत्याग्रह के नैतिक सिद्धान्त

गाँधी ने कुछ मौलिक एवं आधारभूत सिद्धान्तों को मान्यता प्रदान की जो सत्याग्रह अभियान के दौरान देखे जा सकते थे। गाँधी द्वारा सत्याग्रह अभियान को संचालित करने वाले मान्यता प्राप्त मौलिक नियमों में शामिल थे -

(क) जिन उद्देश्यों को प्राप्त करना है, वे और शिकायतें स्पष्ट और ठोस होनी चाहिए,

(ख) सभी समयों में आत्म-निर्भर होना चाहिए

(ग) सत्याग्रहियों में हमेशा शुरूआत करने की भावना होनी चाहिए,

(घ) अभियान के उद्देश्यों, रणनीति एवं युक्तियों का प्रचार-प्रसार करना,

(ङ) माँगों की सत्य के साथ संगतता हो

(च) कर अदायगी न करना, पाठशालाओं एवं सार्वजनिक संस्थाओं का बहिश्कार सामाजिक बहिश्कार एवं स्वैच्छिक निर्वासन के रूप में असहयोग हो,

(छ) सविनय अवज्ञा या चुनिंदा कानूनों का शांतिपूर्वक तरीके से अवज्ञा हो, तथा

(ज) सरकार के कार्यो को हड़प लेना और सार्वजनिक कार्यो के संचालन हेतु समानान्तर सरकार की स्थापना करना।

6.3 सत्याग्रह के रूप/प्रकार

गाँधी ने उसके सत्याग्रह अभियान के दौरान बहुत से सिद्धान्तों को काम में लिया तथा व्याख्यायित किया। उन्होंने सत्याग्रह की तुलना एक पेड़ू से की और सत्याग्रह के साधनों की तुलना उसकी विविध शाखाओं से की। यह सभी पद्धतियाँ एक समान है। साध्य और साधनों की एकता व शुद्धता के रूप में, अहिंसा से लगाव तथा देश-काल के समान उनके महत्व की दृष्टि में। हालांकि ये विविध रूप दो एकदम विपरीत सकारात्मक और सकारात्मक रूपों के बीच स्थित है, सकारात्मक रूप ज्यादा व्यापक हैं। शैक्षणिक दृश्टि से राघवन एन. अय्यर ने इनको चार मुख्य रूपों में विभाजित किया है -

6.3.1 शोधक एवं पश्चातापी युक्तियाँ

जहाँ तक शोधक एवं पश्चातापी युक्तियों का संबंध था यह कहा जा सकता है कि यह शक्ति प्रदत्त अभिकर्मक थे जो सत्याग्रही को न्यूनतम संभव समय में संघर्ष की स्थितियों से सबसे प्रभावी रूप से निपटने में सक्षम बनाता है और उसके शरीर जीवन एवं सम्पत्ति के नुकसान के रूप में सबसे कम संभव पीड़ा सहन करता है। गाँधी ने कई शोधक एवं पश्चातापी युक्तियों की वकालत की जिनमें - प्रतिज्ञाऐं, प्रार्थनाऐं एवं उपवास आदि शामिल थे।

एक व्यक्ति को जो करना चाहिए उसको किसी भी कीमत पर करने का वचन देना ही प्रतिज्ञा कहलाती है। गाँधी ने इसे सत्याग्रह अभियान में सशक्त उतेरक तत्व के रूप में माना तथा स्व-अनुभूतिकरण व चरित्र निर्माण के लिए अपरिहार्य क्षमता के रूप में देखा। उनका विश्वास था कि इसके द्वारा इसके अभिग्रहणकर्ता न केवल आत्म-शुद्धीकरण व पूर्णता की ओर बढ़े बल्कि इस

विकास क्रम के परिणाम के रूप में सत्याग्रह कार्यवाही ओर भी तीव्र, शक्तिशाली प्रभावी अभियान बन गयी। इस अनुशासन का प्रत्येक सत्याग्रही स्वयंसेवक में दिखाई देना जरूरी माना गया। गाँधी ने प्रतिज्ञाओं का एक ऐसा खाका तैयार किया जिसमें मन, वचन और कर्म से सत्य और अहिंसा की अनुपालना करना, सामुदायिक मित्रता को बढ़ावा देना, खादी रवीकारना, अस्पृश्यता निवारण, देश और धर्म की रक्षा के लिए किसी भी प्रकार की पीड़ा को सबने का साहस स्वीकारना, संगठन के नेताओं के आदेशो की अनुपालना करना आदि शामिल है। जिन पर समय-समय पर विभिन्न प्रकार से जोर दिया गया। यह कोई महत्त्व नही रखता था कि कौनसी प्रतिज्ञाऐ की गई थी। गाँधी जी ने प्रत्येक प्रतिज्ञा को अपने कार्य में सत्याग्रह की सदभावना के भाग के रूप में देखा। जिसके समाधान में वह लगा रहा था जोकि सत्याग्रह अभियान के में चुने गऐ कार्यो के लिए कठोर परिश्रम करने हेतु साहसी और अहिंसक रूप से कार्य करने को तैयार हु आ।गाँधी संतुष्ट थे कि प्रतिज्ञाऐ सत्याग्रही की इच्छा शक्ति को सशक्त बनाती है और उसको उन कार्यो को करने के लिए तैयार करती है जिनको शुरू करने की उसकी इच्छा थी। इन प्रतिज्ञाओं के आधार पर गाँधी ने देखा की सत्याग्रह अन्याय का प्रतिरोध है, विरोधी के जीवन, व्यक्तियों व सम्पत्ति को हिंसा से बचाता है और प्रसन्नतापूर्वक स्वयं उस कार्य के परिणामों की पीड़ा भोगता है। गाँधी ने एक अनुशासन संहिता तैयार की सत्याग्रही एक व्यक्ति के रूप में, एक कैदी के रूप में, इकाई के अंग के रूप में तथा सामुदायिक मैत्री को बढ़ावा देने के रूप में उसकी विभिन्न योग्यताओं को मानने के प्रति वचनबद्ध था।

हालांकि गाँधी के आस्तिक झुकाव ने उरने यह तर्क देने हेतु जोर डाला कि - कोई भी सर्वोत्तम मानवीय प्रयास का लाभ नही उठा सकता यदि उसके पीछे ईश्वर क्रा आशीर्वाद नहीं हु आ तो। उनका विश्वास था कि एक व्यक्ति में उसने शारीरिक अस्तित्व के कारण कई कमजोरिया होती है और परिणामत: वह कभी कभी अपने को अपने जीवन में की गई प्रतिइग़ओं को पूरा करने के प्रत्यन में कठिनाई यह महसूस करता है। ऐसी कमजोरियो से अपनी आत्मा के मुक्त होने और अपने जीवन में की गई प्रतिइग़ओं के पूरा करने में सक्षम होने के क्रम में गाँधी ने माना कि एक व्यक्ति का भगवान का आशीर्वाद जरूरी है। उनका विश्वास था कि यह सर्वशक्तिमान ईश्वर की विनम्र प्रार्थना करके ही किया जा सकता था। ईश्वर में जीवित आस्था ही सत्याग्रही को सत्याग्रह के संघर्ष में सम्मिलित कठिनाईयों का कम करती है। गाँधी प्रार्थना की शरण लेने को ज्यादा अच्छे से अच्छा आचरण करना मानते थे। यह प्रार्थना जो आत्मा की लालसा दिखलाती थी, गाँधी ने जोर दिया कि वह मात्र मशीनी आविष्कार मात्र नहीं होनी चाहिए, जो नाटकीय प्रभाव के लिए स्वीकार की गई, बजाय नहा तक हो वहां तक भौतिक गतिविधियों का पूर्णरूपेण बहिश्कार होना चाहिए जो कि एक ही सत्ता के स्वामित्व में रखी हो और व्यक्ति को सभी शारीरिक कार्यो से पूर्णत: विलग कर लिया, जिससे वह अपने को सर्वोच्च स्तर की ओर उठ पाता है। उनका विश्वास था कि केवल ऐसी प्रार्थना ही व्यक्ति को इस चकाचौंध के स्तर से ऊपर उठाती है और सर्वोच्च सत्ता की चेतना ग्रहण की और दृष्टि की स्पष्टता उत्पन्न होगी। गाँधी ने यह भी देखा था कि यह विरोधी के हृदय में परिवर्तन लाने का सबसे महत्वपूर्ण साधन है और इसे पर बड़ी उपलब्धियों की हासिल करने की क्षमता के साथ विद्यमान सता के रूप में भी विचार किया।

प्रार्थना के समान ही गाँधी ने उपवास (Fasting) को भी व्यक्तियों के तनाव को कम करने के साधन के रूप में पहचान दी। वे तो उपवास को प्रार्थना को सबसे सच्चे स्वरूप तक मान्यता प्रदान की। जब से उन्होंने उपवास को सत्याग्रही के सभागार का बसे शक्तिशाली साधन माना तब से वे इसके प्रयोग के दौरान ज्यादा सावचेत रहने और देखभाल रहने की सलाह दी। गाँधी ने समान रूप से सच्चे उपवास की विशेषताओं की रूप रेखा खींची। उन्होंने कहा कि "हालांकि केवल शरीर के लिए उपवास उसके पिछे विद्यमान इच्छा के अलावा कुछ नहीं है। आतरिक उपवास की शुद्ध स्वीकारोक्ति सत्य को अभिव्यक्त करने की अदम्य लालसा ओर कुछ नहीं केवल सत्य है। इसलिए सत्य के कारण के लिए उपवास के सौभाग्य को केवल वे ही खोते है जो इसके लिए ही कार्य करते है और जो अपने विरोधी से भी प्रेम करता है जो पाश्विक आवेगों से मुक्त है और जो भौतिक स्वामित्वों, भावनाओं को पी जाते है। उन्होंने जोर दिया कि यह कोई यांत्रिक प्रयास या मात्र दिखावा नही बल्कि आत्मा की गहराई से उठने वाली तरंग होनी चाहिए। सभी उपवास समपरिणामी होने चाहिए, गाँधी सहमत थे कि व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार यह यह करे और पर्याप्त प्रशिक्षण से गुजरने के उपरांत अंतिम उपाय के रूप में इसका सहारा लेना चाहिए। उपवास की एक दूसरी अनिवार्य शर्त के रूप में गाँधी ने माना कि जो व्यक्ति उपवास के लिए अपने को तैयार करता है, उसके द्वारा ही उपवास किया जाना चाहिए और वह लोगों से जुड़ा होना चाहिए वे लोग उसके विरूद्ध हो जिनके लिए उपवास किया जा रहा है और अंत में यह लोगों के उद्देश्यों से सीधा जुड़ा होना चाहिए। इस तथ्य की पहचान की कि वास्तविक उपवास सबसे ज्यादा संभव चरित्रवान व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिए, गाँधी की उपवास की वकालत सामान्यतया भोजन और तृष्णा की सीमाओं की पहचान से परे जाने की थी।

गाँधी ने सत्याग्रही के आध्यात्मिक अनुषासन के रूप में मौन की भी पहचान की। उन्होंने माना कि यह सत्याग्रही को सत्य की खोज एवं आध्यात्मिक विकास में न केवल अमूल्य सहायता देगा बल्कि ईश्वर के साथ सम्पर्क में भी बहुतसहायक है। उन्होंने यह भी माना कि सत्ता के रूप में यह व्यक्ति की ऐसी प्राकृतिक कमजोरियों, जैसे सत्य को सोच समझकर या बिना सोचे समझे बढ़ाचढ़ा कर पेश करने की, दबाने की या संशोधित करने की अद्योवृति आदि, पर विजय की इच्छा रखने वालों के लिए जरूरी है।

6.3.2 अहिंसक असहयोग

गाँधी ने अहिंसक असहयोग को सत्याग्रह का एक गहन रूप माना। जो कि पूर्व निर्धारित रूप में राज्य जो कि असहयोगी की दृष्टि में भ्रष्ट हो चुका था, के साथ सहयोग के हाथ खींच लेने के राजनीतिक परिणाम रखता था। गाँधी इसकी प्रक्रियात्मक क्षमता के इस आधार से संतुष्ट थे कि - कोई भी जो स्थायी रूप से अशुभ कार्य करना चाहते थे वे तब तक सफल नही हो सकते है जब तक कि जिसके विरूद्ध यह कार्य निर्देशित थे वे उसका इच्छा पूर्वक सहमति या निफय स्वीकारोक्ति नही दे देते है। इस प्रकार जब उत्तरवर्ती-पूर्ववर्ती को सहयोग करने से इनकार कर देता है, तो पूर्ववर्ती

अपने निरतंर बुराई करने के कार्यो में विफलता पाता है और यह बुराई अपने आप अपने उदभव बिन्दु पर प्रभावी रोक लगा लेती है।

असहयोग की मूल प्रकृति पर जोर देते हु एगाँधी ने कहा कि "असहयोग मेरे द्वारा प्रयुक्त अर्थ में अहिंसक रूप में प्रयुक्त होना जरूरी है और इसलिए न तो यह दण्डात्मक और न ही प्रतिशोधक न ही दुर्भावना, द्वेश या घृणा पर आधारित है।" सत्याग्रह एक सक्रिय सहयोग के रूप में देखा गया है बजाय विरोधी द्वारा पहले अपनी बुरी मनोवृत्तियों को त्याग करने के। गाँधी का इस बात में पक्का विश्वास था कि कोई भी आदमी मुक्ति से परे हो गाँधी ने वकालत की कि असहयोगी निरंतर रूप से अन्यायकर्ता की राक्षसी अभिकल्पनाओं का विरोध करें, इसी दौरान चुपचाप विरोधी के आक्रामक कार्यो के कारण पीड़ा सहता रहे और प्रेम, स्व-पीड़ा एवं तार्किक विश्वास द्वारा उसे बुराईयों से परे हटाने का कार्य करता रहे। वे बहुतस्पष्ट थे कि असहयोगी को अपने विरोध के प्रति मित्रवत व्यवहार करने व अच्छे इरादो के बारे में समझाने की बहुत अधिक आवश्यकता है। परिणामत: गाँधी ने वकालत की कि असहयोगी को जहां कही भी सभव हो मानवीय सेवा करते हु ए जगह बनाने की कोशिश करनी चाहिए। इस संदर्भ में गाँधी ने माना कि असहयोग हु ल्लडबाजी द्वारा किसी को डराने की बजाय उसके हृदय को स्पर्श करने तथा विवेक की अनुरोध प्रक्रिया है।

गाँधी ने सद्भावना (Sincerity) को असहयोगी के लिए अपरिहार्य बताया। गाँधी ने असहयोग को एक सद्भावना का परीक्षण के रूप में मान्यता देते हु एकहा कि असहयोग कोई शेखी मारने, धौंस जमाने की प्रचण्डता का आंदोलन नहीं है। यह हमारी सद्भावना या ईमानदारी की परीक्षा है। यह मजबुत और मौन - त्याग चाहता है। यह राष्ट्रीय कार्य के लिए हमारी ईमानदारी और क्षमता को चुनौती देती है। यह एक आंदोलन है जिसका लक्ष्य - विचारों को कार्यो में रूपांतरित करना है। गाँधी ने यह भी कहा कि असहयोगी को विनम्र और स्वत: प्रतिबंधित होना चाहिए और उसे असहयोग के सिद्धांत की मान्यता प्राप्त परिधि मे ही कार्य करना चाहिए। असहयोग की उल्लेखित सीमाओं से परे के कार्य इसे अपराधी बनाएंगे। यह गाँधी का पक्का विश्वास था कि जब असहयोग ऐसी मान्यता प्राप्त हदों में रहेगा तब उत्प्रेरणा के रूप में सेवा करते हु एवह व्यवस्था के बाहर एक सत-व्यवस्था को विकसित करते हु एसेवा करेगा अहिंसक असहयोग के विविध साधन है, जिनका गाँधी ने मान्यता प्रदान की जैसे - हड़ताल, बहिश्कार, स्ट्राइक और हिजरत आदि।

हड़ताल में सामान्यत: व्यवसाय उत्तरदायित्व को रोकना सम्मिलित है। यह इसके अभिग्रहणकत्ताओ की सरकार या शासको के कुछ अवांछित कानूनों या २चेच्छाचारी आदेशों को अस्वीकार करने की प्रवृत्ति को प्रदर्शित करता है।

बहिश्कार को गाँधी ने व्यक्ति या समुह द्वारा स्वीकृत एक साधन के रूप में बताया जो बुराई या अन्याय के स्थायीकरण के विरूद्ध एक सशक्त इच्छा एवं घोषणा है। ऐसी मजबुत इच्छा और घोषणा द्वारा यह न्याय की स्थापना करना चाहता है।

असहयोग का एक दुसरा भी साधन है स्ट्राईक जिसकी गाँधी जी ने वकालत की थी। इसके अभिग्रहणकर्ता की और से इसके अनुप्रयुक्तरूप में यह सहभागिता की समाप्ति का प्रतिनिधित्व करता है। और अशुभकर्ता की शैतानी अनुकल्पनाओ की ओर से यह उसको उसके कार्यो की मूर्खता

का ज्ञान कराता है। हिजरत असहयोग के पूर्वोका कथित रूपों रवे कुछ अलग था। गाँधी ने हिजरत को अंतिम साधन के रूप में स्वीकारने पर बल दिया यह उनके लिए था जो निरकुंश शासकों के उत्पीड़न और अन्याय के विरूद्ध अपने आपकी रक्षा करने में असक्षम पाते थे। इसके स्वीकारकर्ता अनैतिक कार्यो में सहभागिता की अनिच्छा जताते है, तथा शासकों और उनकी जमीन को गलत कार्यो से बचाने हेतु एक स्थान से दूसरे स्थान पर चले जाते है। हालांकि वे मानते थे कि सत्याग्रह के शुद्धता रूप में हिजरत की आवश्यकता नहीं होती थी। वे सत्याग्रही के स्वर के उस स्तर को प्राथमिकता देते थे जो बुराई से लड़ाई की प्रक्रिया में लगी सम्पूर्ण नैतिक शक्ति है। इस कारण संभवतया वे हिजरत को शुद्ध सत्याग्रह में वास्तविक या उचित स्थान नहीं रखने को मान्यता प्रदान की।

6.3.3 सविनय अवज्ञा

सत्याग्रह का अन्य रूप सविनय अवज्ञा था। सत्याग्रह की एक शाखा के रूप में सविनय अवज्ञा संवैधानिक कानून के अल्लघंन तथा अनैतिक कानून का संकेत करता है और प्रतिरोधकों के कानून से परे जाकर सभ्य एवं अहिंसक तरीके से प्रतिरोध के महत्त्व को बताता है। गाँधी ने इसे अहिंसा की सक्रिय अभिव्यक्ति के रूप में तथा अवज्ञा करने वालों के लिए अनिवार्य अनुशासन के रूप में मान्र्यता प्रदान की। उनके लिए यह एक तार्किक निष्कर्ष भी था। यह असहयोग का सबसे खतरनाक रूप था। उन्होंने इसे एक पूर्ण प्रभावी एवं खून रहित सशस्त्र विद्रोह का विकल्प बताया। उन्होंने इसे उन्माध को सृजनात्मक ऊर्जा में बदलने की सर्वोच्च पद्धति के रूप में मान्यता दी। गाँधी द्वारा सविनय अवज्ञा पर इस रूप में विचार किया गया कि यह कानून द्वारा प्रतिबंधों के बिना भय के स्वैच्छिक रूप से अवज्ञा करने की आदत की पूर्व मान्यता है तथा इसकी अंतिम अभ्यास के रूप में वकालत की तथा वह भी आरंभिक स्तर पर कुछ चुनिंदा द्वारा। गाँधी द्वारा ऐसी वकालत का आधार यह विश्वास था कि सविनय-अवज्ञा के कार्य की मूल शर्त यह है कि प्रथम दृश्टया यह व्यक्तिगत स्तर या कुछ चुनिंदा व्यक्तियों तक आसानी से लगातार खोजी जा सकती है न कि यह आमजन तक विस्तृत रूप में खोजी जा सकती है । इसके अतिरिक्त गाँधी ने मान्यता दी कि अवज्ञा की कोई भी संभावना हिंसा या खुनी क्रांति को भड़का सकती हे। जिसे आसानी से निंयत्रित किया जा सकता था जब अवज्ञाएकत्रित या कुछ चुनिदा लोगों तक सीमित रहे। आमजन सविनय अवज्ञा आंदोलन में अन्तर्निहित खतरों के कारण गाँधीजी आमजन असहयोग आंदोलन को वरीयता दी। असहयोग के कम खतरनाक तरीकों में प्रशिक्षण के द्वारा गाँधी को विश्वास हो गया था कि सविनय अवज्ञाके उद्यम के लिए जनता को अच्छी तरह तैयार किया जा सकता था।

सविनय अवज्ञा का चाहे जो भी प्रकार हो । गाँधी बहुतस्पष्ट थे प्रत्येक अवज्ञा का कार्य सविनय होना जरूरी है। जिसमें स्थितियाँ खुली हों और अहिंसा की ओर ले जाए। उन्होंने कहा कि हमें, इसे पूर्ण और ज्यादा महत्व दिया जाना चाहिए, 'सविनय' के क्रिया विशेषण को बजाय अवज्ञा को। अवज्ञा बिना सविनयता अनुशासन विभेद, अहिंसा के निश्चित रूप से विनाश हैं। उन्होंने मान्यता दी कि सविनय अवज्ञा को कभी भी अव्यवस्था का अनुसरण नहीं करना चाहिए। यदि कुछ

भी ऐसा होता है तो यह आपराधिक अवज्ञा में रूपांतरित हो जाती है जो कि निंदनीय है। मान लो कभी हिंसा अचानक फूट पड़े तो सविनय अवज्ञा के पक्के समर्थक इस हिंसा को रोकने के वास्तविक प्रयास करने चाहिए यदि चाहे उसका जीवन खतरे में ही क्यों न हो । इस प्रकार सविनय अवज्ञा के पवित्र उद्देश्यों को संक्षिप्त विवरण देते हुए गाँधी ने कहा कि "सविनय अवज्ञा की योजना में हिंसा को निष्प्रभावी एवं तात्विक रूप से पूर्णरूपेण अहिंसा द्वारा, घृणा को प्यार द्वारा और झगड़ो को समझौतो द्वारा हटाने की कल्पना की गई है। सविनय अवज्ञा के ऐसे पवित्र उद्देश्यों को, गाँधी ने प्रत्येक नागरिक का जन्मसिद्ध अधिकार के रूप में मान्यता प्रदान की। हालांकि गाँधी ने यह माना कि व्यक्ति की दी हुई कमजोरी और देश-काल की अपेक्षा, विशेषज्ञ कार्य या कानुन के संदर्भ में सविनय अवज्ञा का सहारा लेने की बुद्धिमता एक बहस का मुद्दा बन गया था तथा यह देरी व सावधानी की व्यावहारिक सलाह के लिए खुला है। उन्होंने माना कि अधिकारों पर अपने आप में कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकता।

कर्तव्य प्रत्येक अधिकार की पूर्व कल्पना है। गाँधी का भी इस मत में विश्वास था। इस मान्यता को सविनय अवज्ञा के क्षेत्र में विस्तारित करते हुए गाँधी बहुतस्पष्ट थे- सविनय अवज्ञा के कार्य में लगाने से पहले व्यक्ति में राज्य के कानुनों के प्रति सहिष्णुता की भावना को पोषित करना जरूरी था। उन्होंने यह भी पहचान की कि - सविनय प्रतिरोधक को उग्र नेतृत्व का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए क्योंकि प्रतिरोधक केवल विनम्र एवं अहानिकारक पीड़ा द्वारा ही बुराईकर्ता, जो कि किसी प्रतिरोध की अनुपस्थिति में गलत कार्य करने का निढाल हो गया, को प्रभावी रूप रवे अशुभ कार्यो से दूर कर सकता था। उन्होंने निरतंर जोर देते हुए कहा कि यदि सविनय अवज्ञा वास्तव में सविनय है तो यह निश्चित रूप से विरोधी में भी प्रकट होगी। वे महसुस करते है कि प्रतिरोध का इरादा उसको नुकसान पहुँचानानहीं है। उन्होंने जोर दिया कि अवज्ञाकर्ता को इच्छा से कानुनों के उल्लघंन पर उपलब्ध प्रतिबंधों को स्वीकार और पुष्टि के उन सभी मामलों को छोड़कर जहां दण्ड ने व्यक्ति की गरिमा का और नैतिक आचार संहिता का उल्लंघन हुआ।गाँधी ने इसे संवैधानिक विरोध का सबसे शुद्धतम रूप माना, शुद्धता, शक्ति, विकास के प्रयास के रूप में और सविनय प्रतिरोधक को परोपकारी और राज्य के मित्र के रूप में मान्यता प्रदान की।

गाँधी ने सविनय अवज्ञा के कई प्रकारों को पहचान की उनमें सबसे अधिक प्रभावी प्रकारों में शामिल है- धरना, बंद, रैलियों व बैठकों का आयोजन करना, करो की अदायगी नहीं करना, और कानून विशेष का विचार पूर्वक अवज्ञा करना।

गाँधी ने धरने की रक्षात्मक सविनय अवज्ञा के साधन के रूप में वकालत की क्योंकि यह सरकार पर सामा। लेक- आर्थिक व राजनीतिक दबाव बनाते है साथ ही जनमत का निर्माण करते है और आत्म निर्भरता की भावना को बढ़ावा देता है।

`सविनय अवज्ञा का एक दूसरा प्रकार बंद, रैलियों व बैठकों का आयोजन करना था जिसकी गाँधी ने काफी वकालत की और वास्तविक निर्माता भी थे। गाँधी ने इसके प्रयासों में सरकार के अन्यायपूर्ण प्रतिबंधात्मक आदेशों के विरूद्ध लोगों को एक जुट कर विरोध करना और सरकार के गलत कार्यो के विरूद्ध जनमत का निर्माण कार्यो में आदि को शामिल किया।

करो की अदायगी रोकने को भी गाँधी ने सविनय अवज्ञा का एक अन्य रूप में मान्यता प्रदान की। जिसमें सरकार द्वारा स्वीकारकर्ता पर लगाये जाने वाले पुर्व निर्धारित करों की अदायगी या सरकारी फीस वसूली जानें, जिनके लिए वे सोचते है कि यह अन्यायपूर्ण है, के लिए मना करना शामिल हे। इसका उद्देश्य अस्तित्व के महत्वपूर्ण स्त्रोतों का संरक्षण करना तथा सरकार को मजबूत बनाना जैसे - वित्त, और इसके माध्यम से सरकार पर प्रभाव डालना ताकि वह अन्यायपूर्ण आदेशों को खारिज कर दे।

करो की अदायगी रोकने के समान भी सविनय अवज्ञाका एक अन्य रूप राज्य के कानून विशेष की अवज्ञा करना था, जिसकी गाँधी ने वकालत की थी। इसमें उन कानूनों का चुनाव कर अवज्ञा की जाती है जो व्यक्तियों की मूलभूत आवश्यकता को पूरा करने में असफल रहे या जिन से व्यक्तियों की गरिमा का उल्लंघन किया । गाँधी ने वकालत की कि अवज्ञा हेतु कानून विशेष का चुनाव बड़े ध्यान से एवं विवेक के साथ होना चाहिए। केवल ऐसे कानूनों की जो नागरिकों के हितों को नुकसान पहुँचाते थे या जो न तो नैतिक थे न ही अनैतिक, अवज्ञा के लिए चुनाव किया जाना चाहिए। इसके अलावा उन्होंने जोर दिया कि ऐसे कानूनों का चुनाव हो जो लोगों की बड़ी संख्या में सहभागी बनने में भी सहायता करें।

6.3.4 रचनात्मक कार्यक्रम

सत्याग्रह की पद्धतियों के वर्गीकरण की अन्तिम श्रेणी में रचनात्मक कार्यक्रम को शामिल किया गया। इसने सम्भवत: सत्याग्रह अभियान को अधिक सकारात्मक स्वरूप प्रदान किया। गाँधी ने इसे बहादुर की अहिंसा के लिए प्रशिक्षण तथा स्वराज प्राप्ति के साधन के रूप में मान्यता प्रदान की। सत्याग्रह आन्दोलन के अनिवार्य भाग के रूप में यह सत्याग्रहियों के बीच अच्छी समझ पैदा करता है, और उन्हें आत्मनिर्भर एवं स्वावलम्बी बनाता है जिसको गाँधी सत्याग्रह अभियान के प्रभावी रूप से जारी रखने के लिए अपरिहार्य मानते थे। एक प्रशिक्षण प्रक्रिया के रूप में यह अनुशासन सैनिकों में सत्याग्रहियों की एक लम्बी पंक्ति की भर्ती करता है, इसकी खोज किसी भी सत्याग्रह अभियान को नैतिक रूप से पतन से लेकर दंगों जैसी हिंसक गतिविधियों की ओर बढ़ने से रोकने के लिए की गई थी। इसी तरह सत्याग्रही और विरोधी के बीच अन्तर्क्रिया एक साधन के रूप में विरोधी को समझाने, कि विरोधी के प्रति सत्याग्रही की चिन्ता और इरादे अच्छे हैं, का काम करती है। यह समाज के बड़े स्तर पर सामुदायिक तनाव, अस्पृश्यता, अशिक्षा, बेरोजगारी आदि सामाजिक बुराइयों के समापन के लिए कार्य किया है। इसलिए इसमें विद्यमान व्यवस्था के पुनर्निर्माण के प्रयासों का प्रतिनिधित्व किया वही सत्याग्रह अभियान विद्यमान व्यवस्था में सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक अन्याय के विरूद्ध अभियान था। 1941 में जब गाँधी ने अपने रचनात्मक कार्यक्रम के दर्शन की व्याख्या की, यह सत्य और अहिंसक साधन पूर्ण स्वराज जीतने के साधन के रूप में, तब उन्होंने 15 बिन्दुओं पर प्रमुखता से जोर दिया जिनकों उनके रचनात्मक कार्यक्रम में शामिल किया गया -

1. सामुदायिक एकता के लिए कार्य करना

2. अस्पृश्यता निवारण
3. शराब बन्दी,
4. खादी की स्वीकारोक्ति,
5. ग्रामीण उद्योगों का विकास
6. गाँवों की स्वच्छता,
7. मूल शिक्षा को प्रोत्साहन
8. प्रौढ़ शिक्षा को प्रोत्साहन
9. महिला उत्थान,
10. स्वास्थ्य और स्वच्छता को बढ़ावा,
11. हिन्दुस्तानी भाषा की स्वीकारोक्ति हेतु प्रचार-प्रसार,
12. प्रान्तीय भाषाओं को प्रोत्साहन
13. आदिवासियों की सेवा
14. श्रमिकों, किसानों व छात्रों को संगठित करना।

बाद में उन्होंने इसको बढ़ाते हुये इसमें कई अन्य कार्यक्रमों को शामिल किया जैसे गाय की सेवा करना या पशुओं की दशा सुधारना आदि।

6.4 निष्कर्ष

निष्कर्ष के बतौर यह कहना शायद सही है कि सत्याग्रह गाँधी की अहिंसक दर्शन का क्रियात्मक पहलु है जो अपने मूल में कुछ निश्चित नैतिक या आध्यात्मिक सिद्धान्तों को रखता है। इसकी सत्ता पर गाँधी को इतना विश्वास था कि यह व्यक्ति द्वारा अकेले में व समूह में सामना करने वाले विविध संघर्शों का शान्तिपूर्ण तरीके से समाधान की सम्भावना, क्षमता रखता है। यह अपने स्वीकारकर्ता को स्वयं को पूर्ण बनाने तथा उसी समर विरोधी को भी प्रेरित करती है कि वह स्वैच्छिक रूप से अन्याय और बुराई को त्याग दें। इस प्रकार स्वीकारकत और विरोधी दोनों ही सत्याग्रह के स्वीकार करने तथा संघर्षों के समाधान के पश्चात् अपने अस्तित्व के बेहतर स्तर पर पहुँचते हैं। इसलिए यह व्यक्तियों के बीच सामजस्यवादी सम्बन्ध स्थापित करते हुए एक अच्छे समाज राष्ट्र व विश्व का निर्माण करने की असीम सम्भावना रखता है।

6.5 उपयोगी पुस्तकें

- रोनाल्ड,ट्रर्चक, "गाँधीयन पॉलिटिक्स इन नॉन डायमेंशन एण्ड प्रस्पेक्टिव इन गाँधिज्म", इन बी.टी. पाटिल (सम्पा.),इन्टर इण्डिया पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली,1989
- एम.के. गाँधी, सर्वोदय, भारतरत्न कुमारप्पा (सम्पा.), नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1984
- एन.के. बोस,'सलेक्शन्स फ्रॉम गाँधी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1972
- जॉन वी. बोन्दुरा, 'कॉनवेस्ट ऑफ वायलेंस: द गाँधीयन फिलॉसॉफी ऑफ कान्फिलक्ट, प्रिंसटन युनिवर्सिटी प्रेस, न्यूजर्सी, 1958

– राघवन एन. अय्यर, द मोरल एण्ड पॉलिटिकल थॉट ऑफ महात्मा गाँधी, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1973

6.6 अभ्यास प्रश्न

1. सत्याग्रह की अवधारणा की चर्चा कीजिए।
2. सत्याग्रह के मूल सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
3. सत्याग्रह के विविध रूपों के महत्व की समीक्षा कीजिए।
4. आधुनिक समय में सत्याग्रह के महत्व की चर्चा कीजिए।

इकाई - 7

गाँधी चिन्तन: राजनीतिक एवं धार्मिक

इकाई की रूपरेखा

7.0 प्रस्तावना
7.1 उद्देश्य
7.2 राज्य सश्वश्वी विचार
7.3 पश्चिमी लोकतन्त्र की आलोचना
7.4 अहिंसक लोकतन्त्र
7.5 विकेन्द्रित लोकतन्त्र (ग्राम स्वराज्य)
7.6 रामराज्य की अवधारणा
7.7 राजनीति का आध्यात्मीकरण
7.8 राष्ट्रवाद व अन्तर्राष्ट्रवाद
7.9 धर्म सम्बन्धी अवधारणा
7.10 सारांश
7.11 अभ्यास प्रश्न
7.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

7.0 प्रस्तावना

गाँधी चिन्तन एक बहु आयामी चिन्तन है। इस चिन्तन के सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक-धार्मिक एवं नैतिक आयाम है। यहाँ पर हम गाँधी चिन्तन के राजनीतिक और धार्मिक आयाम की चर्चा करेंगे। गाँधी चिन्तन में सत्य और अहिंसा जैसे सिद्धान्तों का विशेष महत्व है। गाँधीजी राज्य और राजनीति को मानव समाज के लिए उपयोगी बनाना चाहते हैं। गाँधीजी का यह मानना है कि राज्य का जन्म हिंसा से हु आहै और इसलिए हिंसा को राज्य से अलग नहीं किया जा सकता। गाँधीजी पश्चिमी लोकतन्त्र का भी विरोध करते हैं क्योंकि उनका मानना है कि पश्चिम में लोकतन्त्र नाम की कोई चीज नहीं है, केवल मात्र दिखावा है। स्वतन्त्रता, समानता और भाईचारे की भावना जैसे मूल्य दलगत राजनीति के दल-दल में फंसकर रह गये हैं। जनता के प्रतिनिधि जनता के होने के बजाय दल के प्रतिनिधि बनकर रह गये हैं। स्वतन्त्रता समानता और भाई चारे जैसे मूल्यों के लिए गाँधीजी ने ग्राम-स्वराज्य की अवधारणा का प्रतिपादन किया। जिससे जनता स्वावलम्बी, स्वशासित, स्वधर्म, स्वदेशी व स्वशासन के सिद्धान्तों का पालन करते हु ए सुख से रहेगी। राजनीति में धर्म समाहित करके राजनीति का चरित्र लोककल्याणकारी बनाना चाहते हैं। गाँधीजी के अनुसार धर्म विहीन राजनीति शव के समान है जो मानव समाज का कल्याण नहीं कर सकती। धर्म मानव सेवा का धर्म है। सभी धर्मो का उद्देश्य एक ही है। मानव कल्याण के विभिन्न

मार्ग हैं। अत: राजनीतिक और धार्मिक चिन्तन का केन्द्र बिन्दु "मानव" एवं "मानव समाज" है। गाँधीजी मानव जीवन का समग्र रूप से कल्याण करना चाहते हैं।

7.1 उद्देश्य

मानव जीवन में राज्य, राजनीति और धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका है। मानव जीवन इन तीनों अवधारणाओं से बहुत प्रभावित हुआ है। इनसे अलग भी नहीं किया जा सकता है। आधुनिक भारतीय चिन्तन में गाँधीजी का महत्वपूर्ण स्थान है। गाँधीजी ने राज्य, राजनीति और धर्म को एक अलग अंदाज में परिभाषित करने व विश्लेषण करने का प्रयास किया है। प्रस्तुत इकाई में गाँधीजी के राजनीतिक और धार्मिक विचारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया। जिसके निम्नलिखित उद्देश्य हो सकते हैं:

1. गाँधीजी की राज्य एव राजनीति सम्बन्धी अवधारणा को समझाइए।
2. पश्चिमी लोकतन्त्र के सश्व-ध में गाँधी जी के विचारों को जानना।
3. गाँधीजी द्वारा प्रतिपादित रामराज्य की अवधारणा को समझना।
4. गाँधीजी द्वारा प्रतिपादित राजनीति और धर्म के सम्बन्ध का विवेचनात्मक अध्ययन करना।
5. गाँधीजी की धर्म सम्बन्धी अवधारणा को समझना।

7.2 राज्य सम्बन्धी विचार

गाँधी न केवल राजनीतिक दार्शनिक थे अपितु सच्चे कर्मयोगी और सन्त प्रवृत्ति के राजनीतिज्ञ भी थे। जॉन वी. बोंदरा के शब्दों में वे राजनीतिक कार्यकर्त्ता और व्यावहरिक दार्शनिक थे, वे सिद्धान्त निर्माता नहीं थे। गाँधी मार्क्स की तरह राज्य विहीन, वर्ग विहीन समाज की स्थापना करना चाहते है वे एक ऐसे आदर्श राज्य की कल्पना करते है "जिसमें कोई राजनीतिक शक्ति नहीं होगी क्योंकि उसमें कोई राज्य ही नहीं होगा"। गाँधी न तो राज्य को ईश्वर की निरपेक्ष सम्प्रभुता मानते हैं और न ही अराजकतावादियों की तरह राज्य को पूर्णत: समाप्त करना चाहते हैं परन्तु इतना अवश्य है कि गाँधी अराजकतावादियों की तरह राज्य की बढ़ती हुई शक्ति को भय से देखते हैं और व्यक्ति को अधिक से अधिक स्वतन्त्रता देना चाहते हैं। गाँधी वस्तुत: समन्वयवादी विचार रखते हैं। जो पश्चिमी राजनीतिक बहुलवाद के समीप है, जिनका समर्थन इंग्लैण्ड में डा. जे.एन. फिगिस एडी. लिडसे तथा हेरोल्ड जे. लास्की, फ्रांस के डिग्विट और कार्वे करते हैं।

गाँधी राज्य की सत्ता को निम्न दो कारणों से अस्वीकार करते हैं -

1. राज्य सत्ता का प्रतिनिधित्व करता है।
2. राज्य को संगठित हिंसा का प्रतिनिधित्व मानते हैं।

इस प्रकार वे राज्य को एक अनैतिक संस्था मानते हैं। राज्य की सत्ता व्यक्ति की स्वतन्त्रता के लिए घातक है और राज्य की शक्ति व्यक्ति के नैतिक मूल्यों को नष्ट कर देती है। गाँधी व्यक्ति की नैतिक शक्ति की प्रधानता को स्वीकार करते हैं। वे राज्य की सार्वभौमिकता के संगठित प्रणाली के आधार के विरूद्ध नैतिक शक्ति पर आधारित जनता की सम्प्रभुता को स्वीकार करते हैं। वे राज्य को साध्य की जगह लोक कल्याण के लिए साधन मानते हैं। गाँधी के लिए

"राजनीतिक सत्ता साध्य नहीं हैं यह जीवन के प्रत्येक विभाग में लोगों के लिए अपनी स्थिति सुधारने का एक साधन है। राजनीतिक सत्ता का अर्थ है कि राष्ट्रीय प्रतिनिधियों द्वारा राष्ट्रीय जीवन का नियमन करने की शक्ति। यदि यह राष्ट्रीय जीवन इतना पूर्ण हो जाय कि वह स्वयं आत्म नियमन कर ले तो फिर किसी प्रतिनिधित्व की आवश्यकता हीं नहीं रह जाती। उस समय पूर्ण अराजकता की स्थिति हो जाती है। ऐसी स्थिति में हर एक अपना राजा है।" उसके साथ ही गाँधी व्यक्ति को सामाजिक मानते हैं वे व्यक्ति की स्वतन्त्रता को महत्वपूर्ण मानते हैं पर स्वच्छन्दता को नहीं मानते हैं। अगर स्वच्छन्दता आती है तो वह जंगल का नियम और डार्विन के सिद्धान्त जो कि अनियन्त्रित व्यक्तिवाद है। अनियन्त्रित व्यक्तिवाद जंगली जानवरों का नियम है। हमें अपने व्यक्तिवाद को सामाजिक प्रगति के अनुकूल बनाना है। हमें व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और सामाजिक संयम के बीच का रास्ता अपनाना है। हमें समाज की भलाई के लिए सामाजिक संयम को खुशी के साथ मानना होगा अर्थात वह अपने पड़ोसियों के लिए कभी बाधक नहीं बनता है इसीलिए आदर्श व्यवस्था में कोई राजनीतिक सत्ता नहीं होगी क्योंकि वहाँ राज्य नाम की कोई चीज ही नहीं है। गाँधी व्यक्ति का इतना विकास करना चाहते है कि व्यक्ति स्वयं इतना सार्वभौमिकता प्राप्त कर ले कि अपना जीवन चलाने के लिए राज्य की आवश्यकता ही नहीं रहे। गाँधी का लक्ष्य सभी व्यक्तियों का कल्याण करना है, उनका विकास करना है।

यह सब अहिंसक राज्य में ही सम्भव है। गाँधी को आदर्श समाज तक पहुंचने के लिए आदर्श अहिंसक राज्य ही आवश्यक है। वे राज्य को हिंसा का संगठित रूप मानते हैं। क्योंकि राज्य का जन्म ही हिंसा से हुआ मानते हैं। गाँधी कहते हैं कि "मैं राज्य की शक्ति वृद्धि को सबसे बड़े भय से देखता हूँ। क्योंकि प्रतिभासिक रूप से वह शोषण करते हुए मालूम पड़ता है, परन्तु यह व्यक्ति व्यक्तित्व को समाप्त करके मानवता का सबसे बड़ा अहित करता है। राज्य हिंसा का केन्द्रित और संगठित रूप ही है। व्यक्ति में आत्मा होती है परन्तु राज्य एक जड़ यन्त्र मात्र है इसीलिए उसे हिंसा से कभी नहीं छुड़ाया जा सकता है क्योंकि हिंसा से ही तो इसका जन्म होता है। इसीलिए गाँधी राज्य की सार्वभौमिकता व सत्ता की वैधता का निषेध करते हैं व्यक्ति स्वयं जीवन में सामाजिक, आर्थिक वर्णाश्रम धर्म के अनुसार नियमित एवं नियन्त्रित होंगे। इनकी आदर्श समाज में हिंसा की कोई जगह नहीं है।

गाँधी लोगों को बीज के समान मानते हैं और राज्य को उसका फल मानते हैं। जब बीज स्वयं अच्छा होगा, तब राज्य रूपी फल भी अच्छा होगा। गाँधीजी का राज्य इकाईयों की तरह व्यक्ति के पापों का फल नहीं है और न ही बुर्जुआ वर्ग की तरह एक शोषण का है। गाँधी अहिंसा में विश्वास करते हैं। इसलिए वे राज्य के हिंसात्मक तत्व को निकालना चाहते हैं।

7.3 पश्चिमी लोकतंत्र की आलोचना

गाँधी पश्चिम के देशों की लोकतन्त्र की पद्धति को भी अच्छी नहीं मानते हैं । "गाँधी लोकतन्त्र और लोगों की स्वतन्त्रता, समानता, प्रगति, शान्ति में कोई विरोधाभास नहीं मानते हैं परन्तु जब लोग उत्पादन और वितरण के साधनों पर एकाधिकार बना लेते हैं, तकनीको ज्ञान का

एकाधिकार बना लेते हैं। इस तरह जब अनियन्त्रित व्यक्तिवाद का उदय होता है तो इससे समाज में असमानता फैलती है।" लोकतन्त्र एक ऐसी शासन व्यवस्था है जिसमें प्रत्येक नागरिक स्वतन्त्रतापूर्वक समानता से अपने विचारों और अपनी इच्छाओं को व्यक्त करते हैं। गाँधी ने पाश्चात्य लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था की कटु आलोचना की है। उसके अन्तर्गत पूंजीवाद का असीम प्रसार हुआ है जिसके फलस्वरूप दुर्बल जातियों का डटकर शोषण किया गया है। कुछ लोकतांत्रिक राज्यों ने तो फासीवादी तरीके भी अपना लिये। लोकतन्त्र का आज जो व्यावहारिक रूप हमें देखने को मिलता है" वह शुद्ध सूक्ष्म रूप में फासीवाद है।

गाँधी ने ब्रिटेन की संसद की भी कटु आलोचना की है। ब्रिटिश संसद जिसे संसद। की जननी कहा जाता है, उसकी तुलना एक वैश्या से की है। उनका विश्वास है कि वैश्या की भाँति वह मन्त्रियों के हाथों की कटपुतली बनकर रह जाती है। गाँधी ने ब्रिटिश संसद की कार्य प्रणाली और व्यवहार की भी कटु आलोचना की है। उनका विश्वास है कि ब्रिटिश संसद के कार्यो में कोई निश्चितता नहीं होती। जो मन्त्री आज है वह कल नहीं है। गाँधी ने हिन्द स्वराज्य में लिखा है कि "संसद के सदस्य मिथ्यावादी और स्वार्थी होते हैं, उनके विचारों में दल की विचारधारा होती है और अपने दल के प्रति निष्ठा रखते हैं, न कि संसद और जनता के प्रति। क्योंकि वे अपने को सत्ता में बनाये रखना चाहते हैं। प्रधानमंत्री के हाथों में संसद का निराशाजनक समर्पण हो जाता है जिसमें ईमानदारी और शुद्धता की भावना का हनन हो जाता है। संसद के विधायी और संवैधानिक कार्य दल-दल की राजनीतिक विचारधारा से प्रभावित होते हैं।

गाँधी का मानना है कि पश्चिमी लोकतन्त्र में शासन शक्ति थोड़े से लोगों के हाथों में होती है, जनता का एक बडा भाग इस शक्ति से अछूता रहता है, उसका शासन में किसी प्रकार की सहभागिता नहीं होती है। पाश्चात्य लोकतन्त्र में एक शासक वर्ग का शासन होता है । इसमे शासक वर्ग द्वारा लोकतन्त्र के नाम पर जनता का शोषण किया जाता है। पश्चिमी लोकतंत्र सिद्धान्त रूप में स्वतंत्रता,समानता तथा भाई-चारे के मानवीय मूल्यों को क्यीकारता है और इनके आधार पर एक न्यायपूर्ण समाज की रचना की बात कहताहै, किन्तु व्यवहार में इसने उस पूँजीवादी व्यवस्था की जड़ों को मजबूत किया है जो समस्त लोकतांत्रिक मूल्यों एवं आदर्शो की विरोधी है। इससे शोषण एवं हिंसा की प्रवृत्ति को बल मिला है। पूँजीपति राष्ट्रीय स्तर पर मजदूरों का और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पिछडे एवं गरीब राष्ट्रों का शोषण करते हैं। पश्चिमी लोकतंत्रों की पूंजीवादी व्यवस्था के कारण आर्थिक सत्ता का केन्द्रीकरण हुआ है जिसने राजनीतिक सत्ता के केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया है। इससे स्वयं लोकतंत्र कमजोर हुआ है, पूँजीपतियों तथा राजनीतिक दलों में अपवित्र समझौता हुआ है जिसके कारण अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पश्चिमी लोकतंत्र साम्राज्यवाद का समर्थक बन गया है।

गाँधी जी ने पश्चिमी लोकतंत्र में निहित उपर्युक्त व्यावहारिक कमियों एवं दोषों के कारण इसे एक वास्तविक लोकतंत्र मानने से इंकार किया है। गाँधी जी के शब्दों में, "निःसन्देह यूरोपीय देशों में जनता के हाथ में राजनीतिक सत्ता रहती है, किन्तु स्वराज्य नहीं रहता है।" यद्यपि पश्चिमी लोकतन्त्र सिद्धान्त रूप में विधि के शासन, न्याय तथा मानवीय मूल्यों को अपना आधार

घोषित करता है, किन्तु व्यवहार में यह अपनी व्यवस्था एवं सत्ता की रक्षा के लिए हिंसा एवं दमन के साधनों का प्रयोग करता है। इस प्रकार पश्चिमी लोकतंत्र व्यवहार में 'लोक' (जनता) की उपेक्षा करने वाला शासन सिद्ध होता है और इसलिए इसे सही मायने में लोकतांत्रिक शासन भी नहीं माना जा सकता है।

गाँधी जी ने पश्चिमी पद्धति के प्रतिनिधित्व प्रजातन्त्रों में प्रचलित, बहु मतके रूढ़ सिद्धान्त की भी कटु आलोचना की। उन्होने कहा कि बहु मतके शासन के विचार में, विवेक बल की अपेक्षा संख्या-बल की प्रतिष्ठा करके लोकतांत्रिक आस्था के मर्म को नष्ट कर दिया जाता है। उन्होंने आशंका की कि ऐसे लोकतन्त्रों में, बहु संख्यक वर्ग अल्पसंख्यकों की भावनाओं का दमन करके अपने मत और हितों का संरक्षण करता है। गाँधी जी ने ऐसी लोकतान्त्रिक पद्धति पर बल दिया, जिसमें अल्पसंख्यक और बहु संख्यकके वर्गीकरण असंगत हो जाएं और राजनीतिक संस्थाएं एक साथ सबके हितों को सुनिश्चित कर सकें। गाँधी जी के अनुसार 'सच्चा लोकतंत्र' तो वह है जिसमें 'सर्वोदय' शासन के पवित्र उद्देश्य के रूप में प्रतिष्ठित हो।

7.4 अहिंसक लोकतंत्र

गाँधी ने यहाँ तक कहा कि पश्चिम में कोई लोकतन्त्र नहीं है “वह केवल एक नाम का लोकतन्त्र है क्योंकि उनमें जनता के शोषण की बुराई के कीटाणु पले रहे हैं और वे शोषण के लिए हिंसा का सहारा लेते हैं। हिंसा और लोकतन्त्र साथ-साथ नहीं चल सकते। अगर भारत को वास्तविक अर्थो में लोकतन्त्र कायम रखना है तो हिंसा और असत्य के साथ कोई समझौता नहीं करना होगा। कांग्रेस रजिस्ट्रर में 10 लाख आदमी, औरत, अगर वे हिंसा और असत्य का सहारा लेते हैं तो कभी भी वास्तविक अर्थो में लोकतन्त्र नहीं आयेगा और न कभी स्वराज्य ही आ पायेगा। यदि 10 लाख में से 10 हजार भी पूरी तरह से अहिंसक और सत्यनिष्ठ है तो वास्तविक अर्थो में लोकतन्त्र व स्वराज्य भी आ जायेगा।''

गाँधी ने दक्षिण अफ्रीका और अमरीका के दक्षिण के भागों में प्रचलित भेदभाव की नीतियों की कटु आलोचना की है। गाँधी ने कहा है कि यूरोपीय लोकतन्त्र में वास्तविक लोकतन्त्र का निषेध है। अहिंसा के द्वारा ही सच्चे लोकतन्त्र की स्थापना की जा सकती है। राजनीतिक लोकतन्त्र का अर्थ है कि विरोधियों के साथ पूर्णत: सम्यक व्यवहार किया जाय। आर्थिक क्षेत्र में लोकतन्त्र का अर्थ है कि सबसे दुर्बल व्यक्तियों को भी वे सुविधाऐं मिलनी चाहिए, जो सबसे शक्तिशाली को उपलब्ध है। लोकतन्त्र तथा हिंसा के बीच मेल नहीं हो सकता। वे चाहते थे कि भारत में एक सच्चे लोकतन्त्र का विकास हो ''यदि व्यक्ति की स्वतन्त्रता प्रजातन्त्र का सार है तो इसकी सुरक्षा और पूर्ण विकास अहिंसा में ही सम्भव है।

इस प्रकार के लोकतन्त्र के अन्तर्गत सबल व दुर्बल-सबको विकास का समान सुअवसर मिलता है। इसमें भौतिक-आर्थिक-आध्यात्मिक विभिन्न प्रकार के साधनों का उपयोग सभी के समान्य सुख के लिए होता है। सहिष्णुता और धर्म-निरपेक्षता इसके आवश्यक गुण हैं। गाँधी का आध्यात्मिकता और अहिंसा में पूर्ण विश्वास है। वे लोकतन्त्र के बहु मतवादकी भी आलोचना करते

हैं। उन्होंने कहा है कि अहिंसक राज्य में केवल बहु मतके निर्णय का कोई स्थान नहीं है। 51 प्रतिशत बहु मत होने पर तो शासन करते हैं और 49 प्रतिशत बहु मत का कोई मूल्य नहीं होता है, उसकी उपेक्षा की जाती है। गाँधी नहीं चाहते कि किसी की उपेक्षा की जाय। गाँधी के अहिंसक राज्य में किसी भी उपेक्षा के लिए कोई स्थान नहीं है। महत्वपूर्ण मामलों में अल्पमत के निर्णय को बहु मतके द्वारा ठुकराया नहीं जा सकता क्योंकि अन्तर्रात्मा की आवाज के स्थान पर बहु मत के नियम का कोई मूल्य ही नहीं है। उनके विचारों में बहु मत की तानाशाही के लिए कोई जगह नहीं है। गाँधी केश्वम के अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख की धारणा का भी विरोध करते हैं। वे अपने आध्यात्मिक विचार से सभी लोगों की भलाई चाहते हैं। वास्तविक लोकतन्त्र में यदि एक ही व्यक्ति का उत्तम विचार हो तो अनेकों की तुलना में उसका विशेष वजन है। परन्तु अल्पमत और बहु मतमें मतभेद हो जाने की स्थिति में उसको दूर करने के लिए गाँधी विचार-परिवर्तन और आत्मपीडन की सलाह देते है। अहिंसा और लोकतन्त्र आपस में इस तरह गुंथे हु एहैं कि इन्हें अलग करना सम्भव नहीं है। दोनों ही मानव के कल्याण के लिए आवश्यक है। गाँधी के समस्त दर्शन का प्रमुख लक्ष्य मानव का कल्याण करना है। वे व्यक्ति के व्यक्तित्व का समग्र विकास करना चाहते है। "व्यक्ति का व्यक्तित्व मानवता की पवित्र धरोहर है। उसके साथ किसी भी प्रकार का खिलवाड़ जनतन्त्र-विरोधी है। यह कोई संकीर्ण व्यक्तिवाद नहीं है। जिसमें स्वार्थ के स्थान पर सेवा, पृथकत्व के बदले भ्रातृत्व एवं भोग के स्थान पर त्याग का विचार आता है । इसीलिए जनतन्त्र एवं अहिंसा जीवन के व्यक्तित्व मूल्य ही नहीं है, वे नवीन समाज धर्म के आचार है। उस साम्य- भावना को ही हम राजनीति में राज्य और समाजनीति में अहिंसा कहते है। गाँधी व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास करने के लिए उसे शिक्षित एवं प्रशिक्षित करना चाहते हैं। गाँधी व्यक्ति के अन्दर के बाहर के समस्त डरो को निकाल कर उसे निर्भय बनाना चाहते हैं, जिससे व्यक्ति अपनी बात को निर्भयतापूर्वक कह सके। व्यक्ति को अपने विचार व्यक्त करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। स्वतन्त्रता और समानता व भ्रातृत्व जनतन्त्र के आधार स्तम्भ है। "जनतन्त्र यदि विचार परिवर्तन और मत परिवर्तन की प्रक्रिया है तो इसके लिए मानव-विवेक पर आस्था रखनी होगी। इसीलिए मानवीय विवेक और मानवीय स्वतन्त्रता पर किये गये, प्रत्येक प्रहार अपने आप में जनतन्त्र की हत्या होगी।" "सच्चे जनतन्त्र में निर्भयता का होना आवश्यक है। उसी प्रकार सच्ची अहिंसा भी अभय भावना के बिना असम्भव है । जब तक हम मानव को अभाव, अन्याय और शोषण से मुक्ता नहीं कर सकेगें। निर्भयता एक दिवास्वप्न बनकर रह जायेगी"। सच्चे जनतन्त्र में समाज का निर्माण एवं समाज का शासन समन्वय और सहकार की भावना पर आधारित होता है।" जनतन्त्र में विरोध के स्थान पर समन्वय एवं संघर्ष के स्थान पर सहकार और सन्तुलन के लिए निरन्तर चेष्टा होनी चाहिए। इसीलिए जनतांन्त्रित एवं अहिंसात्मक जीवन दर्शन, संघर्ष के स्थान पर समन्वय एवं विरोध के स्थान पर सहकार को अपना जीवन-मूल्य स्वीकार करता है। समन्वय जीवन की साधना है समाज की रीढ़ है और विश्व रचना का सुदृढ़ आधार है। समन्वय आज के युग की माँग है। गाँधी ने राज्य को एक साध्य की जगह एक साधन माना है। राज्य लोक कल्याण का साधन है। राज्य का

लक्ष्य सबको अधिकतम सुख प्रदान करना है, इसमें व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के अधिक से अधिक अवसर होंगे।

इस सम्बन्ध में गाँधी धूरो की नीति से प्रभावित होकर कहते हैं कि वह सरकार सर्वोत्तम है जो कम से कम शासन करती है। अहिंसक राज्य में व्यक्ति के नैतिक विकास के लिए अधिक सुअवसर मिलता है। इसमें आर्थिक व राजनीतिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण होगा। गाँधी हीगल की तरह राज्य को स्वयं साधन नहीं मानते हैं। गाँधी फासीवाद और नाजीवाद के विचारों को भी नहीं मानते हैं। "प्रत्येक वस्तु राज्य के अन्दर है। कुछ भी राज्य के बाहर नहीं है, और न कुछ राज्य के विरूद्ध ही।" गाँधी आदर्शवादियों व बहु लवादियो से भी सहमत नहीं है कि राज्य "समुदायों का समुदाय" है। गाँधी का राज्य एक साधन है, एक माध्यम है। जिसके माध्यम से सभी का अधिकतम कल्याण चाहते हैं, न कि केथम के राज्य की तरह "अधिकतम लोगों का अधिकतम हित" इसमें कुछ लोगों की उपेक्षा है। परन्तु गाँधी के राज्य में निम्न से निम्न व्यक्ति की भी उपेक्षा नहीं है। उसमें सभी के अधिकतम कल्याण के अधिकतम सुअवसर है।

गाँधी के अहिंसक राज्य में पुलिस, सेना आदि सभी होंगे परन्तु उनका जो नैतिकताविहीन स्वरूप है वह बदल जायेगा। वे ग्रीन की तरह और सकारात्मक उदारवाद की तरह यह मानते है कि राज्य उन बाधाओं का हटाने का काम करेगा जो व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में बाधक है। अत: सेना और पुलिस जनता के स्वामी न होकर जनता के सेवक होंगे। "अहिंसक राज्य में शान्ति सुरक्षा के लिए पुलिस, सेना, जेल और न्यायालय का प्रबन्ध रहेगा, परन्तु उसका स्वरूप बदल जायेगा। पुलिस का संगठन अहिंसक स्वयं सेवकों के द्वारा होगा जो अपने को जन सेवक समझेंगे। जनता से उन्हें स्वाभाविक रूप से सहयोग मिलेगा। यद्यपि उनके पास अस्त्र रहेंगे परन्तु प्रयोग वे बहु त कम करेंगे। इनका मुख्य कार्य डकैतों और लुटेरों से रक्षा करना होगा।

गाँधी 1946 में अहिंसक राज्य में सेना की आवश्यकता बताते हु ए कहा था- "सच्चे जनतन्त्र में सेना की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। सेना पर निर्भर रहने वाला जनतन्त्र नाम-मात्र का ही जनतन्त्र बनकर रह जायेगा। सेना-शक्ति मस्तिष्क के स्वतन्त्र विकास में बाधक होती है"। वह मनुष्य की आत्मा का विनाश करती है।" गाँधी विदेशी आक्रमण के समय में सेना के प्रयोग की अनुमति नहीं देते हैं। इनके अनुसार "प्रत्येक नागरिक और गाँव में इतनी क्षमता होनी चाहिए। जो विश्व के विरूद्ध अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा कर सके।" अत: अहिंसक राज्य में सेना और पुलिस की आवश्यकता नहीं रहेगी।

7.5 विकेन्द्रीकृत लोकतंत्र (ग्राम-स्वराज्य)

गाँधी अहिंसक राज्य में राजनीतिक शक्ति, राजनीतिक सत्ता का अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण करने की बात करते है। इसके लिए गाँधी जी के ग्राम-स्वराज्य, पंचायतीराज, व्यक्ति की स्वतन्त्रता आदि सही दिशा में सही कदम है, जबकि मार्क्स की तानाशाही और व्यक्ति की स्वतन्त्रता का अपहरण- गलत दिशा में गलत कदम है। शायद मार्क्स गाँधी की तरह मनुष्य की अच्छाई में विश्वास नहीं करता है। इसलिए वह व्यक्ति की सर्वोच्चता में विश्वास नहीं करता है।

गाँधी व्यक्ति की सर्वोच्चता में विश्वास करते हैं। ''गाँधी राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्थाओं के केन्द्रीकरण को शोषण का मूल कारण मानते है। इसमें जनता को अपनी भावनाओं का विकास करने के सुअवसर नहीं मिल पाते हैं। अत: सत्ता का केन्द्रीकरण हिंसा है।'' अब सत्ता का केन्द्रीकरण और अहिंसक समाज की संरचना से संगति नहीं बैठ पाती है। अत: केन्द्रीकरण और अहिंसक समाज परस्पर विरोधी हैं। केन्द्रीकरण हिंसा का प्रतीक है। गाँधी अपने अहिंसक राज्य की स्थापना के लिए सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक छ: आधार बताये हैं।

1. असहमति की जगह (सत्याग्रह)
2. ग्रामीण उद्योगों का विकास (ग्रामोद्योग)
3. हाथ के काम द्वारा प्राथमिक शिक्षा (नई तालीम)
4. अस्पृश्यता का निवारण
5. साम्प्रदायिक सद्भाव
6. श्रमिक अहिंसक संगठन

गाँधीजी की मान्यता है कि रचनात्मक कार्यक्रमों के द्वारा अहिंसक राज्य का निर्माण किया जा सकता है। उनके अनुसार सच्चे प्रजातन्त्र में सिद्धान्त और व्यवहार दोनों में ही वास्तविक सत्ता जनता के हाथों में होनी चाहिए। ''वे इस बात के पक्षधर है कि ''रिफरेन्डम'' किसी प्रस्ताव पर जनमत लेना, ''इनीशियोटिय -जनता का किसी बात में पहल करना तथा ''रिकाल" - जनता द्वारा किसी निर्वाचित सदस्य का वापस बुलाये जाने की सत्ता जनता के हाथों में रहनी चाहिए। जिससे मतदाताओं की आवश्यक संख्या की मांग पर कोई विशिष्ट बिल प्रस्तुत किया जा सके और उस पर राष्ट्र की जनता का मत लिया जा सके और कोई भी चुना हुआ प्रतिनिधि मतदाताओं द्वारा वापस बुलाया जा सके''। गाँधी ग्राम स्वराज्य को ऐसा पूर्ण प्रजातन्त्र बनाना चाहते हैं जो अपने आप में पूर्ण हो, स्वावलम्बी हो, जो अपनी जरूरतों के लिए किसी दूसरे पर निर्भर नहीं रहता है, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं करें। इस तरह हर एक गाँव का पहला काम यह होगा कि वह अपनी जरूरत का अनाज व कपड़ों के लिए कपास खुद पैदा कर ले। इसके लिए प्रत्येक गांव को राजनीतिक इकाई बनाना चाहते हैं। गाँधी कहते हैं, ''शक्ति का केन्द्र अभी नई दिल्ली या कलकत्ता या बम्बई जैसे बड़े शहरों में है इसे सात लाख गाँवों में बांट दिया जाना चाहिए। गाँव को राजनीतिक जीवन की इकाई होने के कारण शक्ति का बहाव नीचे से ऊपर की तरफ होगा। 1942 में गाँधीजी ने लुई फिसर से बात करते हुएकहा कि ''गाँव अपने जिले के प्रतिनिधियों का निर्वाचन करेंगे और जिला प्रशासन अपने प्रान्त के प्रशासक को नियुक्त करेगा और प्रान्त प्रशासक अपने एक राष्ट्रपति का निर्वाचन करेगा जो कि देश क प्रमुख होगा।''

इस व्यवस्था में उत्कृष्ट नैतिकता नागरिकों के व्यवहार व विचारों को प्रेरित करेगी। धर्म से निर्दिष्ट होने के कारण प्रत्येक नागरिक अपने-अधिकारों से अधिक, अपने सामाजिक दायित्वों को महत्व प्रदान करेगा। गाँधीजी ने कहा ''यह समाज एक के भीतर एक वृत्तों का एक समूह होगा, और सबसे भीतर के वृत के केन्द्र में व्यक्ति रहेगा, जो अपने निकटवर्ती वृत अर्थात् ग्राम के हित में त्याग करने के लिये तैयार रहेगा, यह ग्राम अपने निकटस्थ मृत अर्थात् कुछ ग्रामों के समूह के लिये

त्याग करने को तैयार रहेगा और अंत में इसमें अन्तर्व्याप्त लोक कल्याण की भावना ऐसे मनुष्यों की विराट समष्टि में विलीन हो जायेगी जो अहंकारी नहीं, अपितु विनीत होगे, और उसे विराट वृत की गरिमा को अनुभव करेंगे जिसके वे स्वयं भी अनिवार्य घटक हैं।'' इस व्यवस्था में सबसे बड़ा मृत, अपने भीतर के छोटे वृत्तों को कुचलकर शक्ति प्राप्त नहीं करेगा, अपितु वह रचयं समस्त वृत्तों को शक्ति प्रदान करेगा और स्वयं अपनी शक्ति भी उन छोटे वृत्तों से ही प्रापा करेगा।

इस प्रकार गाँवों से राज्य को शक्ति मिलेगी। वे उत्पादन और वितरण के साधनों का भी विकेन्द्रीकरण करना चाहते हैं क्योंकि इनके केन्द्रीकरण हो जाने पर शोषण और हिंसा होने लगती है। विकेन्द्रीकरण से मशीनों का प्रयोग भी नियमित हो जायेगा। स्वार्थ के लिए मशीनों के अनियमित प्रयोग के फलस्वरूप बहुतसे मनुष्यों का जीवन नीरस और श्रम साध्य बन गया और समाज में शोषण हो लगा। गाँधी समाज में शोषण और बेरोजगारी बढ़ाने वाली मशीनों के विरूद्ध हैं। उन्होंने कहा है कि ''हमारा ध्येय लोगों को सुखी बनाना है और इसके साथ-साथ उनकी सम्पूर्ण बौद्धिक व नैतिक उन्नति भी करना है। नैतिक उन्नति से मेरा यहाँ तात्पर्य आध्यात्मिक उन्नति से है। यह ध्येय विकेन्द्रीकरण से ही हो सकता है।'' आर्थिक विकेन्द्रीकरण का अर्थ बड़े उद्योगों के स्थान पर कुटीर एवं लघु उद्योग धन्धों की स्थापना करना है जिसमें उत्पादन के धन्धे उत्पादित वस्तुओं का स्वामी स्वयं श्रमिक होता है। वे आर्थिक क्षेत्र में सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों को प्रतिष्ठित करना चाहते है। जिसमें न कोई शोषक होगा न कोई शोषित होगा, न पूंजीवादी व्यवस्था होगी, न जमींदारी, इसमें उत्पादन लाभ के स्थान सामाजिक आवश्यकता के आधार पर होगा। गाँधीजी बहुतबड़े उत्पादन की जगह जनता के द्वारा उत्पादन करना चाहते है। Production by Mass instead of Mass production.इससे यन्त्रों का प्रयोग मानव श्रम को बेकार करने के लिए नहीं बल्कि मानव को कुशल बनाने के लिए किया जायेगा। गाँधीजी की युक्ति से स्पष्ट है कि “राज्य के अन्तर्गत अनेक प्रकार के स्वाधीन संगठन होंगे परन्तु उनमें से कोई बड़ा या छोटा कहलाने लायक नहीं रहेंगे। सभी बराबर होंगे । व्यक्ति और व्यक्ति का, गाँव और गाँव का, तथा सभी संस्थाओं का आपस में समानता का सम्बन्ध रहेगा, वे एक दूसरे से स्वतन्त्र रहेंगे। इस ग्राम स्वराज्य में श्रम और पूँजी के बीच विवादों, साम्प्रदायिक दुर्भावनाओं और वर्गभेद के लिये कोई स्थान नहीं होगा क्योंकि विकेन्द्रीकरण द्वारा उत्पादन की प्रक्रिया को श्रम-आधारित बनाकर, आर्थिक असमानता को समाप्त कर दिया जायेगा। अहिंसा और प्रेम के आदर्श, व्यक्तियों के मन में साम्प्रदायिक वैमनस्य के लिये कोई स्थान ही नहीं छोड़ेंगे। अत: स्पष्ट है कि गाँधीजी के अहिंसक राज्य का संगठन स्वावलम्बी, स्वशासित और सत्याग्राही गाँवों के आधार पर होगा। गाँधी की इस प्रकार की विकेन्द्रित व्यवस्था का समर्थन पश्चिम के राजनीतिक बहुलवादियों के द्वारा भी मिलता है। सी.ई.एम. जोड, जूलियन हक्सले, हेरोल्ड लास्की और कोल जैसे आधुनिक राजनीतिक चिन्तकों ने भी स्वाधीन संस्थाओं की स्वायतता और व्यक्ति के नैतिक पक्ष पर बल दिया है। राज्य की केन्द्रित शक्ति का इन विचारकों ने जोरदार विरोध किया है। लास्की के अनुसार राज्य का स्वरूप समष्टि का नहीं, व्यष्टि का है। जिसमें छोटी-छोटी संस्थाऐं अन्य संस्थाओं के समकक्ष होती है । राज्य की सभी संस्थाऐं उसकी इकाईयाँ है जो राज्य से किसी भी अर्थ में सार रूप में भिन्न नहीं

है। अत: स्पष्ट है कि राज्य जनता की संस्था है। उसमें निरपेक्ष शक्ति नहीं हो सकती है। जिसमें मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समानता सहिष्णुता, त्याग, आत्मनिर्भरता और शुद्धता है। इसीलिए गाँधीजी के लिए सच्चा लोकतन्त्र वह है जहाँ शक्ति का संचालन जनता के द्वारा होता है।

7.6 राम राज्य की अवधारणा

गाँधी का रामराज्य सत्य, अहिंसा और नीति परायणता पर आधारित है। यह पृथ्वी पर ईश्वर का राज्य है, धर्म-राज्य है इसमें सम्प्रभुता "शुद्ध नैतिक शक्ति", जनता की नैतिक शक्ति पर आधारित है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने विकास के अधिक से अधिक अवसर होंगे। इसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने भीतर की आत्मा की अन्त: आवाज का अनुसरण करना है। यह प्रेम की भावना, सहयोग की भावना, परस्पर सद्भाव, सहयोग, मानव की प्रतिष्ठा और आर्थिक और राजनीतिक विकेन्द्रीकरण पर आधारित है। रामराज्य में मार्क्स के समान राज्यविहीन, वर्ग विहीन, शोषणविहीन, आर्थिक समानता पर आधारित व्यवस्था है। "रामराज्य से मेरा मतलब हिन्दु राज्य से नहीं है या धर्म राज्य नहीं है। मेरा मतलब राम के राज्य ईश्वर के राज्य से है। मेरे लिए राम और रहीम एक ही है। सत्य और सच्चाई का ईश्वर एक ही है। रामराज्य का जो प्राचीन आदर्श है वह वास्तव में निःसन्देह सच्चे अर्थों में लोकतन्त्र है।"

"रामराज्य सच्चा प्रजातन्त्र है इसमें किसी प्रकार की लिंग, धर्म, जाति, प्रदेश, रंग, सम्पत्ति की अनुचित असमानताएं नहीं है। इसमें राजनीतिक संस्थाऐं और भूमि जनता की है। इसमें न्याय, सस्ता और शीघ्र है। इसमें व्यक्ति भाषण, समुदाय, धर्म, व्यवसाय, प्रेस इत्यादि की सभी स्वतन्त्रताओं का उपयोग करता है। इसमें स्व: नियन्त्रित नैतिक प्रतिबन्ध है। इस प्रकार राज्य सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों पर आधारित है। इसमें ग्राम और ग्राम समुदाय स्वशासन, स्वावलम्बी और अपने आप में पूर्ण है । डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार समाज की समय यात्रा के तीन भाग रहे है जिनमें जंगल के नियम का शासन, कानून का शासन, और प्रेम का शासन रहे है। "समाज की प्रगति की तीन अवस्थाऐं रही है। जिनमें पहला जंगल का नियम जिसमें प्रत्येक व्यक्ति हिंसा और स्वार्थ की भावना से प्रेरित था। दूसरी अवस्था में जहाँ कानून का शासन था जिसमें निष्पक्ष न्याय के साथ न्यायालय, पुलिस, जेल थी। तीसरी अवस्था में जिसमें अहिंसा और निःस्वार्थ की भावना से प्रेरित थे। जहाँ प्रेम और कानून एक ही था, जिसमें प्रेम का शासन था।" जो तीसरी समाज की अवस्था है, जो प्रेम ओर अहिंसा के सिद्धान्तों पर आधारित है। यह एक न्यायपूर्ण आदर्श समाज है। इस रामराज्य में प्रत्येक नागरिक प्रेम और निःस्वार्थ, त्याग और कर्तव्य की भावना से प्रेरित है। इसमें राज्य की दमन की शक्ति नहीं है, यह नागरिकों की स्वैच्छिक सद् चरित्रता व नैतिकता पर आधारित है। राज्य गांधी के लिए अपने आप में साध्य नहीं है, राज्य व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को, प्रत्येक भाग को अच्छा बनाना, विकास करने का एक साधन है।

रामराज्य की संकल्पना-सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों पर आधारित है। इसमें जैसे साधन होंगे वैसे ही साध्य होंगे। कभी भी बुरे साधनों से अच्छे साध्य की प्राप्ति सम्भव नहीं है।

गाँधी साधन-साध्य की औचित्यता सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। रामराज्य प्रेम के नियमों से शासित होता है। गाँधी के अनुसार, "प्रेम ही वह कानून है जिससे मानव समुदाय शासित होता है। यदि हिंसा और घृणा का साम्राज्य होता है तो हम कभी के लुप्त हो गये होते और फिर भी दुख की बात यह है कि सभ्य कहे जाने वाले पुरूष और राष्ट्र अपना आचरण ऐसे रखते हैं कि मानो समाज का आधार हिंसा है। प्रेम ही जीवन का श्रेष्ठ और एकमात्र कानून है।" उन्होंने कहा है कि "गन्दे साधनों से मिलने वाली चीज भी गंदी ही होगी, कोई असत्य से सत्य को नहीं पा सकता। सत्य को पाने के लिए सत्याचरण करना ही होगा। शायद इसीलिए जो उन्होंने "इण्डिया ऑफ माई ड्रीम" में लिखा है कि "मैं वैसे भारत के लिए कार्य करूंगा जिसमें गरीब से गरीब यह अनुभव कर सकेगा कि यह उसका देश है, जिसके निर्माण में उसकी आवाज का मोल है, वैसा भारत जिसे कोई उच्च और निम्न वर्ग में नहीं बांटा जायेगा, सभी जाति के लोग पूर्ण सहयोग के साथ रहेंगे, जहाँ छूआछूत और मद्यपान का अभाव होगा और स्त्रियाँ-पुरूष के बराबर हो, अपने अधिकारों को उपभोग करेगी। अत: उसमें न तो किसी का शोषण करना है और न शोषित होना है। इसीलिए उसमें सभी के हितों की चिन्ता करनी है।"

"गाँधी के अनुसार स्वतन्त्रता व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक है गुलाम या गो की तरह हाँकी जाने वाली प्रजा राम राज्य की रीढ़ नहीं बन सकती। गुलाम ऐसे वातावरण में काम करता है, जिसमें स्वत: विचार और चरित्र नष्ट हो जाता है। इसीलिए गाँधी ने व्यक्ति की पूर्ण स्वतन्त्रता को उन सामाजिक प्रतिबन्धों के साथ जो दूसरे व्यक्तियों की स्वतन्त्रता और कल्याण के लिए आवश्यक हो, अपना लक्ष्य बनाया है।"

गाँधी का लक्ष्य एक ऐसा समाज बनाना है जिसमें कोई अमीर, गरीब, ऊँचा, नीचा का वर्ग नहीं होगा वहाँ अस्पृश्यता नहीं होगी और वहाँ सभी धर्मो के प्रति समान आदर रखा जायेगा। गाँधी का रामराज्य का आदर्श विचार भारत में राम के राज्य के समान राज्य की स्थापना करना था । राजनीतिक संस्था को इस रामराज्य के आदर्श को साकार करने की दिशा में कार्य करना चाहिए। इसीलिए सत्ता थोरो ने कहा था कि जो सबसे कम शासन करे वही उत्तम सरकार है" यही गाँधी का विचार है। गाँधी के रामराज्य में राज्य की दण्डात्मक सत्ता का अन्त हो जायेगा और लोगों की नैतिक शक्ति और नैतिक सत्ता का राज्य होगा। कोई राज्य पूर्णरूप से अहिंसक नहीं हो सकता है। इसमें सभी लोग अपने धर्म का कर्तव्य समझकर पालन करेंगे। रामराज्य की स्थापना सत्ता के कुछ लोगों के हाथ में आने से नहीं, बल्कि समस्त जनता के हाथों में आने से होगी तथा साथ में सत्य, अहिंसा और नैतिकता के सिद्धान्तों के पालन करने से ही सम्भव हो सकती है। यह एक राज्य विहीन लोकतन्त्र होगा। इसमें सामाजिक और राजनीतिक जीवन इतना पूर्ण हो जायेगा, वह स्वशामित स्व: नियन्त्रित और स्वःनियमित होगा।

7.7 राजनीतिक का आध्यात्मीकरण

गाँधी का राजनीतिक समस्याओं के प्रति धार्मिक और नैतिक दृष्टिकोण है। गाँधी के अनुसार राजनीति को धर्म, से आध्यात्मिकता से अलग नहीं किया जा सकता। गाँधी ने कहा है कि

जो लोग धर्म को राजनीति से अलग करने की बात करते है, वास्तव में वे धर्म का अर्थ नही जानते। वे अपने कर्तव्य को ही नहीं जानते। ''धर्म को प्रत्येक व्यक्ति को अपने कार्यो में अपनाना चाहिए"। यहाँ पर धर्म का अर्थ सेक्टरवाद पृथकवाद नहीं है।

सिद्धान्त रूप में गाँधी जी की मान्यता है कि, ''सभी धर्म समान नैतिक नियमों पर खड़े हैं।'' किन्तु व्यवहार में वे किसी भी एक संगठित धर्म को स्वयं में पूर्ण नहीं मानते। इसके अलावा वे सार्वजनिक एवं राजनीतिक जीवन में सभी संगठित धर्मो की नकारात्मक भूमिका से भी भली-भाँति परिचित थे। अत: गाँधी जी ने संगठित धर्म एवं राज्य की घनिष्ठता का विरोध किया है और किसी धर्म विशेष से सम्बन्धित 'धर्मराज्य' की धारणा से पूर्ण असहमति प्रकट की है । इस सम्बन्ध में गाँधी जी का यह कथन अत्यन्त महत्वपूर्ण है, ''अगर मैं डिक्टेटर होऊं, तो धर्म (मजहब) तथा राज्य को एक-दूसरे से अलग रखूँ"। यद्यपि गाँधी जी ने धर्मराज्य की धारणा का विरोध किया है, किन्तु उन्होंने पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रस्तुत धर्म-निरपेक्ष राज्य की धारणा रवे भी पूर्ण असहमति प्रकट की है। पाश्चात्य धर्म-निरपेक्ष राज्य की धारणा वास्तव में लौकिक राज्य की धारणा है। यह राज्य को आध्यात्मिक नैतिक मूल्यों से मुक्त रखने का समर्थन करती है। इस प्रकार यह राजनीति के क्षेत्र में साध्य की पवित्रता को तो स्वीकारती है, किन्तु साधन की पवित्रता की उपेक्षा करती है। यह उल्लेखनीय है कि गाँधी जी राजनीति के आध्यात्मीकरण एवं नैतिकीकरण की धारणा के समर्थक हैं और इसलिए वे धर्म-निरपेक्ष राज्य, अर्थात् लौकिक राज्य के विचार से असहमत है। गाँधी जी ने धर्मराज्य एवं लौकिक राजय (धर्म निरपेक्ष राज्य) की धारणाओं के स्थान पर 'सर्वधर्मसमभाव-राज्य' के विचार का समर्थन किया है, जो अपनी प्रकृति से आध्यात्मिक मूल्यों से सम्पन्न राज्य है। सर्वधर्मसमभाव- राज्य की गाँधीवादी अवधारणा का सरल अर्थ है कि राज्य को किसी विशिष्ट संगठित धर्म (हिन्दू इस्लाम, ईसाई आदि) को नहीं अपनाना चाहिए, अपितु राज्य को सभी धर्मों के प्रति समान आस्था रखनी चाहिए। राज्य को सभी धर्मों में निहित शाश्वत नैतिक नियमो के अनुसार अपनी नीतियों को नैतिक आधार प्रदान करना चाहिए।

गाँधी ने नीति, धर्म और मानवता को राजनीति मे प्रमुख प्राथमिकता दी है, राज्य व राजनीति को नहीं। गाँधीजी का कथन है, ''मेरे लिए धर्म-विहीन राजनीति का कोई अस्तित्व नहीं है। राजनीति धर्म के आधीन है। धर्म से अलग हु यी राजनीति मृत्यु-जाल है, क्योंकि वह आत्मा को मारती है। गाँधी जी का निष्कर्ष है कि धर्म की नैतिक शक्ति के साथ राजनीति - संयोग होने पर ही मानव-जाति की सार्वजनिक समस्याओं का नैतिक हल प्राप्त किया जा सकता है। गाँधी जी ने धर्म व राजनीति की घनिष्ठता, अर्थात् राजनीति को धर्म के आधीन रखने का आग्रह किया है। इस प्रकार उन्होंने अग्रलिखित तथ्यों पर बल दिया है- (1) राजनीतिक का संचालन नैतिक मूल्यों के आधार पर किया जाना चाहिए, अर्थात् राजनीति का आध्यात्मीकरण किया जाना चाहिए। (2) साध्य की पवित्रता के साथ ही साधन की पवित्रता को भी स्वीकारा जाना चाहिए, अर्थात् नैतिकता का दोहरा मापदण्ड नहीं स्वीकारा जाना चाहिए। वे धर्म और राजनीति को एक ही सिक्के के दो पहलू मानते हैं। यहाँ धर्म रवे मतलब किसी धर्म पथ से नहीं है। इसका मतलब है ब्रह्मांड का व्यवस्थित नैतिक नियमन है। यह धर्म हिन्दु धर्म, इस्लाम, ईसाई धर्म आदि की सीमाओं से परे है। यह उनका

स्थान नहीं लेता, बल्कि उनके बीच तालमेल स्थापित करता है और उन्हें वास्तविकता देता है। धर्म के बिना राजनीति एक शव के समान है। जो दफनाने योग्य है। धर्म और राजनीति दोनों का एक ही कार्य है मानवता का कल्याण करना। सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन लाना है। समाज में से अन्याय, अत्याचार, शोषण को समाप्त करना है। धर्म के बिना मानव सुखी नहीं बन सकता है। दोनों ही मानव की संस्था है। गाँधी राजनीति को मारगेन्धों की तरह शक्ति के लिए संघर्ष नहीं मानता जिसमें शक्ति का बढ़ाना, शक्ति को बनाये रखना, शक्ति का प्रदर्शन करना। राजनीति का तात्कालिक उद्देश्य कुछ भी हो परन्तु अन्तिम उद्देश्य शक्ति प्राप्त करना है। गाँधीजी राजनीति को ऐसा नहीं मानते हैं। वे राजनीति को आम जनता की सेवा करने का साधन मानते हैं और अपने धर्म को जानने की बात करते है। “राजनीति गाँधी के लिए एक साधन मात्र है, जो उन्हें उनके उद्देश्य तक पहुंचातीहै।

गाँधी के सभी राजनीतिक कार्यो का उद्देश्य जनता का आर्थिक, सामाजिक, नैतिक उत्थान करना है। इसीलिए राजनीति की समस्या मूलत: एक नैतिक समस्या या मूल्यों की समस्या है। जिसे आर्नल्ड ब्रेक्स ने वैज्ञानिक मूल्यात्मक सापेक्षवाद कहा है। राजनीति को नैतिकता से अलग करने पर राजनीति अर्थहीन हो जाती है। जिस प्रकार तथ्यों को मूल्यों से अलग करने पर, जिस मानव समाज के लिए अध्ययन किया जा रहा है, वे अर्थहीन हो जाता है क्योंकि उसमें मानव मूल्यों को तो अलग रखा गया है। राजनीति में अगर मानव मूल्यों को शामिल किया जाता है तभी वह मानवता के लिए कार्य कर सकती है अन्यथा वह कुराजनीति है, दण्डनीति है। वह राजनीति नहीं है। “सचमुच यदि हम राजनीति से ''नीति'' को दूर कर देंगे, तो फिर हम अवसरवाद तथा सुविधावाद के दुष्च्क्र से नहीं निकल पायेंगे और सत्ता प्राप्ति के लिए अत्यन्त अशोभनीय होड़ और उससे उत्पन्न संघर्ष और कलह निश्चय ही फूटेगा। इसीलिए राजनीति का कायाकल्प आज परमावश्यक हो गया है। प्रो. सोरोकिन ने ठीक ही कहा है कि राजनीति का भविष्य मानवता के भविष्य के साथ जुड़ा हु आ है इसीलिए भी राजनीति का आध्यात्मीकरण आवश्यक है। ''आदर्श से आदर्श राजनीतिक व्यवस्था एवं संविधान तभी कारगर हो सकते हैं जब उसको चलाने वाले लोग नैतिक और आध्यात्मिक गुणों से सम्पन्न हो। कोई भी साध्य-साधन तभी उचित है जब वे मानव कल्याण में सहायक हैं। आज के परमाणु युग में जिसमें विश्व के सभी देश परमाणु शक्ति को प्राप्त कर रहे हैं, प्रदर्शन कर रहे हैं और आगे बढ़ा रहे हैं। राजनीति के आध्यात्मीकरण के अतिरिक्त हमारे पास कोई दूसरा उपाय नहीं है, अन्यथा मानवता के सम्पूर्ण विनाश का ही खतरा हो सकता है। ''शायद गांधी ने इसी भावना से कहा कि परमाणु युग में धर्म विहीन राजनीति की कल्पना ही भयावह है।'' गांधी के राजनीति में धर्म को शामिल करने, मिलाने का अर्थ व उद्देश्य कोई धार्मिक राजनीति नहीं बनाना था बल्कि राजनीति में सत्य और अहिंसा का पालन करना है।

आज जो सत्ता अधिग्रहण की राजनीति है, वह शक्ति की राजनीति है। स्वार्थपरिता की राजनीति है। हमें राजनीति में बदलाव लाना है और एक समतावादी जीवन का मार्ग प्रशस्त होगा। आज की राजनीति में राज्य सत्ता का प्रमुख स्थान है और ''मानव'' का गौण स्थान है। इसीलिए आज की राजनीति का मापदन्ड “व्यक्ति'' नहीं बल्कि राज्य की सत्ता बन गयी है। इस प्रकार

स्पष्ट है कि राजनीति का नैतिक और आध्यात्मिक गुणों, मूल्यों का समामिलन -तीसरी शक्ति लोकनीति का आधार है। "इस तरह अहिंसा केवल व्यक्तिगत सद्‌गुण एवं सदाचार का चीज नहीं है यह एक सामाजिक एवं राष्ट्रीय सद्‌गुण है। मानव समाज मूलत: अहिंसा पर ही आधारित है और अहिंसा से ही नियमित और संयमित होता है।

"हिंसा की राजनीति में नाश के बीज भी इसी में छिपे है। इसीलिए आज राजनीति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में निःशस्त्रीकरण एवं शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व एक अनिवार्यता बन चुकी है। गाँधी की राजनीति में असत्य, छल, कपट और हिंसा, धोखाधड़ी इत्यादि का कोई स्थान नहीं है। उसमें सत्य, अहिंसा, प्रेम का प्रवाह है। उनकी राजनीति मानव प्रेम तथा मानव सेवा पर आधारित है।

गाँधी मानव मात्र की सेवा को मोक्ष का साधन मानते हैं। उनकी धर्म की संकल्पना एक निःस्वार्थ कर्मयोगी एक् एक सच्चाई की संकल्पना है। गाँधी मानव के सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में परिवर्तन लाना चाहते हैं, क्योंकि उनका विश्वास है कि जब तक व्यक्ति स्वयं का आचरण शुद्ध नहीं होता तब तक समाज में कोई अच्छा परिवर्तन नहीं हो सकता। अन्त में उन्होंने कहा है- "मानव की सम्पूर्ण सेवा और सम्पूर्ण जीवन में एकता है। आप जीवन में सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक कार्यो को एक वाटर टाइट कमरों में बन्द नहीं कर सकते। मैं नहीं जानता कि मानव सेवा से अलग कोई धर्म है।

7.8. राष्ट्रवाद व अंतर्राष्ट्रवाद

गाँधीजी के अनुसार राष्ट्रीयता की भावना अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना की पूर्वशर्त है; अत: उनके लिये राष्ट्रीयता व अन्तर्राष्ट्रीयता में कोई टकराव हो ही नहीं सकता। उनके अनुसार अन्तर्राष्ट्रीयता की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति मानव मात्र के प्रति प्रेम के रूप में होती हैं। उनके शब्दों में, "यदि हम अपनी अस्मिता, अर्थात् राष्ट्रीयता को खो दें तो हम अन्तर्राष्ट्रीय हो ही नहीं सकते। उनका मत है कि स्वदेश के प्रति प्रेम मानव मात्र के प्रति प्रेम का विरोधी नहीं' होता, अपितु वस्तुत: स्वदेश-प्रेम ही अन्तत: सार्वभौम प्रेम के उच्चतम शिखर तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त करता है। गाँधीजी की राष्ट्रीयता में संकीर्णता के लिए कोई स्थान नहीं है। उन्होंने कहा, "मैं ऐसी देश-भक्ति में विश्वास नहीं करता जो स्वयं अपने देश की अलावा अन्य देशों के कल्याण की भावना को समाहित नहीं करती हो।" राष्ट्रीयता की धारणा में, अपने देश को अन्य देशों से श्रेष्ठ समझने की प्रवृत्ति या अपने राष्ट्र के हितों की पूर्ति के लिए अन्य राष्ट्रों को क्षति पहुंचानेकी लालसा के लिए कोई स्थान नहीं है। इसी कारण, उनकी राष्ट्रीयता उन्हें भारत की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा देती थी; किन्तु साथ ही यह संदेश भी देती थी कि भारत की स्वतंत्रता का उपयोग अन्य राष्ट्रों की स्वतंत्रता के लिये हो। उन्होंने कहा, "हम सभी एक ही रंग में रंगे हुएहै।, हम एक ही विशाल मानव परिवार के सदस्य हैं। मैं मनुष्यों के मध्य किसी भी भेद का विरोध करता हूँ।मैं भारतीयों के लिए अन्य राष्ट्रों की तुलना में किसी श्रेष्ठता का दावा नहीं करता। मैं भारत के अस्तित्व व उसकी

स्वतंत्रता को तभी कायम रख सकता हूँ जबकि मैं केवल उसके प्रति नहीं, अपितु समस्त मानव समुदाय के प्रति सद्भावना रखूं।"

उनकी स्पष्ट मान्यता है कि राष्ट्रीयता के विचार के साथ सत्य व अहिंसा के आदर्शों का संयोग, राष्ट्रीयता व अन्तर्राष्ट्रीयता, मानवता के प्रति प्रेम को चरितार्थ करने के क्रमिक माध्यम है। "हम राष्ट्रवादी हो सकते हैं, हम अनन्य देशभक्त हो सकते हैं, किन्तु जैसे ही हम सत्य व अहिंसा के साधनों को प्रयुक्त करते हैं, हमारी देशभक्ति अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना में इस प्रकार रूपान्तरित हो जाती है कि हमारी कल्याण-कामना की परिधि में ईश्वर की छोटी से छोटी रचना भी समाविष्ट हो जाए। एक नैतिक साधन के रूप में राष्ट्रीय समुदाय की तुलना में अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय श्रेष्ठ होता है। अत: यह उचित होगा कि आवश्यकता होने पर राष्ट्रीय समुदाय अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के पक्ष में त्याग करने के लिए तैयार रहे। राष्ट्रवाद की अवधारणा में यह भाव निहित है कि जहाँ निम्न समुदायों को राष्ट्र के पक्ष में त्याग के लिए तत्पर रहना चाहिए, वहाँ ही स्वयं राष्ट्र को भी अपने से उच्च समुदाय, अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के पक्ष में त्याग के लिए के लिए तैयार रहना चाहिए। गाँधी जी के अनुसार, "जिस प्रकार स्वेदश प्रेम का धर्म हमें आज यह सिखाता है कि व्यक्ति को जिले के लिए, जिले को प्रान्त के लिए तथा प्राप्त को देश के लिए प्राण देने को तैयार रहना चाहिए, उसी प्रकार एक देश को भी जरूरत पड़ने पर विश्व के हित में मिटने को तैयार रहना चाहिए।" इस दृष्टि से सम्पूर्ण मानव-समाज के संदर्भ में भारत की स्वतंत्रता का इसलिए समर्थन करता हूँ कि अन्य देश मेरे स्वतंत्र देश से कुछ सीख सकें; मेरे देश के संसाधनों का इस्तेमाल मानवता के हित में किया जा सके- मेरे राष्ट्रीयता के विचार यह है कि मेरा देश मानवता को जीवित रखने के लिए मिट जाये।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि गाँधी जी ने राष्ट्रवाद को एक संकीर्ण विचार के रूप में नहीं अपनाया है। वे उग्र, सैनिकवादी आक्रामक, नस्लवादी अथवा साम्राज्यवादी राष्ट्रवाद की अवधारणा के पूर्ण विरोधी थे। उनके लिए राष्ट्रवाद का अर्थ केवल राष्ट्रीय स्तर पर मानव-एकता की अनुभूतिनहीं है, अपितु इसमें अनिवार्य रूप से विश्व-स्तर पर भी मानव-एकता का भाव निहित है। उनके राष्ट्रवाद की अवधारणा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के भारतीय आदर्श पर आधारित है। गाँधी जी चाहते थे कि विश्व के राष्ट्र अपनी विभिन्नताओं एवं विशिष्टताओं की रक्षा करते हु एपरस्पर मिलकर एक विश्व-संघ की स्थापना करें। इस संघ के सदस्य राष्ट्रों के आपसी सस्कंध सद्भावपूर्ण होने चाहिए; उन्हें आपसी सहयोग एवं पारस्परिक निर्भरता के महत्त्व को स्वीकारना चाहिए और परस्पर सेना एवं शस्त्रों के प्रयोग पर पाबन्दी लगानी चाहिए। उन्होंने एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की धारणा को स्वीकारा है जिसमें राष्ट्रों के आपसी सम्बन्ध समता, न्याय, बन्धुत्व, शांति एवं मानवीय एकता के नैतिक मूल्यों के अनुरूप हों।

7.9 धर्म सम्बन्धी अवधारणा

धर्म गाँधी के आदर्श समाज की आधारशिला है। उनकी दृढ़ मान्यता है कि "धार्मिक चेतना एक सुदृढ़ सामाजिक और राजनीतिक संरचना का विश्वसनीय आधार हो सकती है।" गाँधीजी ने

धर्म के संकीर्ण अर्थ को स्वीकार नहीं किया। उनके अनुसार धर्म शाश्वत और सार्वभौम नैतिक नियमों का संग्रह है। उन्होंने कहा "मेरे मत में धर्म का अर्थ है- नैतिकता। मैं ऐसे किसी धर्म को नहीं मानता जो नैतिकता का विरोध करता हो या नैतिकता के परे कोई उपदेश देता हो। धर्म को वास्तव में नैतिकता को व्यवहार में घटित करने की पराकष्ठा है। "गाँधी ने धर्म की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, "धर्म हमारे सारे कार्यों में व्याप्त रहना चाहिए। यहाँ धर्म का अर्थ पंथ अथवा सम्प्रदाय नहीं है। इसका अर्थ है विश्व के व्यवस्थित नैतिक शासन में विश्वास।

गाँधी की धर्म की धारणा, प्राचीन भारतीय ग्रन्धों में प्रतिपादित धर्म की अवधारणा के अनुरूप है। भारतीय ग्रन्थों में धर्म को एक ऐसी सर्वोच्च विधि के रूप में चित्रित किया गया है जो व्यवस्था के मूल आधार है। उसमें नैतिक मूल्यों, मानवता के सार्वभौमिक और शाश्वत सिद्धान्तों तथा मानवीय आचरण के विवेकसम्मत नियमों को सम्मिलित किया गया है। सत्य और अहिंसा गाँधीजी के अनुसार धर्म के दो मूल तत्व हैं। उन्होंने कहा" धर्म हमें सबसे बढ़कर यह सिखाता है कि सभी आत्माओं का स्त्रोत एक है। व्यक्तियों के बीच भेद केवल क्षणिक हैं, और भ्रम मात्र है।"

गाँधी जी ने व्यक्त किया कि धर्म के प्रति विवेक सम्मत दृष्टिकोण का अर्थ होगा कि व्यक्ति सभी धर्मों की मूलभूत एकता को आत्मसात कर लेगा और यह स्वीकार कर लेगा कि सभी व्यक्ति एक ही ईश्वर की सन्तान हैं। चाहे उनके धार्मिक विश्वास कोई भी हों, उनके बीच कोई भेदभाव किया जाना उचित नहीं है। धर्म का यह पक्ष सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता और सद्भाव को अनिवार्य बना देगा और धार्मिक दृष्टिकोण से प्रेरित व्यक्ति के मन-मस्तिष्क में, किसी दूसरे धार्मिक मत के लिये घृणा या विद्वेष का कोई स्थान ही नहीं रहेगा। सारे धर्म एक ही बिन्दु की ओर ले जाने वाले अलग-अलग मार्ग हैं। अन्त में यदि हम एक ही लक्ष्य पहुंचतेहों, तो अलग-अलग मार्ग लेने से क्या हानि होने वाली है? सच पूछा जाय तो जितने ही मनुष्य हैं उतने ही धर्म हैं। धर्म के नाम पर विभिन्न धर्मावलम्बियों के मध्य वैमनस्य को गांधी जी ने सर्वथा अनुचित मानते हुए लिखा ईश्वर के लिए आत्माओं को जीतने की बात करना व्यर्थ है। क्या ईश्वर इतना लाचार और असहाय है कि वह अपने लिए आत्माओं को जीत नहीं सकता? प्रत्येक मनुष्य का धर्म उसकी अपनी व्यक्तिगत वस्तु है।"

एक बार डॉ. राधाकृष्णन ने धर्म के प्रति गाँधी के दृष्टिकोण के विषय में तीन स्पष्ट प्रश्न पूछे:

1. आपका धर्म क्या है?,
2. आप उसके प्रति क्यों प्रेरित हुए हैं?
3. धर्म का सामाजिक जीवन पर प्रभाव क्या है? इन प्रश्नों के उत्तर में गाँधी द्वारा की गई टिप्पणी में धर्म की प्रकृति और सामाजिक जीवन में उसके महत्व का मर्म समाविष्ट है। गाँधी जी ने स्पष्ट किया :-
    1. "मेरा धर्म हिन्दुत्व है, किन्तु मेरे लिये हिन्दुत्व मानवता का धर्म है, उसकी परिधि में उन सारे धर्मों के अच्छे सिद्धान्त सम्मिलित हैं, जिन्हें कि मैं जानता हूं।

2. मैं अपने धर्म के प्रति सत्य और अहिंसा अर्थात् व्यापकतम अर्थ में प्रेम के आदर्श से प्रेरित होकर आकृष्ट हु आहूँ।
3. इस धर्म का सामाजिक जीवन में व्यापक प्रभाव है; तथा इसे व्यक्ति के नित्य-प्रति के सामाजिक कार्यो में अनुभव किया जा सकता है। धर्म से प्रेरित व्यक्ति को दूसरों की सेवा के प्रति समर्पित होना चाहिये। सत्य का साक्षात्कार, तब तक संभव ही नहीं है जब तक व्यक्ति अन्य प्राणियों से अपने व्यक्तित्व का तादाम्य स्थापित कर, अन्ततः स्वयं को ईश्वर की सत्ता से एकाकार करने के लिये समर्पित नहीं कर दे। एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति के रूप में मैं सेवा से पलायन कर ही नहीं सकता। मेरा धर्म मुझे सिखाता है कि रोवा से अधिक प्रसन्नतादायक और कोई कार्य हो ही नहीं सकता।''

यह स्पष्ट है कि गाँधी जी के लिये धर्म ईश्वर के प्रति समर्पण का पर्याय है। उनका दृढ. विश्वास है कि ईश्वर के प्रति समर्पित व्यक्ति मानव मात्र के प्रति सेवा-भाव को ईश्वर की साधना का मार्ग बना लेगा। गाँधी जी ने कहा कि ''दरिद्र नारायण की सेवा ही ईश्वर की भक्ति का सबसे अच्छा मार्ग है।''

जब हिन्दू धर्म की परिभाषा के सन्दर्भ में गाँधी से पूछा गया तो उन्होंने कहा, “यद्यपि मैं एक सनातनी हिन्दू हूँ तो भी हिन्दू धर्म की व्याख्या नहीं कर सकता। एक सामान्य मनुष्य की तरह, जो धर्म का पंडित नहीं है, मैं यह कहा सकता हूँ कि हिन्दू धर्म सब धर्मों को सब तरह से आदर का पात्र समझता है। गांधी ने माना मेरे लिए यह विश्वास करना असम्भव है कि मैं केवल ईसाई होकर ही स्वर्ग को जा सकता हूँ तथा मोक्ष प्रापा कर सकता हूँ। मेरे लिए यह मानना भी उतना ही कठिन है कि ईसा ही भगवान के एक मात्र अवतरित पुत्र हैं।

गाँधी ने अन्तर्राष्ट्रीय बंधुत्व संघ के सम्मुख भाषण देते हु ए 1928 में कहा था कि ''सभी धर्म सच्चे हैं। सब धर्मों में कोई न कोई खराबी है। सभी धर्म मुझे उतने ही प्रिय हैं जितना मेरा हिन्दू धर्म। मैं अन्य मतों का भी उतना ही आदर करता हूँ जितना अपने मत का, अतः मेरे लिए धर्म परिवर्तन का विचार ही असम्भव है। उनका मत था कि अन्य व्यक्तियों के लिए हमारी प्रार्थना यह नहीं होनी चाहिए कि भगवान उन्हें वही प्रकाश दे जो मुझे दिया है, अपितु यह होनी चाहिए कि उन्हें वह प्रकाश और सत्य दो जो उसके श्रेष्ठम विकास के लिए आवश्यक है। उन्होंने कहा मेरा धर्म वह सब कुछ प्रदान करता है जो मेरे आत्मिक उत्थान के लिए आवश्यक है, क्योंकि वह मुझे उपासना करना सिखाता है। मैं यह भी प्रार्थना करता हूँ कि दूसरे लोग भी अपने धर्म में अपने व्यक्तित्व की चरम सीमा तक उन्नति करें जिससे एक ईसाई अच्छा ईसाई बन सके तथा एक मुसलमान अच्छा मुसलमान। मेरा विश्वास है कि परमात्मा एक दिन हमसे यह पूछेगा कि हम क्या हैं और क्या करते हैं, न कि वह नाम जो हमने अपने को और अपने कामों को दे रखा है।

धर्म गाँधी जी के अनुसार एक ऐसी शक्ति है जो व्यक्ति को ईश्वर से एकाकार हो जाने में सहायता करती है। धर्म की यह आस्था, मत-मतान्तरों और संकीर्ण विश्वासों की सीमाओं से परे व्यक्ति के दृष्टिकोण में उदारता और सहिष्णुता उत्पन्न कर देती है, चाहे वह स्वयं किसी भी सम्प्रदाय के प्रति आस्था रखता हो। गाँधी ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि उन्हें दुनिया के अन्य धर्मों की

तुलना में हिन्दू धर्म में दूसरे धर्म के प्रति सहिष्णुता और आदर का भाव तथा मानवीय मूल्यों के प्रति समर्पण सर्वाधिक है और इसी कारण उनकी हिन्दू धर्म में आस्था दृढ़ बनी रही। उन्होंने स्पष्ट किया कि हिन्दू धर्म की यह उदार प्रवृत्ति उन्हें प्रेरित करती थी कि वे दुनिया के सभी धर्मों के अच्छे सिद्धान्तों को ग्रहण करने के लिये तत्पर रहें। उनका मत था कि दूसरे धर्मों के प्रति घृणा और असहिष्णुता हिन्दू धर्म से असंगत है। उन्होंने कहा: ''मेरा हिन्दु धर्म सर्वव्यापी है। यह दूसरे धर्मों के प्रति विरोध का समर्थन नहीं करता। सभी धर्म एक दूसरे से जुड़े हुएहैं। कोई भी व्यक्ति प्रत्येक धर्म में अच्छे सिद्धान्त खोज सकता है। किसी एक धर्म को दूसरे धर्म से ऊँचा मानना, सन्तुलित धार्मिक दृष्टिकोण नहीं कहा जा सकता। वास्तव में सभी धर्म, शाश्वत सिद्धान्तों की दृष्टि से एक-दूसरे के पूरकहै।

सर्वधर्म समभाव गांधी के राजनीतिक और धार्मिक विचारों में केन्द्रीय महत्व रखता है। गाँधी जी के धर्म सम्बन्धी विचारों में संकीर्ण सम्प्रदायवाद के लिये कोई स्थान नहीं है। गांधी के लिए धर्म की साधना का मर्म एक आध्यात्मिकत सत्ता में आस्था होने तथा इस आस्था के मानवीय स्वरूप के घटित होने में समाविष्ट है। धर्म के प्रति उदार दृष्टिकोण को अपना लेने से दूसरे धर्मों के प्रति असहिष्णुता, घृणा और विरोध का कोई स्थान नहीं रहता। गाँधी जी ने स्पष्ट किया कि दूसरे धर्मों के प्रति सम्मान और सद्भाव, एक शातिमय सामाजिक व्यवस्था की पूर्व शर्त है। उन्होंने कहा कि सच्चे धर्म का सार, दूसरे धर्मों के प्रति सहिष्णुता और सकारात्मक दृष्टिकोण में निहित है। उनका विश्वास था कि घृणा और वैमनस्य से किस भी धर्म की रक्षा नहीं की जा सकती।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि धर्म को गाँधीजी एक ऐसी शक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं जो समाज को एकता के सूत्र में बांध सकती है। धर्म की उनकी धारणा में संकीर्णता, भेदभाव और वैमनस्य के लिये कोई स्थान नहीं है गाँधी जी के धर्म के प्रति एक मौलिक दृष्टिकोण अपनाया।

7.10 सारांश

महात्मा गाँधी का सम्पूर्ण चिन्तन सत्य और अहिंसा जैसे सिद्धान्तों पर आधारित है। गाँधी जी ने राज्य और राजनीति में इन सिद्धान्तों को समाहित करके राज्य और राजनीति के चरित्र को लोककल्याणकारी व जनता उन्मुख (People oriented) बनाना चाहते है। गाँधी जी का मानना है कि राज्य का जन्म हिंसा से हुआहै और राज्य हिंसा का प्रतिनिधित्व करता है। गाँधीजी मानव की अच्छाई में विश्वास में करते हैं। उनका मानना है कि राज्य मानव की आत्मा का हनन करता है, मानव के विकास में बाधक है इसलिए गाँधीजी राज्य का विरोध करते हैं। पश्चिमी लोकतन्त्र में भी मानव की आत्मा का पूर्ण विकास नहीं हुआ क्योंकि पश्चिमी में लोकतन्त्र की जगह “तन्त्रलोक'' बन गया है और मानव उस तन्त्र के नीचे दब गया है। जनता के प्रतिनिधि जनता के होने की जगह वे दल के प्रतिनिधि बन कर रह गये हैं। इसलिए गाँधीजी ने अहिंसात्मक लोकतन्त्र, विकेन्द्रित लोकतन्त्र (ग्राम स्वराज्य) एवं रामराज्य की अवधारणाओं का प्रतिपादन किया है । राजनीति में धर्म को समाहित करके राजनीति का शुद्धीकरण करना चाहते हैं। उनके अनुसार राजनीतिक

लोकसेवा का माध्यम है। राजनीति और धर्म दोनों ही मानव की संस्था है और दोनों का उद्देश्य मानव का कल्याण करना है। धर्म से अलग कोई राजनीति हो ही नहीं सकती। जो लोग धर्म और राजनीति को अलग करने की बात करते हैं वे वास्तव में न तो धर्म को समझते हैं और न ही राजनीति को जानते हैं। धर्म विहीन राजनीति एक शव के समान है जो दफनाने योग्य है जिससे मानव का कोई कल्याण नहीं हो सकता। धर्म का सम्बन्ध विश्व की नैतिक व्यवस्था से है, मानव धर्म से है, सभी धर्म अच्छे हैं। सभी धर्मों का उद्देश्य एक ही है- मानव कल्याण। उस उद्देश्य को पाने के विभिन्न मार्ग है। कोई भी धर्म ऊँचा-नीचा नहीं है। इसलिए गाँधीजी 'सर्वधर्म समभाव' की बात करते हैं। समाज की सामाजिक व्यवस्था को बनाएं रखने के लिए सभी धर्मों का समान आदर-सम्मान होना चाहिए। गाँधीजी ने राजनीतिक एवं धार्मिक समस्याओं का अनुभवमूलकसमाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

7.11 अभ्यास कार्य

1. गाँधीजी के राजनीतिक विचारों को समझाइए।
2. गाँधीजी के द्वारा पश्चिमी लोकतन्त्र की आलोचना की विवेचना कीजिए
3. गाँधीजी द्वारा प्रतिपादित राजनीति के आध्यात्मीकरण को समझाइये।
4. अहिंसक लोकतन्त्र व विकेन्द्रीकृत लोकतन्त्र की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
5. गाँधीजी के अनुसार राजनीति और धर्म के सम्बन्धों को समझाइए।

7.12 संदर्भ ग्रन्थ

1. वी. पी. वर्मा : आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन
2. महात्मा गाँधी : सर्वोदय
3. महात्मा गाँधी : वर्णाश्रम
4. बी. आर. मेहता : फाउण्डेशन ऑफ इण्डियन थॉट
5. आशा कौशिक : ग्लोब्लाइजेशन डेमाक्रेसी एण्ड कल्वर
6. गोपीनाथ धवन : द पोलिटिक्ल फिलोसफी ऑफ महात्मा गाँधी केजी मशरूवाला गाँधी एण्ड मार्क्स
7. के.जी. मशरूवाला : गाँधी एण्ड मार्क्स
8. रामजी सिंह : गाँधी दर्शन मीमांसा
9. पी.टी. पाटिल : स्टडीज ऑन गाँधी
10. रामजी सिंह: गाँधी एण्ड मॉर्डन वर्ल्ड

इकाई - 8

गांधी चिन्तन,सामाजिक एवं आर्थिक

इकाई की रूपरेखा

8.0 प्रस्तावना

8.1 उद्देश्य

8.2 सामाजिक चिन्तन

- 8.2.1 वर्ण व्यवस्था
- 8.2.2 अस्पृश्यता का अन्त
- 8.2.3 समाज में स्त्रियों की स्थिति
- 8.2.4 विधवा पुनर्विवाह का समर्थन एवं बाल विवाह का विरोध
- 8.2.5 दहेज प्रथा
- 8.2.6 साम्प्रदायिक एकता

8.3. आर्थिक चिन्तन

- 8.3.1 औद्योगीकरण का विरोध
- 8.3.2 कुटीर उद्योगों का समर्थन
- 8.3.3 कायिक श्रम
- 8.3.4 श्रम और पूंजी का सम्बन्ध
- 8.3.5 वर्ग सामंजस्य
- 8.3.6 स्वदेशी
- 8.3.7 ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त

8.4 सारांश

8.5 अभ्यास प्रश्न

8.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

8.0 प्रस्तावना

महात्मा गाँधी का चिन्तन एक समग्र चिन्तन है। गाँधी ने चिन्तन में व्यक्ति, समाज, राज्य, राजनीति, राष्ट्र एवं अन्तर्राष्ट्रीय इत्यादि विषयों का अध्ययन कर उनकी समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया। गाँधीजी का सम्पूर्ण चिन्तन आध्यात्मिक आदर्शवाद पर आधारित रहा। चाहे उसका स्वरूप सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक या शैक्षणिक रहा हो उनके सभी अभियानों का उद्देश्य आध्यात्मिक उद्देश्य को पूरा करना था। उनके आध्यात्मिक आदर्शवाद में सत्य, ईश्वर, नैतिकता, अहिंसा, साधन की श्रेष्ठता इत्यादि का विशिष्ट स्थान है।

गाँधीजी की अध्ययन पद्धति मूलत: निगमनात्मक (दार्शनिक) है किन्तु इसके साथ ही उनकी अध्य्ययन पद्धति के कुछ अंशों में अनुभवात्मक भी दिखायी देता है। अत: उनकी नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का भी एक विशिष्ट आध्यात्मिक अनुभवात्मक पद्धति है। गाँधीजी ने सत्य के

साथ अपने प्रयोगों द्वारा जो अनुभव प्राप्त किये उन्हें लौकिक जगत पर लागू करने का प्रयास किया।

गाँधीजी ने यह माना कि मानव की समस्त समस्या नैतिक समस्या है। यदि मानव सही अर्थों में मानव बन जाय और अपने समस्त सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक कार्यो को अन्तरात्मा की आवाज के अनुसार करे तो समस्त समस्याओं से मुक्ति मिल सकती है। गांधीजी के जीवन में रचनात्मक कार्यक्रमों का विशेष महत्व है। जैसे- साम्प्रदायिक एकता, अस्पृश्यता निवारण, स्त्री उद्धार, स्वदेशी कुटीर उद्योग को प्रोत्साहन, बाल विवाह का विरोध, बुनियादी शिक्षा योजना का प्रचार इत्यादि रचनात्मक कार्यक्रम रहे।

8.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य हो सकते हैं :

1. गांधीजी के सामाजिक एवं आर्थिक विचारों का परिचय कराना।
2. भारत में प्रचलित वर्ण-व्यवस्था के बारे में परिचय कराना।
3. भारत की अनेक सामाजिक समस्याओं जैसे दहेज प्रथा, बाल विवाह, विधवा विवाह, धार्मिक वैमनस्य व साम्प्रदायिक समस्याओं पर गांधीजी के विचारों से अवगत कराना।
4. स्वदेशी की अवधारणा व कुटीर उद्योगों के महत्व को समझाने का प्रयास कराना।
5. गांधी जी के आर्थिक चिन्तन में ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त के विश्लेषणात्मक अध्ययन की जानकारी प्रदान करना।

8.2 सामाजिक चिन्तन

गाँधीजी भारत की सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूक थे। उनका दृष्टिकोण संकीर्ण व क्षेत्रीय नहीं था, राष्ट्रीय भी नहीं था वरन् वह विशद् तथा अन्तर्राष्ट्रीय था। उनकी दृष्टि गहन थी तथा प्रत्येक समस्या का स्थायी समाधान करना चाहते थे। गाँधीजी के अनुसार सामाजिक बुराइयाँ, आर्थिक प्रगति और राजनीतिक स्थिरता तथा व्यवस्था परस्पर सम्बन्धित हैं और इन्हें एक-दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता। भारत में ऐसी कोई सामाजिक समस्या नहीं थी जिसकी ओर गाँधीजी का ध्यान न गया हो। आधुनिक भारत के राष्ट्रीय इतिहास में गांधी जी का एक विशेष महत्व इसलिए है कि उन्होंने सर्वप्रथम सामाजिक सुधारों एवं राजनीतिक आन्दोलनों के कार्यक्रमों के बीच विवेकपूर्ण ताल-मेल स्थापित किया। वस्तुत: उन्होंने सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन को एक-दूसरे का अनुपूरक माना है और इसलिए उन्होंने सामाजिक सुधारों के कार्यो और राष्ट्रीय स्वतंत्रता के प्रयत्नों को साथ-साथ चलाने की आवश्यकता पर बल दिया। गाँधी जी मानते थे कि भारतीय समाज अनेक बुराइयों से ग्रसित है। यदि भारत को अपना खोया हुआ गौरव पुन: प्राप्त करना है और वह सम्मानपूर्ण स्थान लेना है तो सामाजिक समस्याओं का समाधान होना चाहिए।

गाँधीजी की आदर्श सामाजिक व्यवस्था को एक ऐसी विकेन्द्रित सामाजिक व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें सत्य, अहिंसा, सेवा-भावना, आत्मनिर्भरता और

समाज के सभी सदस्यों में एक दूसरे के प्रति सम्मान की भावना रहे। गांधीजी की सामाजिक व्यवस्था में अन्याय या शोषण के लिये कोई स्थान नहीं है।

गाँधीजी का सामाजिक चिन्तन निम्नलिखित है :

8.2.1 वर्ण व्यवस्था

गाँधीजी के अनुसार वर्ण व्यवस्था मूल रुप में समाज के सदस्यों की क्षमताओं एवं योग्यता के अनुसार उनके कर्तव्यों के विभाजन की वैज्ञानिक व्यवस्था है। गांधीजी ने वर्ण-व्यवस्था के दो वैज्ञानिक आधार एवं तथ्य माना है- (I) प्रत्येक व्यक्ति कुछ स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ लेकर जन्म लेता है। (II) प्रत्येक व्यक्ति की कार्य सस्कधी योग्यता एवं क्षमता की कुछ निश्चित सीमायें होती हैं। प्रथम आधार के अनुसार वर्ण-व्यवस्था का आधार आनुवांशिक तत्व है और द्वितीय तथ्य आनुवांशिकता के साथ ही पर्यावरण के तत्त्व को भी वर्ण-व्यवस्था का आधार स्वीकारता है। वर्ण-व्यवस्था विभिन्न प्रवृत्तियों, योग्यताओं एवं क्षमताओं वाले व्यक्तियों के लिए अलग-अलग कार्य-क्षेत्रों की व्यवस्था करती है । उन्होंने कहा है कि मैं यह विश्वास करता हूं कि जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने पूर्वजों से आकार प्राप्त करता है इसी प्रकार विशिष्ट गुणों एवं लक्षणों को भी वह अपने पूर्वजों से ही प्राप्त करता है।

गाँधीजी ने स्पष्ट किया कि ज्ञान का सृजन व विस्तार, सुरक्षा के लिये शक्ति का प्रयोग, धन और सम्पदा का संग्रह और वितरण, तथा मानव जीवन क निर्वाह के लिये आवश्यक सेवाएं जुटाना मानवीय गतिविधियों का एक सहज वर्गीकरण है। गांधीजी के अनुसार वर्ण व्यवस्था, इन्हीं सहज प्रवृत्तियों के अनुसार, ज्ञान के आदान-प्रदान, लोगों की रक्षा करने, कृषि और व्यवसाय को संचालित करने, तथा शारीरिक श्रम के माध्यम से लोगों की सेवा करने वाले, समाज के पृथक-पृथक चार वर्गो की परिकल्पना पर आधारित है। वर्ण व्यवस्था गांधी के अनुसार मानव निर्मित संस्था नहीं बल्कि मानव जीवन के शाश्वत नियमों द्वारा संचालित संस्था है। अत: इसकी सार्थकता केवल हिन्दू समाज के लिए ही नहीं, बल्कि विश्व समाज के लिए भी है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि गांधी वर्ण-धर्म को शाश्वत और सार्वभौम धर्म मानते हैं। गाँधीजी सभी वर्णो के बीच आपस में समानता का भाव पैदा करना चाहते हैं।

गाँधीजी ने स्पष्ट किया कि वर्ण व्यवस्था का नैतिक पक्ष इस भावना में समाविष्ट है कि व्यक्ति कोई विशिष्ट कार्य सम्पन्न कर सकने की अपनी स्वाभाविक क्षमताओं का उपयोग अपने व्यक्तिगत भौतिक स्वार्थो की पूर्ति के लिये नहीं, अपितु सामाजिक हित और स्वयं की आध्यात्मिक उन्नति के उद्देश्य से प्रेरित होकर करेगा। इस प्रकार वर्ण व्यवस्था, समाज के वर्णो के रूप में विभाजित नहीं करती, अपितु विभिन्न वर्णो के सदस्यों के मध्य सौहार्द्र और प्रेम के माध्यम से, सामाजिक एकता को सुनिश्चित करती है। यह वैज्ञानिक आधार पर समाज को संगठित करने के व्यावहारिक आधार प्रस्तुत करती है, और एक ऐसा वातावरण बनाती है जिसमें व्यक्ति सर्वोत्तम रीति से अपनी क्षमताओं का सामाजिक हित में उपयोग करते हुए अपने चरम आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति कर सके।

गांधीजी ने वर्ण व जाति में भेद गाँधीजी ने वर्ण और जाति के मध्य भेद किया और जाति प्रथा के उन्मूलन पर बल दिया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि जाति प्रथा अपने वर्तमान स्वरूप में हिन्दू जाति पर एक कलंक के समान है। उन्होंने स्पष्ट किया कि "वर्ण व्यवस्था, व्यक्ति को अनिवार्य रूप से अपने कर्तव्यों के प्रति प्रेरित करके, मानव मात्र के कल्याण को सुनिश्चित करती है तथा इस बात पर बल देती है कि प्रत्येक वर्ण के सदस्य समान रूप से गरिमापूर्ण हैं। एक ब्राह्मण और हरिजन, समान हैं और अपने-अपने कार्यो को पूरी निष्ठा से सम्पन्न करते हुए आध्यात्मिक दायित्व को पूरा कर रहे हैं, और सांसारिक दृष्टि से वे अपने कार्यो के बदले में समान रूप से एक दूसरे से अधिकार-जीविका की प्राप्ति कर रहे हैं।"

इस प्रकार गाँधीजी जन्म के आधार पर वर्ण-व्यवस्था के समर्थक थे, किन्तु इसके साथ ही उनका विचार था कि सामाजिक महत्व की दृष्टि से सभी कार्य समान हैं और किसी कार्य को या उसके करने वाले को छोटा नहीं समझा जाना चाहिए। एक हरिजन के कार्य का उतना ही महत्व है जितना कि एक वैज्ञानिक के कार्य का हो सकता है। अत: राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन में सभी को समान अधिकार प्राप्त होने चाहिए।

8.2.2 अस्पृश्यता का अन्त

अस्पृश्यता भारतीय समाज के लिए एक कलंक रहा है। मध्य तथा आधुनिक काल में नानक कबीर, राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द ने इसका विरोध किया, किन्तु वे इसके मूल आधार को नहीं हिला सके। गांधीजी ने अस्पृश्यता के अन्त का बीड़ा उठाया और इसमें उन्हें सफलता भी मिली।

गाँधीजी अस्पृश्यता के उन्मूलन को राजनीतिक स्वतन्त्रता की तुलना में अधिक महत्व देते थे। उनकी दृढ़ मान्यता थी कि "अस्पृश्यता का उन्मूलन किये बिना, स्वराज्य की प्राप्ति असंभव भी है, और निरर्थक भी। गाँधीजी के अनुसार अस्पृश्यता मिथ्या अभिमान और स्वार्थ वृति का ही सामाजिक रूप है, और आत्मा का हनन करने वाला घोरतम पाप है। उन्होंने अस्पृश्यता को अनैतिक माना तथा कहा कि यह भारतीय समाज पर एक बदनुमा दाग है, और मानवता के विरूद्ध क्रूरतम अपराध है।

गाँधी जी ने स्पष्ट किया कि अस्पृश्यता को केवल बाहरी आचरण में समाप्त कर देना पर्याप्त नहीं है, अपितु उसे तो हृदय से ही निकालना होगा। उनके मत में अस्पृश्यता निवारण तभी वास्तविक माना जा सकेगा जबकि व्यक्तियों के मन से ऊँच-नीच के सभी भेद और जन्म के आधार पर किसी को श्रेष्ठ और किसी को हीन समझने का भाव जड़ से निकल जाये। अस्पृश्यता निवारण का कार्य केवल कानून निर्माण या सरकारी प्रयासों से पूरा नहीं होगा। इसके लिये व्यापक सामाजिक जाग्रति और लोगों के हृदय परिवर्तन की आवश्यकता होगी।

गाँधीजी ने अस्पृश्यता के विरूद्ध अपनी जंग की शुरूआत दक्षिण अफ्रीका में अपने प्रवास के दौरान ही शुरू कर दी थी। वे वहाँ गन्दी गलियों में रहे, अस्पृश्यों की प्रत्यक्ष सेवा की तथा

सामाजिक समानता के लिए कार्य किया। भारत लौटकर उन्होंने अस्पृश्यता के निवारण की समस्या को राष्ट्रीय आन्दोलन तथा कांग्रेस की राजनीति का एक अहम् मुद्दा बनाया।

गाँधीजी ने साम्प्रदायिक पंचाट (मैकडोनल्ड एवार्ड- 1932) की आड़ में हरिजनों को शेष हिन्दू समाज से अलग करने के ब्रिटिश प्रयत्न का विरोध करते हु ये आमरण अनशन रखा और सम्पूर्ण हिन्दू समाज की एकता को बनाये रखने वाले 'पूना-पैक्ट' को स्वीकारा। उन्होंने हरिजनोत्थान के लिए 'हरिजन सेवक संघ' की स्थापना की और अस्पृश्यता के निवारण तथा हरिजनोत्थान के पक्ष में राष्ट्रीय जनमत जाग्रत करने के लिए 'हरिजन' (अंग्रेजी) तथा 'हरिजन सेवक' (हिन्दी) साप्ताहिक पत्रों का प्रकाशन किया। वे स्वयं हरिजन बस्तियों में जाकर रहे तथा अस्पृश्यता के अन्त तथा हरिजनोत्थान (दलितोत्थान) के लिए सामाजिक सेवकों को प्रशिक्षण दिया। गांधी जी ने हरिजनोत्थान के कार्यक्रमों में अस्पृश्यों में शिक्षा के प्रसार, शराब-बन्दी तथा सफाई के रचनात्मक कार्यक्रमों को प्रमुखता दी।

8.2.3. समाज में स्त्रियों की स्थिति

गाँधीजी ने समाज में स्त्रियों और पुरुषों की समानता पर बल दिया । वे एक ऐसे आदर्श समाज की कल्पना करते थे जिसमें स्त्रियों को पुरुषों के समान अपनी शैक्षणिक, बौद्धिक और नैतिक उन्नति के अवसर प्राप्त हों। उन्होंने कहा "मेरे सपनों कौ स्वराज्य तब तक असंभव है जब तक कि भारत में स्त्रियाँ, पुरुषों के कंधे से कन्धा मिलाकर अपनी पूर्ण भूमिका नहीं निभाती।

गाँधी ने स्त्रियों को पुरूषों के समान ही अधिकार और आजादी देने का पक्ष लिया। गाँधी ने पर्दा प्रथा पर आघात किया। उन्होंने कहा कि पर्दे से चरित्र की पवित्रता नहीं आती। चरित्र का विकास तो भीतर से होता है। गांधी जी ने स्त्रियों की सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता का ही पोषण नहीं किया बल्कि उनकी राजनैतिक स्वतंत्रता की भी वकालत की। उन्होंने स्त्रियों के मताधिकार का पक्ष लिया।

स्त्री-उत्थान - गाँधी जी का मानना है कि स्त्री पुरूष के बीच प्रतिस्पर्द्धा नहीं होनी चाहिए। भारत की विशिष्ट परिस्थितियों में स्त्री-उत्थान के विषय में स्त्रियों की तुलना में पुरुषों का विशेष दायित्व स्वीकारा जाना चाहिए। उन्हें स्त्रियों के प्रति स्वामी-भाव के स्थान पर मित्र-भाव अपनाना चाहिए और इस विचार-क्रांति की शुरुआत घर से ही की जानी चाहिए। पुरुषों को चाहिए कि वे गृह-प्रबन्ध, बच्चों को देखभाल, उनकी शिक्षा आदि के बारे में स्त्रियों की सर्वोपरिता को स्वीकारें। पुरुष (पति) जो कुछ धन अर्जित करता है, उसमें रची (पत्नी) का अप्रत्यक्ष सहयोग होता है और इसलिए उसे इस धन पर स्त्री का समान अधिकार स्वीकारना चाहिए। परिवार में पुत्रों के समान पुत्रियों का भी लालन-पालन किया जाना चाहिए और परिवार की सम्पत्ति में पुत्रों के समान पुत्रियों का अधिकार माना जाना चाहिए।

गाँधी जी गीता के इस संदेश में विश्वास करते थे कि व्यक्ति अपने स्वधर्म का पालन कर श्रेष्ठतम स्थिति प्राप्त कर सकता है। इसलिए जहाँ भी जिस स्थिति में रहे, हमें अपने स्वधर्म क पालन करना चाहिए। प्रकृति ने परिवार के पालन एवं रक्षण के लिए पुरूष को समर्थ बनाया है। स्त्री

प्रकृति से ही परिवार की माता के रूप में बच्चों का लालन पालन करने तथा गृहस्थी का गुरुतर भार उठाने के योग्य बनी है। अत: स्त्री और पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों के परस्पर सक्रिय सहयोग के बिना दोनों का अस्तित्व असम्भव है। मानव सृष्टि व विकास के लिए दोनों का महत्व बिल्कुल बराबर है।

8.2.4 विधवा पुनर्विवाह का समर्थन एवं बाल विवाह का विरोध

गाँधी जी ने भारत की एक और सामाजिक समस्या-विधवा पुनर्विवाह पर भी ध्यान दिया। उन्होंने इस बात पर बहुत जोर दिया कि विधवाओं को बेहिचक पुनर्विवाह की अनुमति मिलनी चाहिए। गाँधी जी को बाल विवाह मान्य नहीं था। उन्होंने समाज-सुधारकों से अनुरोध किया कि वे अपनी शक्ति भर इसका विरोध करें। बाल विवाह से दम्पत्ति के स्वास्थ्य का हाल होने के अतिरिक्त बच्चे भी अधिक पैदा होते हैं। छोटी उस में ही मां बन गयी लडकियों का स्वास्थ्य नष्ट होता है और इन सबसे बढ़कर किशोरी कन्याएं, विधवाओं की दुर्गति को प्राप्त होती हैं। उनके विचार में बाल विवाह केवल नैतिक एवं सामाजिक कुरीति ही नहीं अपितु स्वराज्य की प्राप्ति में भी बाधक है। बाल विवाह एक अनैतिक एवं अमानवीय कृत्य है।

8.2.5 देहज प्रथा

गाँधी विवाह की संस्था के शुद्ध स्वरूप को दूषित करने वाली दहेज प्रथा के विरोधी थे। उनके अनुसार ''यह प्रथा बन्द होनी चाहिए। विवाह लड़के-लड़की के माता-पिताओं द्वारा पैसे ले-देकर किया गया सौदा नहीं होना चाहिए। गाँधी के अनुसार जब तक चुनाव का क्षेत्र जाति विशेष तक मर्यादित होगा तब तक यह प्रथा बनी रहेगी। इस प्रथा को तोड़ने के लिए उन्होंने जाति बन्धन को तोड़ने की सलाह दी है। इस सबका अर्थ है चरित्र की ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए जो देश के युवकों और युवतियों के मानस में आमूल परिवर्तन कर दे।

8.2.6 साम्प्रदायिक एकता

गाँधी जी 'सर्वधर्म समभाव' के विचार एवं नीति के समर्थक थे और उन्होंने साम्प्रदायिक एकता व सदभाव की स्थापना को अपने सार्वजनिक जीवन का सर्वाधिक प्रमुख लक्ष्य घोषित किया। उन्होंने भारत के विभिन्न सम्प्रदायों- हिन्दू मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, पारसी आदि के बीच साम्प्रदायिक एकता एवं सद्भाव की स्थापना के लिए अथक प्रयत्न किया। उन्होंने साम्प्रदायिक एकता विशेषकर हिन्दु-मुस्लिम एकता पर जोर दिया और वे मि. जिन्ना के 'द्वि राष्ट्र सिद्धान्त' को मानने के लिए कभी तैयार नहीं हुए। गाँधी जी का कहना था कि धर्म को राष्ट्रीयता का आधार नहीं माना जा सकता। उन्होंने अन्त तक 'भारत के विभाजन का विरोध किया और जब भारत का विभाजन हो ही गया, तो उन्होंने हिड-मुस्लिम दंगों को दुर्भाग्यपूर्ण माना।

गाँधी ने हिन्दू मुस्लिम एकता के संदर्भ में हृदय परिवर्तन को निर्णायक माना। गाँधी ने विभिन्न धर्मों के लोगों में किसी प्रकार की भिन्नता को नहीं स्वीकार किया। उनका विश्वास था कि औपचारिक तथा प्रत्यक्ष विविधताओं के बावजूद देश की सामाजिक शांति का निर्माण केवल उसी

स्थिति में सम्भव है जब विविधताओं में एकता को सशक्त बनाकर राष्ट्रीय प्रयोजन को सर्वोपरि महत्ता प्रदान की जाय। इस राष्ट्रीय प्रयोजन को गांधी निरपेक्षवाद का समानार्थक एवं प्रतीक मानकर अपेक्षा करते थे कि प्रत्येक समुदाय का सम्प्रदाय अपने सीमित तथा संकीर्ण हित का निराकरण कर राष्ट्रीय हित का समर्थन करे। सहिष्णुता के आधार पर ही राष्ट्रीय प्रयोजन सिद्ध हो सकता है। गाँधी ने भारतीय समाज में व्याप्त बुराइयों पर कठोर प्रहार करते हुए समाज का नवनिर्माण करने का प्रयत्न किया। गाँधी के चिन्तन का केन्द्र बिन्दु धर्म ही था। गांधी का ईश्वर तथा परम शक्ति में विश्वास था।

गाँधी ने अन्तर्राष्ट्रीय बंधुत्व संघ के सम्मुख भाषण देते हुए 1928 में कहा था कि "सभी धर्म सच्चे हैं। सब धर्मों में कोई न कोई खराबी है। सभी धर्म मुझे उतने ही प्रिय हैं जितना मेरा हिन्दू धर्म। मैं अन्य मतों का भी उतना ही आदर करता हूँ जितना अपने मत का, अत: मेरे लिए धर्म परिवर्तन का विचार ही असम्भव है। उन्होंने कहा: मेरा धर्म वह सब कुछ प्रदान करता है जो मेरे आत्मिक उत्थान के लिए आवश्यक है, क्योंकि वह मुझे उपासना करना सिखाता है। मैं यह भी प्रार्थना करता हूँ कि दूसरे लोग भी अपने धर्म में अपने व्यक्तित्व की चरम सीमा तक उन्नति करें जिससे एक ईसाई अच्छा ईसाई बन सके तथा एक मुसलमान अच्छा मुसलमान। मेरा विश्वास है कि परमात्मा एक दिन हमसे ये पूछेगा कि हम क्या हैं और क्या करते हैं, न कि वह नाम जो हमने अपने को और अपने कामों का दे रखा है।

गाँधी जी भारत स्वतंत्रता के बाद भी साम्प्रदायिक एकता के लिए निरन्तर कार्य करते रहे और इस महान यज्ञ में उन्होंने प्राणों की आहुति दे दी। गाँधी जी स्वतंत्र भारत को एक सर्वधर्म समभाव राज्य के रूप में देखने की आकांक्षा रखते थे, जिसे भारतीय संविधान में 'धर्म-निरेपक्ष राज्य' के रूप में स्वीकारा गया है। उनकी कामना थी कि आजाद भारत में सभी सम्प्रदायों को अपने धर्म एवं संस्कृति की रक्षा का अधिकार प्रान्त होना चाहिए और सभी को समान राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक अधिकार भी प्राप्त होने चाहिए। गांधी जी के इस आदर्श को स्वतंत्र भारत के संविधान में समुचित स्थान दिया गया है; किन्तु उन्होंने व्यवहार में जिस साम्प्रदायिक एकता की प्राप्ति की कामना की थी, वह अभी भी बहुत दूर है।

8.3 आर्थिक चिन्तन

गाँधीजी ने आर्थिक विचारों को नैतिक आधारशिला प्रदान की। उन्होंने कहा कि सच्चा अर्थशास्त्र कभी भी उच्चतम नैतिक मापदण्ड के विरूद्ध नहीं जा सकता। अर्थशास्त्र को न्याय-भावना से परिपूर्ण होना चाहिए। वह अर्थशास्त्र जो व्यक्ति अथवा राष्ट्र के नैतिक कल्याण पर आघात करता है, अनैतिक है और इसलिए पापपूर्ण है। गाँधीजी ने मनुष्य के पारस्परिक सम्बन्धों का आधार धर्म को नहीं वरन् प्रेम को बनाया और कहा कि मालिक अपने नौकर से जितना काम प्रेमपूर्ण व्यवहार से ले सकता है उतना आर्थिक प्रलोभन या दबाव से नहीं। सच्चा अर्थशास्त्र सामाजिक न्याय चाहता है। वह प्रत्येक व्यक्ति का भी सामाजिक हित चाहता है और अच्छे जीवन के लिए यह आवश्यक भी है। गाँधी जी के आर्थिक विचार निम्नलिखित हैं :

8.3.1 औद्योगीकरण का विरोध

आर्थिक व्यवस्था के सस्कश्व में अपनाए गए इसी नैतिक दृष्टिकोण के कारण गांधीजी के द्वारा औद्योगिक क्रान्ति और उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न केन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था का विरोध किया गया है। बड़े उद्योगों की स्थापना के लिए बहुतअधिक मात्रा में कच्चे माल और बहुतअधिक मात्रा में निर्मित पदार्थो के विक्रय के लिए बड़े बाजारों की आवश्यकता होती है तथा कच्चे माल और बड़े बाजारों की खोज की यह प्रवृत्ति साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद को जन्म देती है, जो नैतिकता के विरुद्ध है। रस्किन की तरह गाँधीजी को भी उद्योगवाद के बढ़े चरण, मानव समाज के आधारभूत नैतिक आदर्शो के लिए सचमुच अभिशाप मालूम पड़े। उनके अनुसार उद्योगवाद असंख्य पापों और अनर्थो की जड़ है। उनका यह अनुभव अपने देश में वैदेशिक उद्योगों से उत्पन्न कुप्रभावों पर आधारित है। उद्योग के लिए काफी मात्रा में कच्चा माल और इसके तैयार माल के लिए बड़ा बाजार चाहिए। इन दोनों के लिए अद्यपर विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है। इस प्रकार अविकसित देशों का शोषण उद्योगवाद का एक आवश्यक अंग हो जाता है। इसी के साथ औपनिवेशिक विस्तार की भूख, साम्राज्यवादी वृति, औद्योगिक एकाधिकार, प्रतिरूप रखने वाले दूसरे औद्योगिक देशों के आर्थिक एवं राजनैतिक विकास को रोकने के दुराचक्र और सबसे ऊपर शोषण करने वाले राष्ट्रों की सांस्कृतिक, आर्थिक और जातीय श्रेष्ठता का हवामहल खड़ाकर शोषित राष्ट्रों का नैतिक पतन करने तथा षड्यन्त्र आदि सब मिलकर संसार को पतित बना रहे हैं।

गाँधी औद्योगीकरण के विरोधी हैं, क्योंकि "बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण का अनिवार्य परिणाम यह होगा कि ज्यों-ज्यों प्रतिस्पर्धा और बाजार की समस्यायें खड़ी होंगी, त्यों-त्यों गांवों का प्रकट या अप्रकट शोषण होगा। इसलिये हमें अपनी सारी शक्ति इसी प्रयत्न पर केन्द्रित करनी चाहिए कि गांव वस्तुओं का निर्माण और उत्पादन अपने उपभोग के लिए करें। इस पर किसी भी प्रकार से आपत्ति नहीं की जा सकती बशर्ते कि उनका उपयोग दूसरों का शोषण करने के लिए नहीं होना चाहिए।

मशीनों के प्रति गाँधीजी का विरोध निम्नलिखित आधारों पर है :

1. गाँधीजी का सम्पूर्ण चिन्तन मानवतावादी दृष्टिकोण पर आधारित है। मशीनें मनुष्य का स्थान ले लेती है और बेरोजगारी को बढ़ाती है।
2. इनके विकास की कोई निश्चित सीमा नहीं है। अत: इनका विकास इस सीमा तक भी हो सकता है जहाँ मनुष्य का कोई वजूद न रहे।
3. मनुष्य इनकी विराटता के सामने विवश हो जाता है। मनुष्य चाहते हुएभी इनका सामना नहीं कर सकता क्योंकि मशीन का अपना नियम होता है। मशीन मानवीय श्रम एवं मानवीय आत्मा का हनन करती है।

गाँधीजी यंत्र-मात्र के विरोधी नहीं थे। वे तो वस्तुत: मशीन को व्यक्ति की तुलना में अधिक महत्व दिए जाने का विरोध करते थे। उनका मत था कि 'मशीन स्वयं में अच्छी या बुरी नहीं होती। आपत्तिजनक बात यह है कि वह व्यक्ति की मनुष्यता का अपहरण कर लेती है।" उन्होंने कहा, "मैं

वास्तव में मनुष्य की तुलना में मशीन की सर्वोच्चता को समाप्त करना चाहता हूँ। वर्तमान में प्रत्येक कार्य को मशीन द्वारा करने की सनक इस कदर बढ़ गई है कि हम मशीन के दास बनते जा रहे हैं।" वस्तुत: एक व्यावहारिक व्यक्ति होने के नाते गांधीजी आदर्शवाद और यथार्थवाद में संधि कराना चाहते थे। अन्तिम रूप में उनका आग्रह था कि बड़े पैमाने के उद्योगों को कुटीर उद्योगों का प्रतिद्वन्द्वी न बनाकर उनका सहायक बनना चाहिए। उद्योगों के क्षेत्र में गाँधीजी ग्रामोद्योगों और छोटे उद्योगों को प्राथमिकता या तरजीह इसलिए देते थे कि भारत जैसे बड़ी आबादी वाले विकासशील देशों में छोटे उद्योगों से न केवल पूर्ण रोजगार की व्यवस्था होती है, बल्कि काम करने वालों को अधिक आत्मसंतोष भी प्राप्त होता है। साथ ही ऐसे उद्योगों द्वारा विदेशों से महँगी और पेचीदी मशीनें मँगाने का व्यय बचता है तथा देश की आत्म-निर्भरता में वृद्धि होती है। उत्पादन, व्यय, सुरक्षा और शोषण और प्रदूषण रहित वातावरण इन सभी दृष्टिकोणों से लघु-उद्योगों-व्यवहारिकता और वांछनीय लगती है। फिर भी यह प्राय: बहिष्कृत और तिरस्कृत है। भारत में भी गांधीवाद का अनुसरण कम होता है, किन्तु उनका प्रचार अधिक किया जाता है।

8.3.2 कुटीर उद्योग-धन्धों का समर्थन

गाँधीजी के द्वारा औद्योगीकरण का विरोध करते हु एकुटीर उद्योग-धन्धो पर आधारित एक ऐसी विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था का प्रतिपादन किया गया, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक गाँव एक आर्थिक इकाई के रूप में कार्य करेगा। वे खादी को भारत की राजनीतिक एवं आर्थिक समस्याओं का अमोघ हल मानते थे और उनके द्वारा आर्थिक क्षेत्र में स्वदेशी के विचार का प्रतिपादन किया गया। गांधीजी का विचार था कि प्रत्येक देश की अर्थव्यवस्था वहां की जलवायु, भूमि तथा वहां के निवासियों के स्वभाव को ध्यान में रखते हु एनिश्चित की जानी चाहिए और इन बातों के आधार पर जहां तक भारत का सम्बन्ध है, भारत के लिए कुटीर उद्योग-धन्धों की व्यवस्था सर्वोत्तम है। उन्होंने विकेन्द्रीकरण व्यवस्था के पक्ष में तर्क दिया "इसका ध्येय लोगों को सुखी बनाना है और इसके साथ-साथ उनकी सम्पूर्ण बौद्धिक व नैतिक उन्नति भी करना है। नैतिक उन्नति से मेरा यहाँ तात्पर्य आध्यात्मिक उन्नति से है। यह ध्येय विकेन्द्रीकण से पूरा हो सकता है। आर्थिक विकेन्द्रीकरण का अर्थ है बड़े पैमाने के उद्योगों का उन्मूलन और उनके स्थान पर कुटीर उद्योग धन्धों की स्थापना। अहिंसात्मक राज्य में केवल कुटीर उद्योग ही पनप सकते हैं जिसमें कि उत्पादन के स्वामी और उत्पादित वस्तु का उपभोक्ता स्वयं श्रमिक होता है। आर्थिक क्षेत्र में सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों को प्रतिष्ठित करने तथा मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को समाप्त करने का सर्वोत्तम साधन कुटीर उद्योग ही है।

गाँधी जी ने स्पष्ट किया कि लघु एवं कुटीर उद्योगों पर आधारित अर्थव्यवस्था में उत्पादन मुख्यत: स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होगा। अत: स्थानीय उत्पादन, स्थानीय उपभोग, और विवेकसम्मत वितरण, अर्थव्यवस्था के निर्देशक सूत्र होंगे। यह ग्रामीण व्यवस्था उत्पादन की केन्द्रीय प्रणाली से इस अर्थ में भिन्न होगी कि इसमें भारी मात्रा में उत्पादन करने के बजाए, उत्पादन की प्रक्रिया में जनता की व्यापकतम भागीदारी (Production by mass

instead of mass production) पर बल दिया जाएगा। इस व्यवस्था में न्याय-सम्मत वितरण, समाजवादी व्यवस्था से इस अर्थ में भिन्न होगा कि न्याय सम्मत वीरण के लिए राज्य की दमनकारी शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाएगा, अपितु उपभोग का स्थानीयकरण ही यह स्वत: सुनिश्चित कर देगा कि उत्पादन का, समुदाय की आवश्यकताओं के अनुरूप न्यायसम्मत वितरण हो। अत: वितरण की जटिलताओं की संभावना ही नहीं रहेगी।

8.3.3 कायिक श्रम

गाँधी वर्णाश्रम के प्राचीन भारतीय आदर्श को मानते थे। रोटी अर्थात् जीविका के उपार्जन के लिए शारीरिक श्रम की आवश्यकता के विचार को गांधीजी ने टॉल्सटॉय एवं रस्किन से प्राप्त किया है। रस्किन ने अनटु दिस लास्ट नामक पुरतक में बताया कि कायिक श्रम करने वाले जीवन ही सर्वश्रेष्ठ जीवन है। गाँधी जी का मत है कि इस ईश्वरीय कानून का उल्लेख भगवद् गीता, बाइबिल आदि धार्मिक ग्रन्थों में भी किया गया है। गीता में यज्ञ एवं बाईबिल में "अपनी रोटी पसीना बहाकर कमाने खाने का आदेश दिया गया है । शरीर श्रम सबके लिए व सब क्षेत्र में जरूर है।"

गाँधी के अनुसार- "रोटी के लिए प्रत्येक मनुष्य को श्रम करना चाहिए। यह ईश्वरीय विधान है। टॉलस्टाय ने इसे विख्यात किया।"

टॉलस्टाय के ब्रेडलेवर के सिद्धान्त के अनुसार, रोटी के लिए श्रम के नियम की पवित्रता के विचार को गांधी ने भगवत गीता के तीसरे अध्याय में भी खोजा। गीता में प्रतिपादित किया गया है कि "यज्ञ किये बिना जो खाता है, वह चोरी का अन्न खाता है। यहाँ यज्ञ का 'अर्थ रोटी के लिए श्रम के रूप में किया जा सकता है। गीता में प्रतिपादित किया गया - "तू नियत अर्थात् नियमित कर्म कर, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना कहीं अधिक अच्छा है। यह व्रत वस्तुत: अहिंसा, ब्रह्मचर्य अस्तेय और परिग्रह के ही साधन हैं क्योंकि एक शरीर-श्रम के व्रत लेने से ऊपर के व्रतों का पालन आसान हो जाता है।

गाँधी जी ने शारीरिक श्रम द्वारा जीविका के उपार्जन को प्रकृति का नियम बताते हु एकहा है, "महान प्रकृति की इच्छा तो यही है कि हम रोटी पसीना बहाकर कमाये। गाँधी जी ने इसे ईश्वरीय नियम बताते हु ये कहा है, "रोटी के लिए प्रत्येक मनुष्य को मजदूरी करनी चाहिए, यह ईश्वर का कानून है।

8.3.4 श्रम और पूँजी का सम्बन्ध

गाँधीजी के अनुसार श्रम और पूँजी के मध्य संघर्ष की स्थिति बनी हु ई है, किन्तु उन्होंने इस संघर्ष को सभी के लिए अहितकर माना। उन्होंने कहा कि स्वयं पूँजीपतियों द्वारा श्रम की वरीयता को स्वीकार कर लेने से इस द्वन्द का समाधान हो सकता है। उन्होंने कहा: "वर्ग संघर्ष समाप्त हो सकता है, यदि पूँजीपति स्वेच्छा से अपनी भूमिका को रूपान्तरित कर लें और श्रमिक बन जाएँ। इसका दूसरा तरीका यह है कि यह मान लिया जाए कि श्रम ही वास्तविक पूँजी है, वस्तुत: श्रम ही पूँजी का सृजन करता है। श्रमिक के दो हाथ जो अर्जित कर सकते हैं, पूँजीपति, केवल सोने-

चाँदी से वह कभी अर्जित नहीं कर सकता। किन्तु श्रम को अपनी शक्ति के प्रति सचेतन होना होगा। यदि श्रमिक अपने एक हाथ में सत्य, और दूसरे में अहिंसा को धारण कर ले तो वह अजेय हो जाएगा।..... सारा संकट इस कारण उत्पन्न हुआ है कि श्रमिकों और श्रमिक आंदोलन का नेतृत्व करने वाले लोगों ने ही श्रम की गरिमा और शक्ति का समझा नहीं है।

श्रम की प्रतिष्ठा को रेखांकित करते हुए गाँधी जी ने कहा "श्रम पूँजी की तुलना में निश्चित रूप से श्रेष्ठ है, बिना श्रम के सोना, चांदी और ताँबा निरर्थक बोझ के समान हैं। वह श्रम ही है जो धरती की कोख से बहुमूल्यधातुएँ निकालता है। अत: बहुमूल्यसोना नहीं, श्रम है। किन्तु मैं श्रम और पूँजी में टकराव नहीं चाहता, मैं दोनों का विवाह करना चाहता हूँ। वे सहयोग करके चमत्कार कर सकते हैं। लेकिन यह केवल तब हो सकता है जबकि पहले श्रम इतना जागरूक हो कि वह स्वयं से सहयोग कर सके और तब पूँजी के साथ सम्मानजनक समानता के आधार पर सहयोग का प्रस्ताव करे। श्रमिक और पूँजीपति सामाजिक आवश्यकताओं के प्रति सचेत रहें तथा उपभोक्ताओं के हितों का ध्यान रखें। गांधी जी के अनुसार श्रमिकों व पूँजीपतियों के इस दृष्टिकोण का परिणाम होगा, 'सर्वव्यापी ईमानदारी, सहिल्लाता, पारस्परिक विश्वास; और श्रम, पूँजी व उपभोक्ता के मध्य एक स्वैच्छिक और सम्मानजनक सम्बन्ध।"

8.3.5 वर्ग सामंजस्य

गाँधीजी पूँजीवाद की बुराइयों के प्रति सचेत थे और उनका उन्मूलन करना चाहते थे। किन्तु वे पूँजीवाद से संघर्ष के लिये हिंसा या वर्ग-द्वेष को उचित और प्रभावशाली साधन नहीं मानते। संघर्ष की इस पद्धति में पूँजीपतियों को नहीं, अपितु पूँजीवाद तथा उसके शोषणकारी स्वरूप को समाप्त करना है। गाँधीजी का मत है कि पूँजीपति जब तक स्वयं को मजदूरों के हितों का संरक्षक बनाये रखते हैं, तब तक श्रम व पूँजी परस्पर पूरक बने रहते हैं । किन्तु यदि पूँजीपति पूँजी का उपयोग श्रमिक के शोषण के लिये करने लगें तो श्रमिक पूँजी से असहयोग करके पूँजी को निरर्थक बना सकते हैं। अत: गाँधीजी के अनुसार श्रमिकों में उनके दायित्वों व अधिकारों के प्रति चेतना के माध्यम से श्रम व पूँजी के मध्य गौरवपूर्ण समानता को सुनिश्चित किया जा सकता है। उन्होंने कहा "प्रत्येक व्यक्ति को जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति का समान अधिकार है। प्रत्येक अधिकार के साथ कर्तव्य, और अधिकार पर होने वाले प्रहार के प्रतिरोध के उपाय अनिवार्य रूप से जुड़े होते हैं। श्रम व पूँजी के मध्य मौलिक समानता की स्थापना का सुगम सूत्र है। श्रमिक के अधिकारों से जुड़ा कर्तव्य है- क्षमता भर परिश्रम करना; तथा अधिकारों की रक्षा का उपाय है उन व्यक्तियों व उस व्यवस्था से असहयोग, जो श्रमिक को उसके श्रम के फलों से वंचित करती हो। यदि श्रमिक, पूँजीपति व श्रमिक की मौलिक एकता को जान लें तो वे पूंजीपति के विनाश को अपना लक्ष्य नहीं मानेंगे, अपितु उसका रूपान्तरण करेंगे। श्रमिक का असहयोग पूंजीपति की आँखें खोल देगा और वह अन्याय कर ही नहीं सकेगा।

8.3.6 स्वदेशी

स्वदेशी गाँधी की मौलिक देन है इसका आधार गीता का ''स्वधर्म'' और बाइबल का 'लव दाई नेबर'' कहा जा सकता है। स्वदेशी की धारणा संकीर्णता, घृणा, स्वार्थ प्रतिद्वन्द्विता और भौतिकता आदि के दोषों से मुक्त है। यह अहिंसा और प्रेम का पर्याय है। स्वदेशी की भावना विकेन्द्रीकरण की अनिवार्य शर्त है। स्थानीय उत्पादन और स्थानीय उपभोग पर आधारित विकेन्द्रीकृत ढांचा, स्वदेशी प्रेम की नैतिक आधारशिला पर ही खड़ा हो सकता है। स्वदेशी के विचार के नैतिक पक्ष को स्पष्ट करते हुए गांधीजी ने कहा, "स्वदेशी, 'अर्थ' के विषय में धर्म' को सुनिश्चित करती है।''

गाँधी जी ने स्वेदशी का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया था इसे मात्र अर्थशास्त्रीय धारणा के अंतर्गत नहीं रखना चाहते थे। व्यापक अर्थ में यह ऐसी धारणा है जिसकी परिधि में नैतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, भाषायी, धार्मिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार के अर्थ समाहित है। फिर भी समग्रत: यह सामाजिक नैतिकता का ही प्रत्यय है। स्वदेशी का अर्थ है गांधी के लिये व्यक्ति द्वारा उसके समीपस्थ वातावरण के प्रति निज धर्म का निर्वाह है। इस वत के अनुसार अपने देश के धर्म इसकी भाषा, राजनीतिक पद्धति और उपयोग की वस्तुओं को अंगीकार करना आवश्यक माना जाता है।

गाँधी जी ने चरखा और खादी को स्वदेशी पर आधारित अर्थशास्त्र के दो प्रभावशाली प्रतीक बताया और कहा कि ये दोनों भारत के हजारों गांवों में फैली हुई गरीबी और बेरोजगारी की समस्या का समाधान कर सकते हैं। ''स्वदेशी व्रत के अनुसार सभी प्रकार के विदेशी सामानों का त्याग न कर उन्हीं वस्तुओं का त्याग किया जाता है जिनका उत्पादन अपने देश में होता है तथा जिनके उपयोग के बिना हमारे समाज के कुछ अंग अपनी आजीविका खो देते हैं। हम अपनी आवश्यकता की चीजों को विदेशों से मंगा सकते हैं, विदेशी पूंजी और प्रतिभा का प्रयोग कर सकते हैं, शर्त केवल इतनी ही कि उससे अपने देश के नागरिकों की प्रगति अवरुद्ध न हो और उसका नियंत्रण भारत के द्वारा हो। महात्मा गाँधी ने स्वदेशी, स्वराज्य, स्वशासन, स्वावलम्बन, स्वधर्म की नई व्याख्या करके इन विचारों को जनता जनार्दन से जोड़ने का काम किया। स्वदेशी की अवधारणा का एक राजनीतिक-आर्थिक अस्त्र के साथ-साथ एक सर्वोदय का साधन, सर्वोदय की एक प्रक्रिया, सर्वोदय समाज स्थापित करने का एक दृष्टिकोण जनता जनार्दन को दिया।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गाँधी का स्वदेशी व्रत संकीर्णता, घृणा, स्वार्थ, प्रतिद्वंद्विता और भौतिकता आदि दोषों से मुका है। यह अहिंसा और प्रेम का ही पर्याय है। यह हमारे स्वभाव में व्याप्त है, परन्तु अज्ञानतावश हम स्वार्थ और भौतिकता में पड़कर उसका उल्लंघन करते हैं। व्रत के द्वारा इसे हम अपने जीवन में उतार सकते हैं। इसके पालन से एक ओर अपनी संकल्प शक्ति बढती है, दूसरी ओर समाज की अर्थव्यवस्था टिकाऊ बनी रहती है।

8.3.7 ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त

ट्रस्टीशिप की धारणा वस्तुत: अपरिग्रह और अस्तेय के विचारों का ही व्यवस्थित रूप है। प्रन्यासिता के विचार में सम्पत्ति के प्रति व्यक्ति के दृष्टिकोण की दो मर्यादायें अन्तर्निहित है:- प्रथम व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को यथा-संभव सीमित कर ले; तथा, द्वितीय व्यक्ति अपनी आवश्यकता से अधिक साधनों व सम्पदा को अपने पास न रखे। प्रन्यास की धारणा वस्तुत: सम्पत्तिधारियों से यह अपेक्षा करती है कि वे सम्पत्ति का उपार्जन करने की अपनी क्षमताओं का उपयोग पूरे समाज के लाभ के लिये करें। गाँधी के अनुसार संसार की सभी वस्तुओं का वास्तविक मालिक ईश्वर हे। जिसने इसका सृजन किया है 'सम्पत्ति सब रघुपति के आही, सबै भूमि गोपाल की' उसने विश्व का सृजन किसी व्यक्ति के लिए नहीं किया बल्कि समस्त प्राणियों के लिए किया है। वह सब शक्तिमान होते हुएभी संग्रह नहीं करता है, रोज का काम रोज करना है। मनुष्य उसी ईश्वर का छोटा सा रूप है। अत: उसे भी उत्पादन समाज हित की भावना से करना चाहिए, स्वार्थ की भावना से नहीं। ईश्वर की भांति ही उसे भी भविष्य के लिए संग्रह नहीं करना चाहिए। उनके ऐसे दृष्टिकोण का परिणाम यह होगा कि वे सम्पत्ति के उपार्जन से होने वाले मानसिक संतोष को तो अनुभव करेंगे ही, सामुदायिक उपयोग के लिये सम्पत्ति के परित्याग के माध्यम से वे अपना नैतिक कल्याण भी सुनिश्चित करेंगे। सम्पत्तिधारियो द्वारा सम्पत्ति के स्वैच्छिक परित्याग से, सम्पत्ति के अर्जन और सम्पत्ति के वितरण के मध्य न्यायसम्मत संतुलन स्थापित हो सकेगा।

गाँधी जी ने न्यासिता की व्यवस्था के संदर्भ में सम्पत्ति पर अग्रलिखित तीन प्रकार के स्वामित्वों का उल्लेख किया है- ईश्वर का स्वामित्व, व्यक्ति का निजी स्वामित्व तथा समाज का नैतिक स्वामित्व। गांधी जी के अनुसार, "संसार की सारी संपत्ति भगवान की है और यदि किसी के पास अनुपात से अधिक धन है, तो वह उस धन का जनता की ओर से ट्रस्टी या अमानतदार है।"

सम्पत्ति पर ईश्वर का स्वामित्व आध्यात्मिक प्रकृति का, निजी स्वामित्व कानूनी प्रकृति का तथा समाज का स्वामित्व नैतिक प्रकृति का होता है। न्यासिता के सिद्धान्त की दृष्टि से सम्पत्ति पर समाज के नैतिक स्वामित्व तथा समाज का नैतिक स्वामित्व की व्यवस्था का विशेष महत्त्व है; यह एक ओर निजी सम्पत्ति के उपभोग तथा स्वामित्व पर समाज के हित में नैतिक नियंत्रण स्थापित करती है तथा दूसरी ओर निजी सम्पत्ति के स्वामी को अपने सामाजिक कर्तव्य एवं दायित्व को निबाहने की नैतिक प्रेरणा देती है। ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त में आर्थिक विषमता मिटाने का प्रयत्न बलपूर्वक हिंसा के आधार पर नहीं, विचार परिवर्तन और हृदय परिवर्तन के आधार पर किया जाता है।

वर्तमान समाज की आर्थिक व्यवस्था के संबंध में मुख्य रूप से दो विचार प्रचलित हैं- व्यक्तिवादी और समष्टिवादी या पूंजीवादी और समाजवादी विचार। व्यक्तिवादी पूंजीवादी विचार उत्पादन के व्यक्तिगत स्वामित्व का समर्थन करता है जिसमें व्यक्ति का अपनी क्षमता भर उपार्जन करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। ऐसी अर्थ रचना का मुख्य आधार मांग और पूर्ति का नियम है। इस प्रकार की आर्थिक व्यवस्था का आवश्यक परिणाम प्रतिस्पर्धा, उपनिवेशवाद, अमीर

और गरीब के बीच विषमता, शोषण और स्वार्थपरता है। परन्तु इसकी एक विशेषता है कि यह व्यक्ति को अपनी शक्ति भर उत्पादन करने को प्रेरित करता है। उत्पादन पर किसी भी प्रकार अनावश्यक प्रतिबंध न लगाने से राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है। इस प्रकार की आर्थिक संरचना अमेरिका जैसे देशो, में प्रचलित है।

समाजवादी विचार पूंजीवादी व्यवस्था का घोर विरोधी है। यह व्यक्तिगत स्वामित्व को ही शोषण का मूल कारण मानता है। अत: उत्पादन और वितरण को राज्य के हाथों में सौंपता है। ऐसी व्यवस्था में व्यक्ति की स्वाभाविक उत्पादन की प्रेरणा समाप्त हो जाती है तथा वह अपनी सारी स्वतंत्रता खोकर यंत्रवत जीवन व्यतीत करता है। आर्थिक विषमता को मिटाने के लिये इसमें हिंसा का भी सहारा लिया जाता है जो समस्या का वास्तविक और उचित समाधान नहीं है। परन्तु इस प्रणाली की एक विशेषता है कि यह अर्थ का वितरण व्यापक रूप से सम्पूर्ण समाज में करना चाहती है। इस विचार के समर्थक रूस और चीन आदि साम्यवादी देश माने जाते हैं।

इन दोनों से भिन्न एक तीसरे प्रकार का दृष्टिकोण भी है। जिसमें आर्थिक जीवन को तिरस्कृत कर परलोकमुखी जीवन व्यतीत करने की आकांक्षा है। वास्तव में यह पलायनवादी विचार है जिसका आधार सन्यासवाद ही है। इस प्रकार के विचार में सरल और त्यागमय जीवन को ही उचित समझा जाता है। आर्थिक उत्पादन और प्रगति को ही उपेक्षित किया जाता है। इस प्रकार की दृष्टि में सारी अच्छाइयों के बावजूद सामाजिक व भौतिक वास्तविकता का तिरस्कार होता है।

गाँधी ने ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त में ऊपर के तीनों सिद्धान्तों की बुराइयों का परित्याग कर उनकी अच्छाइयों को ग्रहण किया है। पूंजीवादी व्यवस्था का व्यक्तिगत स्वामित्व और समाजवादी व्यवस्था का समाजकल्याण ओर परलोकवादियो की अर्थ विमुखता और त्यागमय जीवन-तीनों का एक साथ मिलन गाँधी के ट्रस्टीशिप सिद्धांत में होता है। ''यहाँ व्यक्तिगत स्वामित्व समाज की पवित्र धरोहर के रूप में रहता है। अत: सामाजिक सम्पदा भोग के लिये नहीं, बल्कि जन कल्याण के लिये मानी जाती है। इसलिये यहाँ मालिक और मजदूर के बीच वर्ग संघर्ष नहीं, बल्कि एक नवीन संबंध की कल्पना की गयी है। जिसमें दोनों के बीच मित्रता का भाव रहता है। यह अमीरों और गरीबों के बीच विषमता को मिटाने का अहिंसक समाजवाद है। इसके द्वारा पूंजीपति को सुधार का एक सुअवसर प्रदान किया जाता है। यह विश्वास रखकर कि मानव स्वभाव बदल सकता है। इसमें स्वार्थ और संग्रह के लिये उत्पादन का निषेध और सामाजिक आवश्यकतानुकूल समाजहित के लिये उत्पादन का भाव है।

ट्रस्टीशिप का स्वरूप एवं सिद्धान्त

ट्रस्टीशिप के सिद्धान्तों की उपरोक्त रूपरेखा के आधार पर ''ट्रस्टीशिप' के कुछ महत्वपूर्ण उद्देश्यों को प्रस्तुत किया जा सकता है-

1. 'ट्रस्टीशिप'' एक ऐसा साधन है, जिसके द्वारा वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था पर आधारित समाज को समता की सामाजिक व्यवस्था में बदला जा सकता है। ट्रस्टीशिप वर्तमान स्वामी वर्ग को, अपने को शुद्ध करने और सुधारने का अवसर प्रदान करता है। यह सिद्धान्त इस बात में अटल विश्वास रखता है कि मनुष्य की प्रवृत्ति में सामाजिक भावना अर्थात्

परमार्थ की भावना स्वाभाविक एवं शाश्वत है। आज कितना ही स्वार्थी व्यक्ति हो,इस सिद्धान्त के द्वारा उसमें आन्तरिक हृदय एवं भावनाओं का परिवर्तन होता है।

2. यह सिद्धान्त किसी भी व्यक्तिगत सम्पत्ति के स्वामित्व को मान्यता नहीं देता है केवल उसी सीमा तक स्वामित्व का अधिकार स्वीकार किया जायेगा, जिस सीमा तक समाज सबके कल्याण को देखते हुएस्वामित्व की स्वीकृति देगा। जिस स्वामित्व से पूरा समाज लाभान्वित होता है, उसी प्रकार का स्वामित्व सीमित और मर्यादित रूप में स्वीकार किया जा सकता है।
3. यह सिद्धान्त प्रत्येक व्यक्ति के लिए कार्य करना आवश्यकता मानता है और उसके लिए एक निर्वाह योग्य, कुशलक्षेम के लिए साधन भी निर्धारित करता है। ताकि कोई भी व्यक्ति समाज में अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं के लिए दुःखी न हो सके। साथ-ही-साथ एक अधिकतम आय की सीमा भी समाज में निर्धारित करता है।
4. इस सिद्धान्त के आधार जो उत्पादन होगा, वह केवल व्यक्तिगत लाभ-वासना के लिए बिल्कुल नही होगा, बल्कि उसके पीछे उत्पादन की आधार-शिला सामाजिक आवश्यकता होगी ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी शक्ति को सामाजिक हित में लगाये।
5. प्रत्येक नागरिक का मर्यादित जीवन होगा ताकि वहू अपनी शक्ति का सही प्रयोग कर सके। यदि कोई व्यक्ति इन शक्तियों का दुरुपयोग करता है, तो वह अपने व समाज के प्रति अन्याय करता है और उसे अनैतिक कार्य माना जायेगा। अपने कर्तव्य का वह उचित पालन नहीं करता है, इसलिए समाज को यह अधिकार है कि उसे ऐसी बर्बादी करने से रोके।
6. प्रत्येक व्यक्ति उस सम्पत्ति का जो उसके पास है, स्वामी नहीं होगा, बल्कि उस सम्पत्ति का प्रयोग समाज के लिए करने के लिए उत्तरदायी होगा। उस सम्पत्ति में से एक मर्यादा के भीतर ही कुछ भाग वह स्वयं के उपयोग में लायेगा और अन्य भाग को समाज के प्रयोग में लायेगा।
7. प्रत्येक व्यक्ति अपने समाज तथा प्रकृति के प्रति उत्तरदायी होगा। शरीर की रक्षा करना एक तप है, जिससे कि व्यक्ति समाज का अधिक से अधिक हित कर सके। यह उसका पुनीत कर्तव्य है। उसका दूसरा कर्तव्य समाज के प्रति है। जो भी वह उत्पादन करेगा, वह समाज को समर्पित करेगा, वह उसका स्वामी भी नहीं होगा अपितु सारे उत्पादन को सही दिशा में ले जायेगा और उस उत्पादन को समर्पित करके तब समाज की स्वीकृति से उसका उपभोग करेगा। तीसर कर्तव्य- व्यक्ति का प्रकृति के प्रति है, प्रकृति की दी हुईशक्तियों को बर्बाद न करना, बल्कि उन्हें संरक्षण प्रदान करना, उसका उतना ही प्रयोग करना जितना आवश्यक हो। प्रकृति के साधन सबके लिए उपलब्ध हों, इस प्रकार से स्वयं व्यक्ति तथा समाज के लिए जो वस्तुएँ अपेक्षित हैं, उन सबका ट्रस्टी व्यक्ति होगा इस अर्थ में कि उसका उपभोग सारे समाज के लिए उपलब्ध हो सके और समाज की कर्तव्य शक्ति निरन्तर बढ़ती रहे।

गाँधी ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त को केवल पूंजीपति के लिए ही लागू नहीं करते है बल्कि यह सभी होता है। धन के अन्तर्गत न केवल धन ही नहीं आते हैं बल्कि बुद्धि शक्ति सभी धन के अन्तर्गत ही आते हैं।

'न्यासिता की स्थापना का विचार अपनी प्रकृति से एक नैतिक साध्य है और इस साध्य की प्राप्ति के लिए नैतिक बल पर आधारित नैतिक साधन ही अपनाये जाने चाहिए। गाँधी जी ने न्यासिता की स्थापना के लिए दो प्रमुख साधन बतायें हैं- (1) विचार-क्रांति का साधन; तथा (2) अहिंसात्मक असहयोग का साधन।

विचार-क्रांति एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से न्यासिता के सिद्धान्त के पक्ष में समाज में नैतिक चेतना जागृत की जा सकती है और धनिक वर्ग को भी आर्थिक समानता एव न्याय की स्थापना के लिए सहज प्रेरणा दी जा सकती है। गाँधी जी का मत है कि यदि न्यासिता की व्यवस्था में विचार-क्रांति के साधन से सफलता नहीं मिले, तो अहिंसात्मक असहयोग का साधन अपनाया जाना चाहिए इस साधन के अपनाने पर अन्त में धनिक वर्ग का हृदय-परिवर्तन होगा और वह स्वेच्छा से न्यासिता की व्यवस्था की स्थापना करना चाहेगा।

गाँधी जी ने स्पष्ट किया कि, भौतिक संपदा और विलासिता के साधनों के पीछे मनुष्य की अंधी दौड़ ही असमानता का मूल कारण है। अत: उन्होंने समानता की स्थापना के लिए भौतिकवादी दृष्टिकोण के परित्याग को आवश्यक माना। उन्होंने कहा कि अन्य लोगों की तुलना में अपने भौतिक कल्याण को महत्व देने की प्रवृत्ति लोगों में अनावश्यक प्रतियोगिता की भावना को जन्म देती है। उनका मत है कि जीवन के प्रति दृष्टिकोण में जब स्वार्थ केन्द्रीय तत्व बन जाता है, तब असमानता सामाजिक व्यवस्था का सहज तत्व बन जाता है, और शोषण और दमन असमानता के साथ जुड़ जाते हैं। इस प्रकार उनके मत में स्वार्थ ही समाज में असमानता, शोषण और दमन का मूल कारण है। वे आर्थिक सम्बन्धों में स्वार्थ-वृति का निराकरण करके एक समतामय समाज की स्थापना करना चाहते हैं। अर्थव्यवस्था के विकेन्द्रीकृत स्वरूप को अपना लेने के पश्चात् किसी व्यक्ति को विपुल मात्रा में संपत्ति के उपार्जन का असवर ही प्राप्त नहीं होगा, तथा जो सीमित संपदा वह अर्जित करेगा, उसमें से अपनी आवश्यकता भर रखने के पश्चात् शेष को समुदाय के हित में समर्पित करने में उसे संकोच या कष्ट नहीं होगा। गाँधी जी ने ध्यान दिलाया कि अपनी संपदा में से कुछ दान करने की प्रवृत्ति मानव स्वभाव का एक सहज तत्व है। भारतीय संस्कृति में तो दान को व्यक्ति के नैतिक ऊत्थान के लिए अनिवार्य माना गया है। गाँधीजी का विश्वास था कि सम्पत्ति के समान वितरण की समस्या के समाधान के लिए ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त होना चाहिए।

सारतः यही कहा जा सकता है कि गाँधीजी का संरक्षकता का सिद्धान्त तभी सफलतापूर्वक क्रियान्वित हो सकता है, जब व्यक्ति का नैतिक विकास अति उच्च स्तर पर हो। यदि पूंजीपति वास्तव में इस सिद्धान्त का आचरण करे तो निश्चय ही व्यक्ति का व्यक्ति द्वारा शोषण समाप्त हो जायेगा। यदि राष्ट्र इस सिद्धान्त की भावना को अपनाए तो अन्तर्राष्ट्रीय युद्धों के कारण कम हो जाऐंगे। संरक्षता का सिद्धान्त पूर्णत: अहिंसात्मक है, जिसमें अमीरों को यह विश्वास दिलाया जाता

है कि जो धन उनके पास है, वह जनता के श्रम का फल है, केवल उन्हीं के प्रयासों का फल नहीं। गांधीजी इस सिद्धान्त के माध्यम से पूंजीपतियों को सुधारना चाहते थे।

8.4 सारांश

महात्मा गाँधी के चिन्तन में व्यक्ति और समाज का विशेष महत्त्व है। उन्होंने मानव की सामाजिक समस्याओं और सामाजिक आधारों का अनुभव मूलक अध्ययन करने का प्रयास किया। गाँधीजी ने वर्णव्यवस्था जो प्राचीन काल से भारत में चली आ रही है, उसका व्यावहारिक आयाम प्रस्तुत करने का प्रयास किया। अस्पृश्यता जिसे मानव समाज के लिए कलंक माना जाता है उसे बाहरी आचरण या कानून के माध्यम से नहीं मिटाया जा सकता, उसे केवल मानव के विचार परिवतर्नन व हृदय परिवर्तन के माध्यम से ही मिटाया जा सकता है। आरम्भ से ही भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या रही है उनका विश्लेषणात्मक अध्ययन कर समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया। आज वैश्वीकरण और उदारीकरण के युग में गांधीजी के विचार समीचीन दिखायी देते हैं। उन्होंने आज के आध्यात्मिक और भौतिक उन्नति के लिए उन्हीं मशीनों का विरोध किया जो व्यक्ति को बेरोजगार बनाती हैं। समाज में सामाजिक एवं आर्थिक समानता लाने के लिए कायिक श्रम और स्वंदशा का महत्त्व बतलाया 'स्वदेशी एक सार्वभौमिक धर्म है। अन्त में पूंजीवाद की बुराईयों को कम करने के लिए उन्होंने ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त दिया। इस सिद्धान्त के अनुसार सम्पत्ति पर व्यक्तिगत स्वामित्व एवं उपभोग के साथ समाज को उपभोग करने का दायित्व स्वीकारना धर्म होता है। क्योंकि सम्पत्ति के सृजन में किसी न किसी रूप में समाज का सहयोग है। इस प्रकार गांधीजी ने भी अपने चिन्तन और प्रयोगों के माध्यम से सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

8.5 अभ्यास प्रश्न

1. गाँधी जी के सामाजिक विचारों को समझाइए।
2. गाँधी के आर्थिक चिन्तन का विश्लेषणात्मक अध्ययन कीजिए।
3. गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित श्रम और पूंजी के सम्बन्ध को समझाइए।
4. शारीरिक श्रम एवं कुटीर उद्योगों के महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।
5. ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त का विश्लेषणात्मक विवेचन कीजिए।

8.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भरतन् कुमरअप्पा सम्पादितद्ध सर्वोदय, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1984.
2. गाँगुली बी. एन., गांधीस सोशियल फिलोसफी : पर्सपेक्टिव एण्ड रलेवेन्स, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1973.
3. मेहता जे.के., गाँधीयन थॉट : एन एनालिटिकल स्टेडी, आशीष पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1985.

4. पारीक भिखु, गाँधी : अ वेरी शॉट इष्ट्रोडक्शन, ऑकरफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूर्याक, 2001.
5. सेठी जेडी, गांधी टुडे, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1978.
6. बांधोपाध्याय जे., सोशियल एण्ड पालिटिकल थोट ऑफ गांधी, अलाईड पब्लिशिर्स, 1969.

इकाई - 9

नारी सम्बन्धी गाँधी के विचार

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 उदारवादी गाँधी
9.3 तत्ववादी गाँधी
9.4 परिवार के प्रति दृष्टिकोण
9.5 कमजोर व अत्यधिक सुमेध स्थिति वाली स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण
9.6 नारी भी सांस्कूतिक संरचना में
9.7 लिंग-विभेद से परे
9.8 महिलायें व स्वरोजगार
9.9 स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की पुर्नसंरचना
9.10 लिंग-भेद व परिवार के बारे में पुनर्विचार
9.11 सारांश
9.12 अभ्यास प्रश्न
9.13 संदर्भ ग्रन्थ

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान जायेंगे कि:

- उदारवादी एवं तत्ववादी दृष्टिकोण के प्रति गाँधी की मान्यता
- महिलाओं के बारे में गाँधी के विचार
- परिवार के प्रति गाँधी का दृष्टिकोण
- महिलाओं के सशक्तीकरण के प्रति गाँधी का दृष्टिकोण

9.1 प्रस्तावना

नारी लेखन पर गाँधी की गहनता आधुनिक पाठक के लिए विस्मयकारी है। स्वतंत्रता आंदोलन और स्थानीय समुदाय क्षेत्रों में नारी जाति की राजनीतिक सक्रियता व सेवा का आग्रह गाँईग के सम्पूर्ण सार्वजनिक जीवन काल में निरन्तर बना रहा है। गांधी के नेतृत्व में चले स्वतंत्रता संघर्ष ने नारी चेतना के एक नये युग का आरम्भ किया अत: वहु भारतीय नारी मुक्ति की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था। स्वतंत्रता आदोजन में नारी जाति को सम्मिलित करके गाँधी ने नारी शक्ति के अद्भुत स्त्रोतों का दोहन किया और उसे राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में सकारात्मक शक्ति के रूप में प्रयुक्त किया।

अनेक बार गाँधी के विचार उन्नीसवीं व बीसवीं सदी के (पूर्वार्ध के) दार्शनिकों से मेल खाते हैं जो जे एस. मिल के समान नारी अधिकारों की वकालत करते हैं। इन सभी के दर्शन में हम नारी के लिए उन सभी समान अवसरों की माँग पाते हैं जो अभी तक उन्हें नहीं मिले थे। किन्तु साथ ही गाँधी उन उदारवादी पाश्चात्य (तथा अनेक बार पूर्वी) विचारकों से भी सहमत नजर आते हैं जो लिंग भेद के मूलभूत सिद्धान्त के पक्ष में हैं - अर्थात को घर की आवश्यकताओं की पूर्ति करने तथा सुरक्षा प्रदान करने के योग्य तथा स्त्री को बच्चों के लालन-पालन व गृह कार्य में दक्ष मानते हैं।

उपरोक्त सन्दर्भो के अतिरिक्त गाँधी दर्शन में अनेक स्थानों पर नारी की स्थिति का वर्णन, नारी को स्वायत्तता पर बल, भारतीय समाज में नारी संबंधित कुरीतियों पर कुठाराघात तथा लिंगभेद की आलोचना आदि बातें दृष्टिगोचर होती हैं। इनमें से अधिकांश स्थानों पर गाँधी स्थानीय स्तर पर परिस्थितियों और परम्पराओं की बात करते हु एसमाज के पिछड़े व शोशित वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन नारी लेखनों में ऐसा ही एक सन्दर्भ है जो समाज के पारम्परिक विवादास्पद लिंगभेद संबंधी प्रथाओं - जो पुरूष श्रेष्ठता का आग्रह रखता है - के विरूद्ध आवाज उठाता है।

9.2 उदारवादी गांधी

उदारवाद का अर्थ अनेक व्यक्तियों द्वारा अपने-अपने तरीके रो लगाया गया है, उसमें से एक अर्थ इस बात पर बल देता है कि प्रत्येक व्यक्ति समान है और प्रत्येक व्यक्ति के अपने कुछ अधिकार है। पारंपरिक उदारवाद के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने मूलभूत अधिकारों का उपभोग करना चाहिए और यह राज्य का कर्तव्य है कि वह उसके अधिकारों की रक्षा करे तथा व्यक्ति के अधिकारों में न्यूनतम हस्तक्षेप करे। व्यक्तिगत नागरिक समूहों अर्थात राज्य के अतिरिक्त अन्य समूहों की गतिविधियों को अपने अधिकारों के उपयोग के लिए सामान्यत: स्वाधीनता प्राप्त होती है।

गाँधी उदारवाद रवे असंख्य प्रकार से असहमत प्रकट होते हैं। उनके अनुसार अधिकार की उत्पत्ति कर्तव्य में से ही होती है, वे व्यक्तिवाद की अपेक्षा समूह की 'सामुदायिकता' पर अधिक बल देते हैं। साथ ही गाँधी का निरंतर ध्यान नागरिक समाज की उन प्रथाओं पर रहता थार जो व्यक्ति की गरिमा और स्वतंत्रता को बढ़ाती या घटाती है। यद्यपि वे उदारवाद के इस मूलभूत सिद्धांत से सहमत है कि प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा अनिवार्यत: बनी रहनी चाहिए। यही विचार उनके भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति की चेष्टा तथा भारतीय समाज से छूआछूत उन्मूलन की चेश्ठा के पीछे मूलत: प्रेरणादायक बना। स्त्री-पुराश संबंधो के संदर्भ में भी यही मूल विचार दृष्टिगोचर होता है।

27 मार्च 1931 को गाँधी के निर्देशन में अखिल भारतीय काँग्रेस का 45 वां अधिवेशन आरंभ हु आ, जिसमें भारतीय अधिकार पत्र का दावा किया गया जो आगे चलकर कॉन्स्पे न्ल्यू भारतीय संविधान का हिस्सा धोषित हु आ तथा बाद में संविधान का हिस्सा बना भी। गाँधी द्वारा अधिनियम प्रावधानों पर विशेष प्रसन्नता प्रकट की गयी जो न केवल राजनैतिक क्षेत्र में, बल्कि सार्वजनिक और आगार के क्षेत्र में तथा देश के सामाजिक संरचना के निर्माण के क्षेत्र में भी नारी

समानता पर बल देते हैं। पूर्ण उदारदारवादी शैली में गाँधी स्त्रियों के सम्पत्ति स्वामित्व के संदर्भ में पुरूषों से समानता संबंधी कानूनों का भी पुरजोर समर्थन करते हैं।

9.3 तत्ववादी गाँधी

तत्ववाद के अंतर्गत किसी वस्तु की मूलभूत अनिवार्य विषेशताओं का संज्ञान उसे समझने व उस पर कार्य करने के लिए आवश्यक है। लैंगिकता के विषय में एक प्रकार से गाँधी को तात्विक कहा जा सकता है। आत्मा के स्तर पर गाँधी स्त्री-पुरूष की पूर्ण समानता को स्वीकार करते हैं और दोनों को ही समान स्वायत्ता और गरिमा का अधिकारी मानते हैं, साथ ही वे स्त्री-पुरूष भिन्नता तथा पूरकता की अवधारणा का भी समर्थन करते हैं उनके अनुसार दोनों के कर्म क्षेत्र पृथक है तथा दोनों को अपने-अपने क्षेत्रों में कर्तव्य पालन करना चाहिए। यद्यपि दोनों के संबंधित क्षेत्र अनेक बार जटिल रुप से परस्पर गुथे हुए प्रतीत होते है तथा जो पुरूष वर्ग के लिए उपयुक्त जान पड़ता है वही स्त्री वर्ग के लिए भी उपयुक्तता जान पड़ता है। इस आधार पर किये गये वर्गीकरण में दोनों की विशेषताएँ व सांस्कृतिक आवश्यकताएँ सामान्यत: समान पायी जाती है।

कार्यक्षेत्र के वर्गीकरण के संदर्भ में गाँधी पारम्परिक ढांचे को स्वीकार करते हैं तथा पुरूष को आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु तथा स्त्री को बच्चों तथा घर की देखरेख के लिए जिम्मेदार मानते है। गाँधी के अनुसार स्त्री का प्राथमिक दायित्व घर की देखभाल है तथा अन्य किसी भी प्रकार का कार्य चाहे कृषि से संबंधित हो य कारखानों से अथवा, अन्य किसी भी स्थान से संबन्धित ही, वह मात्र अतिरिक्त समय में किया जाना चाहिए। पुरूष धर के लिए आपूर्ति के द्वारा तथा स्त्री धर के प्रबंधन के द्वारा, एक दूसरे के पूरक व सहयोगी बनते हैं। अत: स्त्री-पुरूष कार्य क्षेत्र की विभिन्नता के संदर्भ में गाँधी कोई संदेह नहीं रखते और सामाजिक, सांस्कृतिक व जैविक सभी स्तरों पर इस भिन्नता को आधार मानते हैं।

यद्यपि गाँधी के तत्ववाद पर संदेह नहीं किया जा सकता, तथापि कुछ संदर्भों में उनके तत्ववादी होने के स्तरों पर प्रश्न उठाया जा सकता है। गाँधी स्त्री के गृह कार्य के बाहर भी समय दिये जाने को उचित तो मानते हैं पर साथ ही स्त्रियों द्वारा पुरूषों की कुछ जैविक विशेषताओं (जैसे दृढ़ निश्चयता आदि) और पुरूषों द्वारा स्त्रियों की कुछ विशेषताओं (जैसे स्नेह व देखभाल की क्षमता) को अपनाए जाने की आवश्यकता अनुभव करते है। साथ ही वे नारी की मूलभूत क्षमताओं पर किसी प्रकार की सीमाओं को स्वीकार नहीं करते, चाहे वह उच्चतम राजनैतिक पदों को सम्हालने संबंधित कार्य ही हो।

संशोधित रुप में जो तत्ववाद गाँधी दर्शन में दृष्टिगोचर होता है, उसे पूर्णत: समझने के लिए मात्र नारी संबंधी विचारों का अध्ययन ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसके लिए उनका 'स्वायत्तता' संबंधी संपूर्ण दर्शन समझना आवश्यक है। गाँधी के लिए स्वायत्तता का अर्थ है कि नैतिक -व्यक्ति होने के नाते प्रत्येक मनुष्य को अपनी गरिमा बनाये रखने का अधिकार है किंतु साथ ही दूसरों की गरिमा बनाये रखने का कर्तव्य भी उससे जुड़ा है। सत्य के संदर्भ में उन्हें पुरूषार्थ की अवधारणा अत्यन्त प्रिय है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति बिना किसी भय अथवा दण्ड के सत्य के प्रति

अपनी विशिष्ट सोच विकसित करता है। गाँधी के अनुसार चूंकि परम सत्य को पूर्णत: समझ पाना किसी व्यक्ति के लिए संभव नहीं है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति सत्य के मात्र आंशिक पक्ष को ही ग्रहण कर पाता है। इस प्रकार से ग्रहण किए गए सत्य के आंशिक और वैयक्तिक पक्ष को अन्य व्यक्तियों पर आरोपित नहीं किया जाना चाहिए। ऐसे बाध्यकारी आरोपण गाँधी की दृष्टि में हिंसात्मक है क्योंकि हिंसा मात्र युद्ध या अपराधों तक सीमित नहीं होती वरन् अधिकांशतः हिंसा को संस्थाबद्ध कर दिया जाता है। यहीं पर हमें अछूत वर्गो की तथा महिलाओं की समस्या का उपचार नजर आता है। गाँधी के लिए प्रत्येक प्रकार की हिंसा अपने शिकार की स्वायत्तता का हरण करती है और इसलिए इसका विरोध किया जाना चाहिए।

9.4 परिवार के प्रति दृष्टिकोण

परिवार एवं विवाह गाँधी के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण संस्थाएँ है। प्रेम, सुरक्षा, शिक्षा तथा दूसरों के प्रति नैतिक उत्तरदायित्व की शिक्षा देने वाले अनेक अवसरों को गाँधी अपने पारिवारिक जीवन के मीठे पलों के रुप में स्वयं अपनी आत्मकथा में वर्णित करते है।

प्रत्येक व्यक्ति का जीवन परिवार से प्रारंभ होता है तथा प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे पर निर्भर रहता है। पारिवारिक घटनाओ का सबसे गहन प्रभाव परिवार के सबसे छोटे सदस्यों पर पड़ता है, यद्यपि वे इसे प्रभावित करने में सबसे कम क्षमतावान होते है। गाँधी परिवार के आर्थिक स्वावलम्बन की आवश्यकता पर बल देते है जिसमें परिवार के सदस्य गरिमापूर्ण तथा परस्पर सम्मानपूर्ण तरीके से अपना योगदान देते है। परिवार के बच्चों के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करने के लिए गांधी अनेक बातों को आवश्यक मानते हैं प्रथमतः वयस्क सदस्यों को परिवार की जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होती है। 'आधुनिकता' का विरोध करने का यह भी एक कारण गाँधी मानते है, क्योंकि इस आधुनिकता के कारण ही व्यापक स्तर पर बेरोजगारी और अल्परोजगारी भारतीय समाज में फैली है जिससे उपरोक्त जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति कठिन हो जाती है। द्वितीय- गाँधी परिवारों को ऐसे समाज की स्थापना करने पर जोर देते हैं जहां नैतिक मूल्यों को भूतकाल की अवधारणा कह कर उपेक्षित नहीं किया जाता वरन् नैसर्गिक तौर पर नैतिक मूल्यों का पालन किया जाता है। तृतीय, वे परिवार के सदस्यों की स्वायत्तता को न केवल पारिवारिक स्तर पर, बल्कि वृहद सामाजिक स्तर पर भी आवश्यक मानते है। इस अंतिम आवश्यकता के संदर्भ में गाँधी उन प्रचलित भारतीय पारिवारिक परम्पराओं के पुननिर्माण का आह्वान करते है, जो पुरूष प्रधानता की स्थापना करते है।

गाँधी इस तथ्य से अवगत थे कि अधिकांश भारतीय स्त्रियां गृहकार्य व उससे संबंधित दायित्वों तक सीमित है और पारिवारिक परिस्थितियाँ उनकी स्वायत्तता का पूर्ण हरण कर लेती है। पारिवारिक सदस्यों के परस्पर संबंध समानता के स्तर पर या फिर क्रम- सोपान के स्तर पर हो सकते हैं। अपने अध्ययन की समग्रता में गाँधी उन सभी व्यक्तियों की दशाओं पर चिंतन करते है जिनकी स्थिति परिवार व समाज में सुभेद्य व नाजुक है। इस प्रकार वे उदारवाद के अमूर्त 'व्यक्ति

और अधिकारों' की बात नहीं करते बल्कि संबंधित व्यक्ति की विशिष्ट भूमिका (जैसे माँ अथवा पत्नी) के स्तर पर आकर हल खोजने का समर्थन करते हैं।

गाँधी बह्मचर्य पर बल देते हैं, यद्यपि उनके अनुसार यह पवित्रता स्त्री-पुरूष के उस पारस्परिक जुड़ाव अथवा गठबंधन पर तनिक भी कुठाराघात नहीं करती, जिसका गाँधी समर्थन करते है। विवाह गाँधी के लिए पूर्णत: स्वाभाविक है और किसी भी अर्थ में उसकी आलोचना ने उचित नहीं मानते। विवाह में दोनों पक्षों की पूर्ण स्वीकृति एक अनिवार्य आवश्यकता है और इसीलिए वे बाल-विवाह का पूर्ण विरोध करते है। इसी आधार पर वे दहेज प्रथा का भी विरोध करते हैं, जो उनकी नजर में 'लड़कियों के विक्रय' के समान दूषित प्रथा है। गाँधी इसे माता-पिता का दायित्व मानते है कि वे अपनी बालिकाओं की शिक्षा-दीक्षा इस प्रकार करें कि वे स्वयं दहेज आधारित विवाह को अस्वीकार कर दे तथा ऐसी मांग करने वाले व्यक्ति से रिश्ता तय करने की अपेक्षा कुंवारी रहना पसंद करे। विवाह का एकमात्र सम्मानीय आधार पारस्पारेक प्रेम व सहमति होना चाहिए। उपरोक्त प्रकार के परिवर्तनों से न केवल दहेज प्रथा का अंत होगा, बल्कि माता-पिता अपने बालकों व बालिकाओं का लालन-पालन भी समान तरीके से करेंगे।

इसके अतिरिक्त, दहेज प्रथा और जातिगत बाध्यता के कारण विवाह क्षेत्र में व्यक्ति की स्वतंत्रता अत्यंत सीमित हो जाती है। फलतः गाँधी दहेज प्रथा का विरोध करते है तथा विवाह को माता-पिता द्वारा एक क्रय-विक्रय की प्रक्रिया में परिणित होने से रोकने की भी बात करते है। दहेज प्रथा जातिगत बाध्यता से जुड़ी हुई समस्या है, क्योंकि यदि विवाह की स्वतंत्रता कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित होती है तो इस प्रथा को समाप्त करना कठिन है। अत: दहेज प्रथा के अंत के लिए माता-पिता अथवा कन्या व वर को जाति की सीमाओं से परे जाना होगा। इन सब के लिए एक ऐसी चारित्रिक शिक्षा की आवश्यकता है जो युवा पीढ़ी की सम्पूर्ण मानसिकता में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सके।

किसी भी विवाह में दोनों पक्षों का स्वत: प्रेरित होना आवश्यक है, और स्त्रियों के संबंध में शारीरिक रुप से स्वायत्त होना विशिष्ट महत्व रखता है। गांधी विवाह में शारीरिक संबंधों को महत्वपूर्ण मानते हैं, किंतु वे उसके बाध्यकारी स्वरूप के स्थान पर स्त्रियों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति होने की आवश्यकता पर बल देते है। उनके अनुसार किसी पुरूष को अपनी पत्नी को स्पर्श करने का अधिकार तब तक नहीं प्राप्त होता, जब तक पत्नी संतानोत्पति की इच्छा नहीं रखती और इस संबंध में गाँधी पत्नियों को भी दृढ़ इच्छा-शक्ति रखने का समर्थन करते है। किसी भी समाज और संस्कृति में प्रधानतावादी प्रवृतियों व उनकी अभिव्यक्ति के प्रति गाँधी अत्यंत सजग थे और वे उन सभी प्रथाओं का विरोध करते थे जो स्वयं के संबंध में निर्णय लेने हेतु पुरुषों को तो स्वतंत्रता देती थी लेकिन स्त्रियों को नहीं। उदाहरणार्थ, विधुर होने पर पूर्ण उदासीनता के साथ पुरूष का पुनः विवाह कर दिया जाता है, जबकि गाँधी के अनुसार पुनः विवाह कर दिया जाता है, जबकि गाँधी के अनुसार पुनः विवाह का अधिकार यदि मात्र पुरूष को प्राप्त है और स्त्रियों को नहीं, तो ऐसा समाज व्यक्ति की गरिमा और स्वायत्तता पर आधारित नहीं है। यदि मूल स्वतंत्रता किसी एक वर्ग के पास है तो वह सभी को प्राप्त होनी चाहिए।

गाँधी इस तथ्य से परिचित थे कि हिंसा और अधिनायकत्व कहीं भी और किसी भी स्थान पर सिर उठा सकता है, किंतु वे उसके औचित्य को स्वीकार नहीं करते, चाहे वह किसी भी समय या स्थान पर विद्यमान हो। यद्यपि राजनैतिक क्षेत्र में उनका आग्रह राज्य, राष्ट्रीय आंदोलन अथवा अंतर्राष्ट्रीय विवादों से संबंधित होता था परंतु वे सामाजिक व पारिवारिक स्तर पर हिंसा की अभिव्यक्ति से चिंतित थे। उनके अनुसार अहिंसा का सिद्धांत निश्चित तौर पर सभी स्थानों पर आग होता है चाहे पारिवारिक संबंध हो या अधिकारिक सत्ताधारी के साथ संबंध हो। अहिंसा का सिद्धांत आंतरिक अव्यवस्थाओं बाह्य आक्रमणों आदि सभी पर समान रुप से लागू होता है। दूसरे शब्दों में अहिंसा की क्रियान्विति सभी मानवीय संबंधों तक व्याप्त होनी चाहिए। उल्लेखनीय है कि उपरोक्त सभी संबंधों के उदाहरणों में 'शक्ति' की व्याख्या की गई है। गाँधी द्वारा पारिवारिक संबंधों को प्रथम स्थान पर लिया गया है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अनिवार्य और महत्वपूर्ण रुप से पारिवारिक स्तर पर जुड़ा होता है। गाँधी पारिवारिक स्तर पर विद्यमान उरग शक्ति और पद सोपान क्रम की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहते है जो हिंसात्मक शैली में प्रकट होता है।

पारिवारिक संबंधो में गाँधी द्वारा अहिंसा का आग्रह तथा परिवार के सदस्यों की स्वायत्तता का स्थापन एक नैतिक आवश्यकता बताया। सभी सदस्यों को साधन नहीं वरन साध्य माना जाना चाहिए। हिंसा और अधिनाग्रकवादी प्रवृत्तियों की समाप्ति के अतिरिक्त गाँधी अन्य बातों के साथ ये भी प्रावधान स्थापित करना चाहते है कि लिंग भेद से परे जाकर प्रत्येक पारिवारिक सदस्य को समान स्तर प्राप्त हो।

9.5 कमजोर व अत्यधिक सुमेध स्थिति वाली स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण

पारंपरिक विवाह पद्धति में नारी द्वारा सामना की जाने वाली समस्याओं के अतिरिक्त गांधी समाज की सबसे कमजोर वर्ग की स्त्रियों की भी चर्चा करते है। उनके अनुसार गरीबी और सामाजिक भेद-भाव स्वयं अपने में एक अभिशाप है किंतु स्त्रियों के संबंध में इसका कुप्रभाव कई गुणा बढ़ जाता है।

गाँधी मानते है कि अन्य स्वतंत्रताओं के समान स्त्रियों की सामाजिक स्वतंत्रता भी प्रभावित होती है, उसे अनेक सामाजिक प्रथाओं जैसे- बाल-विवाह, बाल वैधव्य, वैष्यावृति, अंधविश्वास, पर्दाप्रथा, मदिरापान और आर्थिक निर्भरता आदि के द्वारा बाधित किया जा सकता है।

बाल विवाह विरोधी समिति द्वारा बाल-विवाह एवं बाल-वैधव्य पर एक सर्वेक्षण व उसकी रिपोर्ट प्रस्तुत की गई, जिस पर गाँधी की प्रतिक्रिया उनके इस संबंध में चिंता के स्तर को दर्शाती है। रिपोर्ट के अनुसार ''सन् 1921 में एक वर्ष से कम उस की पत्नियों की संख्या 9066 थी, जो 1931 में बढ़कर 44082 हो गयी। यह वृद्धि दर पांच गुणा अधिक थी, जबकि जनसंख्या में वृद्धि दर मात्र 1/10 प्रतिशत की थी। इसी प्रकार 1921 में बाल -विधवाओं की संख्या 759 थी जो कि 1931 में बढ़ कर 1515 हो गयी। जनसंख्या की वृद्धि दर उपरोक्त समस्याओं के समाधान की गति से कहीं अधिक है।"

गाँधी के अनुसार ''धर्म अथवा परम्परा द्वारा आरोपित बाध्यकारी वैधव्य एक असहनीय स्थिति है जो घरों को भ्रष्ट व धर्म को अपमानित करती है।''

यद्यपि कानून के द्वारा इस प्रथा को वर्जित करने का वे स्वागत करते है, परंतु गाँधी का अधिक विकास एक प्रबुद्ध नागरिक चेतना को जाग्रत करने में है। वे उन सभी माता-पिताओं की आलोचना करते है जो शैशवस्था में ही बालिकाओं का विवाह कर देते है और साथ ही उन बालिकाओं के पुन: विवाह का आग्रह भी करते है यदि उनके प्रस्तावित पतियों की मृत्यु हो जाये। गाँधी के अनुसार वैधव्य के बाद पुर्नविवाह करने या ना करने का निर्णय पूर्णत: स्वयं स्त्रियों का होना चाहिए। उनके अनुसार 'यदि मुझसे इस संबंध में नियम के बारे में पूछा जाए तो वह नियम स्त्री व पुरूष दोनों के लिए समान होना चाहिए।''

गाँधी 'वेश्यावृति' के बारे में भी चिन्तित थे। जिसे वे शोषण का भद्दा रुप मानते थे जिसमें कि वेश्याओं को एक पुरूष को खुशी प्रदान करने के साधन के रुप में माना जाता है। यह वह चीज है जो उनके सार्वभौम-सम्मान के तर्को के विपरीत है और उनके इस दावे के भी विपरीत है कि स्वयं के उद्देश्यों के लिए किसी को भी एक दस्तु' की तरह व्यवहित नहीं किया जाना चाहिए। ''यह मानवता के लिए बेहद शर्म और दुख की बात है कि बड़ी संस्था में महिलाओं को अपनी 'पवित्रता' पुरूष की स्त्री-भोग की लालसा के लिए बेचनी पड़ती है। पुरूष जो नियम-निर्माता है, को महिलाओं की इस दुर्दशा के लिए भयानक दंड भुगतना होगा।' इसी भाव से गाँधी ने देवदासी प्रथा पर भी रोष प्रकट किया, जो कि मुख्यत: दक्षिण भारतीय हिंदू समुदायों में प्रचलित है जहाँ युवा लड़कियाँ धार्मिक देवताओं के समक्ष नाचती गाती हैं और बाद में उन्हें पुजारियों और धनाढ्य मंदिर संरक्षकों की काम-भावना को संतुष्ट करने के लिए बाध्य किया जाता है। गाँधी टिप्पणी करते हैं कि सभी पुरूषों को शर्म से फाँसी पर लटक जाना चाहिए तब तक, जब तक कि ''एक भी महिला को वासना की दृष्टि से देखा जाता है।''

गाँधी के अनुसार महिलाओं पर लैगींक प्रभुत्व न सिर्फ सक्रिय लैगींक गतिविधियों में व्यक्त होता है जिसमें महिलाऐं आनंद के साधन के रूप में प्रयुक्त की जाती हैं बल्कि यह पुरूषों के महिलाओं की 'पवित्रता' के प्रति अत्यधिक आग्रह में भी प्रकट होता है। पर्दा प्रथा के बारे में बताते हुए उन्होंने टिप्पणी की कि पवित्रता कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे जबरन लादा जा सके। उन्हें लगता था कि एक महिला के लैगिक व्यवहार का निश्चय प्रत्येक महिला द्वारा व्यक्तिगत रुप से ही होना चाहिए। उनके अनुसार नैतिकता के विधान नहीं बनाये जा सकते। यह तो लिंग भेद से परे स्वतंत्र लोगों के स्वतंत्र चयन में प्रतिबिम्बित होती है। इसके अलावा, गाँधी पुरूषों के दोहरे मापदण्डों से व्याकुल थे जो कि पुरूषों के अपने लैगिक व्यवहार की नैतिक शुद्धता के संबंध में तो उदासीन हैं पर महिलाओं के संदर्भ में इनका आश्रय हमेशा लिया जाता है।

अपने पूरे सार्वजनिक जीवन में गाँधी समाज के सर्वाधिक कमजोर लोगों का मार्गदर्शन करते रहे वे जहाँ भी उन्हें मिले, और वे उन्हें हर जगह मिले। अस्पृश्यता, सांप्रदायिक द्वेष, बेरोजगारी और अल्प बेरोजगारी और उपनिवेशवाद के विरुद्ध अभियान उनकी नैतिक प्रतिबद्धताओं की सुविदित अभिव्यक्तियाँ हैं। ये महिलाओं की स्थिति और भूमिका से भी संबंधित हैं तथा उन

सबसे भी जो दरकिनार कर दिये गये हैं क्योंकि वे छोटे है, वंचित है या त्रस्त हैं! उनकी -योजना का एक भाग महिलाओं के प्रति प्रचलित व्यवहार को चुनौती देना भी था, जो इसके महिलाओं को नीचा दिखाने वाले अर्थो को उद्घाटित करने व उसकी निंदा करने के उनके प्रयत्नों के रूप में सामने आता है।

9.6 नारी की सांस्कृतिक संरचनाएँ

अपने समस्त तत्ववाद के साथ, गाँधी ने उन तरीकों की प्रशंसा की जिनमें महिलायें अपनी संस्कृति द्वारा संरचित होती हैं। यह संरचना एकदम भिन्न दो रूपों में दिखाई देती है। पहला, जिसे हटाने के लिए गाँधी ने प्रयास किये और दूसरा वह जिसे गांधी बढ़ावा देना चाहते थे। पहला इस विचार से संबद्ध है कि महिलायें पुरूष की अधीनस्थ हैं, जिनकी उनके पिता व पति से अलग कोई पहचान नहीं है। दूसरा, महिलाओं के संरक्षिकाओं के रुप में समाजीकरण से संबद्ध है, जो कि गाँधी की नजर में, पुरूषों की तुलना में अधिक स्नेहशील, धैर्यवान और कम आक्रामक हैं।

पहले मुछे के विरुद्ध, गाँधी ने स्त्री पुरूष संबंधो के संदर्भ में प्रचलित परंपराओं में से कुछ को चुनौती दी। दृढ़ विष्वास से उन्होंने कहा, ''धर्मग्रन्थों में जो कुछ भी लिखा हु आहै उसे ईश्वरीय वाणी मानने की जरूरत नहीं है।'' बल्कि उन्होंने सुझाव दिया कि धर्मग्रन्धों के नाम पर सत्ताधारियों द्वारा जो कुछ भी रचा गया है उसमें से जो भी ''धर्म व नैतिकता के आधारभूत सिद्धांतों के विरुद्ध'' है, उसका सुधार व परिष्कार होना चाहिए। इस संदर्भ में गाँधी ने स्मृतियों में मौजूद महिलाओं से संबंधित क्रूर व अपमानजनक उदाहरणों को प्रस्तुत किया :

> **“पत्नी का कर्तव्य है कि वह पति को भगवान की तरह माने चाहे वह चरित्रहीन, कामी और सद्गुणों से रहित ही क्यों न हो।'' (“मनु'', 5-154)**
>
> **''स्त्रियों को अपने पतियों की आज्ञा का पालन करना चाहिए, यही उनका प्रमुख कर्तव्य है।” (याज्ञवल्वय 1 -18)**
>
> **'स्त्री के लिए पति की आज्ञा से बढ़कर कुछ भी नहीं है, वह जो अपने पति को अप्रसन्न करती है वह मृत्यु के बाद उसके लोक कभी नहीं जा सकती, इसलिए उसे कभी भी पति को अप्रसन्न नहीं करना चाहिए।'' (वशिष्ठ'' 21-4)**
>
> **'वह स्त्री जो अपने पितृ-कुल पर गर्व करती है और पति की अवज्ञा करती है उसे राजा द्वारा लोगों के बड़े समूह के सामने कानों का खाद्य बना दिया जाना चाहिए।'' (''मनु''8-371)**

महिलाओं के लिए आवश्यक गुण तय करने वाले ऐसे विचारों को चुनौती दी जानी चाहिए व नष्ट किया जाना चाहिए, और ऐसा ही प्रयास गाँधी ने भी किया। उन्होंने पाया कि, ''प्राचीन नियम ग्रंथों के उन रचयिताओं के द्वारा बनाये गये जो पुरूष थे, इस वजह से महिलाओं के अनुभवों को उनमें प्रतिनिधित्व नहीं मिला। दृढ़ शब्दों में पुरूष व स्त्री में से किसी को भी उच्चतर या निम्नतर नहीं कहा जाना चाहिए।'' इस लक्ष्य को पाने के लिए गाँधी चाहते थे कि महिलाऐं उन संरचनाओं को तोड़ने में संलग्न हों जो उनके लिए रची गई हैं। यह करने के लिए, माहेलाओ हेतु आवश्यक है कि वे इन परंपरागत मान्यताओं की धमकी में आने से इंकार कर दें और स्वय को इस सामाजिक व्यवस्था में निम्नतर स्थिति में रखा जाना अस्वीकृत कर दें। जैसा कि गाँधी मानते थे

कि "येन केन प्रकारेण पुरूषों का युगों से महिलाओं पर आधिपत्य रहा है इसलिए महिलाओं में एक हीन ग्रंथि विकसित हो गई है। उसने पुरूषों के इस प्रिय उपदेश के सत्य में विकास कर लिया है कि वह उससे हीन है।"

बहु पत्नी प्रथा व एक प्रथा संबंधी उनके तर्को में सामाजिक रीतियों की संरचनात्मकता तथा विशेषत: लिंग संबंधों के बारे में उनकी सोच प्रकट होती है। प्रथम को स्वीकार्य न मानते हु ए द्वितीय को उन्होंने महिला और पुरूष के मध्य घनिष्ठ ऐश्क्र्य की अभिव्यक्ति माना। उन्होंने पुनर्स्मरण किया कि "यद्यपि द्रोपदी के एक समय में पाँच पति थे फिर भी उसे पवित्र कहा जाता था।" उस युग में ऐसा इसलिए था, क्योंकि जैसे एक पुरूष कई स्त्रियों से विवाह कर सकता था वैरने ही (कुछ क्षेत्रों में) एक स्त्री भी एक से अधिक पति अपना सकती थी। विवाह संहिताओं में समय और स्थान के अनुरुप बदलाव आता है।

यदि हम मानवीय संबंधों की मूल संकल्पनाओं में परिवर्तन और उनका पुनर्व्यवस्थीकरण करना चाहे तो गाँधी तर्क देते हैं कि हमें उन संबंधों के दृढ़ रूप को चुनौती देनी होगी जो कि सामाजिक रीतियों में मजबूती से जमे हु ए हैं तथा जो कुछ को अधिपति जबकि अन्य को हीन व अधीनस्थ होने को मजबूर करते हैं।

गाँधी के लिए, हमें दृढ़ निश्चयी होकर यह तय करने की आवश्यकता है कि कौनसी सामाजिक रीतियाँ प्रत्येक व्यक्ति को मूल्यवान व सम्माननीय बनाती हैं और एक आलोचनात्मक आवाज उठानी होगी जिसमें उन्हें शामिल करना होगा जिन्हें समकालीन व्यवस्था में दरकिनार कर दिया गया है।

9.7 लिंग-विभेद से परे

गाँधी यह भी सोचते थे कि महिलाओं को वैसा ही सिखाया जाता रहा है और उनमें वे आंतरिक सद्गुण भी होते हैं, विशेष रुप से अहिंसा, जो कि वैरने रूप में अधिकांश पुरूषों में नहीं होती, जिनको कि निश्चयी और आक्रामक होने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। उन्होंने महिलाओं को "अहिंसा का अवतार' कहा क्योंकि उनके पास पीड़ा सहने की अनंत शक्ति होती है। गाँधी जोर देते हैं कि "युगों से पुरूषों को हिंसा का प्रशिक्षण मिला है। अहिंसक बनने के लिए उन्हें स्त्रियोचित विशेषताओ को अपनाना होगा। उन्होंने कहा, "मैं जितना ज्यादा अहिंसक होता जाता हूँ। यहाँ और अन्यत्र भी, गाँधी स्त्री पुरूष संबंधों की पारंपरिक सोच से परे जाना चाहते थे। उन्होंने कहा कि मेरा आदर्श यह है कि एक पुरूष को पुरूष रहना चाहिए, पर इसके साथ-साथ उसे स्त्री भी बनना चाहिए, बिल्कुल इसी तरह से एक स्त्री को भी स्त्री बने रहना चाहिए पर इसके साथ उसे पुरूष भी बनना होगा। इसका मतलब है कि पुरूष को महिलाओं जैसी भद्रता और विवेक को अपनाना चाहिए और महिलाओं को भी अपनी कायरता को छोड़कर बहादुर और साहसी बन जाना चाहिए। गांधी के लिए, विभेद करने वाली सांस्कृतिक और मनौवैज्ञानिक विषेशताओं को, जिन्हें कि पारंपरिक रूप से विशेषत: एक लिंग के लिए निर्दिष्ट किया गया है जबकि दूसरे के लिए नहीं, को एक संरचना के तौर पर देखा जाना चाहिए और इसीलिए उन्हें परिवर्तन की दृष्टि से भी देखना चाहिए। उदाहरण के तौर

पर 'साहस' एक मात्र पुराणों की विशेषता नहीं है बल्कि यह एक सद्गुण है जो उस प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है जो स्वायत्त होना चाहता है।" पुरूष व स्त्री दोनों निडर हो सकते हैं। पुरुष सोचता है कि वह निडर है लेकिन यह हमेशा सत्य नहीं होता, वैसे ही महिलायें भी सोचती हैं कि वे कमजोर हैं और स्वय को वैसा कहलाने भी देती हैं लेकिन यह भी सत्य नहीं है।"

गाँधी के लिए, संरक्षकों जैसी उत्तरदायित्व वहनता, नैतिक श्रेष्ठता, सभ्य मानसिकता तथा समाज सेवा अपेक्षित गुण हैं जो कि स्त्री या पुरूष में से किसी एक ही के पास होना संभव नहीं। ऐसा करने के लिए स्त्री या पुरूष में से प्रत्येक को उन पारंपरिक विचारों को त्यागना होगा जो यह बताते हैं कि स्त्री या पुरूष होने का क्या अर्थ है। इस तरह विभाजन न केवल उन्नति व विकास में बाधक बनते हैं बल्कि लोगों को केवल उन्हीं के वर्ग के लिए तयशुदा कार्य करने के लिए विवश कर देते हैं। इसका यह भी निहितार्थ है कि स्त्री व पुरूष दोनों स्वयं को पूर्ण भी केवल तब ही महसूस करें जब वे वर्षो से उस वर्ग के लिए निर्धारित कार्यो को करें। इस प्रकार 'वास्तविक' (Real) पुरूष आक्रामक है पर स्नेहशील नहीं है, 'वास्तविक' स्त्री धैर्ययुत्क है पर साहसी नहीं है। ऐसा मानना, जो कि गाँधी के लिए निराशाजनक है, पुरूषों व महिलाओं द्वारा स्वयं को अनावश्यक तत्वों तक सीमित करने देना है और स्वय को पतन के गर्त में धकेल देना है।

9.8 महिलायें व स्व रोजगार

यदि महिलाओं को साधन नहीं वरन् साध्य बनाया जाना है तो पुरूषों को जल्द ही स्वयं को उनका स्वामी नहीं वरन् साथी व सहकर्मी मानना होगा। फिर भी गाँधी पुरूषों से यह अपेक्षा नहीं करते कि वे स्वयं ही अपने आधिपत्यपूर्ण संबंधों को परिवर्तित कर देंगे। समानता की तरफ पहला कदम महिलाओं को ही उठाना होगा। महिलाओं के लिए सरल तरीका यह है कि वे अपनी स्वायत्तता और स्वयं को एक पदार्थ माने जाने के विरुद्ध मांग उठाने की पहल करें। गाँधी ने आग्रह किया कि वे स्वयं को "गुड़िया और दिल बहलाने की वस्तु" बनाये जाने से इंकार कर दें तथा समान सेवाओं में समान माने जाने पर जोर दें। गाँधी के अनुसार वर्तमान में स्त्री-पुरूष संबंधों का उपचार पुरूषों के हाथों में जितना है, उससे ज्यादा महिलाओं के हाथों में है। यदि वे पुरूष की सहयोगी बनना चाहती हैं तो महिलाओं को पुरूषों के लिए, पति के लिए भी, खुद को सजाये जाने से इनकार कर देना चाहिए। यदि महिलाएँ समान होना चाहती हैं तो तीव्र विरोधों में भी स्वयं की पहचान शापित में कमजोर न बनें। ताकत पाशविक ताकत नहीं होती बल्कि 'नैतिक शक्ति' होती है और इस मामले में गाँधी ने जोर दिया कि "महिलाएँ निस्संदेह पुरूषों से उपर हैं। 'गाँधी ने हिंदू धर्म ग्रन्थों से सात पवित्र महिलाओं के उदाहरण प्रस्तुत किये, जैसे सीता व द्रोपदी, जिन्होंने अपनी अमर प्रसिद्धि अपने पतियों को खुद के शारीरिक आकर्षण से प्रसन्न करके नहीं बल्कि स्वाधीन महिला व पत्नी के रूप में अपनी भूमिका निभाने से प्राप्त की।

गाँधी ने पाया कि निस्संदेह पुरूषों पर महिलाओं की उपेक्षा व दुर्व्यवहार के लिए दोषारोपण किया जा सकता है और उन्हें बदलना होगा। पर महिलाओं को भी अपने अंधविश्वासों को छोड़ना होगा और स्वयं व अन्य महिलाओं के साथ हो रहे गलत कार्यो के प्रति जागरुक होना होगा।

महिलाओं को संरचनात्मक सुधार के वास्तविक कार्य करने होंगे। ये कार्य हैं- महिला स्वतंत्रता, भारतीय स्वतंत्रता, अस्पृश्यता निवारण, गाँवों की आर्थिक दशा में सुधार, ग्रामीण जीवन का पुन: निर्माण व सुधार।

परिवर्तन का पहला प्रयास, ज्यादा से ज्यादा महिलाओं को यह दिखाने की दिशा में होना चाहिए कि उनकी स्थिति की बनावट क्या है और यह महिलाओं का प्राथमिक कार्य है कि वे वर्तमान स्त्री पुरूष संबंधों की संरचना को पहचानें और उसके विरुद्ध विद्रोह करें। गाँधी 'महिला कार्यकर्ता' चाहते थे ''जो महिलाओं का मतदाता के रुप में नाम लिखवाये, उन्हें व्यावहारिक शिक्षा प्रदान करें, उन्हें स्वतंत्र रुप से सोचना सिखायें उन्हें जाति के बंधनों से मुक्त करायें, ताकि उनमें परिवर्तन लाया जा सके। नारी-शक्ति की विमति में ये सब परिपूरक प्रयत्न होंगे। ''इन महिला कार्यकर्ताओं को अन्य महिलाओं को यह दिखाना होगा कि उनकी भूमिकाएँ न तो प्रकृति और न ही धर्मग्रंथों द्वारा आदेशित हैं बल्कि ये तो कमजोर के उपर शक्तिशालियो द्वारा की गई संरचनाएँ है, और उन्हें यह जानने की आवश्यकता है कि वे अपना जीवन स्वयं संभाल सकती हैं। इसके लिए किसी औपचारिक शिक्षा की आवश्यकता नहीं है, हालांकि गाँधी जोर देते हैं कि महिलाओं के लिए शिक्षा अंततः एक अनिवार्यता है। क्योंकि यह उन्हें अपनी स्वाधीनता बचाये रखने में सक्षम बनाती है, बुद्धिमत्तापूर्वक चयन करने की क्षमता देती है और अपने सशक्तीकरण के लिए कार्य करने को प्रेरित करती है। गाँधी सोचते थे कि नारी स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए राज्य के कार्य पर्याप्त नहीं, हालांकि कभी-कभी आवश्यक हैं। प्राथमिक महत्व की बात तो यह है कि महिलाओं को स्वयं को एक सामाजिक ताकत के रूप में उभारना होगा। दूसरे शब्दों में केवल महिलाएँ ही संगठित तरीके से आगे आने पर युगों से चली आ रही अपनी दुर्गति को दूर कर पाने में समर्थ हो पायेंगी।

9.9 स्त्री-पुरूष संबंधों की पुनर्संरचना

हिन्द स्वराज में, बल्कि वस्तुत: गाँधी की अन्य सभी रचनाओं में स्पष्टत:, एक ही नहीं वरन् आपस में गुंथी हुई परियोजनाओं का एक पूरा समूह है जो विभिन्न ग्रइमकाओं में व्यक्ति के सम्मान व महत्व के लक्ष्य से जुड़ा हुआ है। ये योजनाएँ उन सब से संबंधित हैं जो परिधि पर हैं चाहे वे युद्ध पीड़ित हों, उपनिवेशवादी साम्राज्य के अंग हों, जाति व्यवस्था में अस्पृश्य हों, औद्योगीकृत अर्थव्यवस्था में बेरोजगार हों या पुरूष प्रधान समाज में महिलाएँ हो।

गाँधी स्वतंत्रता को समाज में स्थित मानते थे जिसे, उनका मानना था कि केवल राज्य द्वारा ही नहीं वरन् सामाजिक रीतियों व संस्थाओं द्वारा भी छीना जा सकता हैं। पूर्ण आर्थिक धार्मिक असमानता, औद्योगीकरण और बेरोजगारी, अस्पृश्यता, पितृसत्तात्मक, रूढ़ियाँ एवं विभिन्न अंधविश्वास इसके उदाहरण हैं। इन अक्षमताओं का मुकाबला करने के लिए गाँधी ने कदाचित् ही राज्य से यह अपेक्षा की हो कि वह बलपूर्वक स्वतंत्रता को स्थापित करे। इसका एक कारण यह है कि वे हमेशा शक्ति संकेन्द्रण के प्रति सशंकित थे जिसकी परिणति उनकी दृष्टि में, व्यक्तिगत स्वतंत्रता के हनन के रुप में होती है।

स्वतंत्रता, जैसा कि गाँधी ने उसे जाना, समानता व उत्तरदायित्व दोनों से घनिष्ठत: संबंधित है। भिन्न-भिन्न पृष्ठभूमि, संसाधनों, स्थिति व शक्ति वाले समाजों में लोगों के लिए यह जानना कठिन होता है कि वे किस तरह दूसरों को प्रभावित कर रहें हैं। केवल तब जब कि लोगों को पृथक करने वाली भिन्नताऐं तुलनात्मक रूप से कम हों तब व्यक्ति दूसरों पर अपने कार्यो के प्रभाव को पहचान पायेंगे। केवल इस स्थिति में स्वतंत्रता व उत्तरदायित्व संयुक्ता हो सकेंगे।

गाँधी ने आजीवन संकल्प को इस पर्यवेक्षण के साथ व्यक्त किया, "मेरा कार्य समाप्त हो जायेगा यदि मैं मानव परिवार से यह दृढ़ निश्चय करवाने में सफल हो जाऊँ कि प्रत्येक पुरूष या स्त्री चाहे वह शारीरिक रूप से कमजोर हो, अपने आत्मसम्मान और स्वतंत्रता की रक्षा करेगा।"

जब हम लैंगिक समानता के मुद्द की तरफ मुड़ते हैं तो पाते हैं कि गाँधी ने बढ़ चढ़ कर महिला अधिकारों व लैगिक समानता का पक्ष पोषण किया है। इसी के साथ, गाँधी के लिंग भेद व विवाह से संबंधित तात्विक विचारों को छोड़ पाना असंभव है। बारीकी से जाँचने पर पता चलता है कि यह तात्विकता कई महत्वपूर्ण तरीकों से, अपने परम्परागत रुप से एकदम अलग हो जाती है। अधिकांश तत्ववादियो से भिन्न उन्होंने प्रकृति व पर्यावरण दोनों पर विश्वास जताया केवल पूर्व पर ही नहीं।

उन्होंने विशेष रूप से जोर दिया कि एक महिला का भाग्य केवल घरेलु कामकाज से ही पूर्ण नहीं हो सकता। उन्होने इस विचार को नकार दिया कि घरेलु कार्य महिलाओं का सारा समय ले लें। उन्होंने कहा, "मेरे लिए महिलाओं की घरेलु दासता हमारे जंगलीपन का प्रतीक है। "गाँधी के अनुसार महिलाओं को भी समाज में प्रमुख स्थान मिलना चाहिए और पुरूषों की तरह महिलाओं को भी उनकी नैतिक विशेषताओं के आधार पर जाँचा जाना चाहिए न कि पूर्व निर्धारित शारीरिक रचना के आधार पर। इसके साथ उन्होंने लिंग-भेद व स्त्री पुरूष संबंधों की सामान्य समझ पुनःनिर्मित की। उनके जीवनदायी विचार परिवार की एक सूत्रता और महिलाओं की स्वायत्तता के संबद्ध हैं।

उनका पुनर्सरचित परिवार वह जगह है जहाँ पिता एवं माता कर्तव्यों का बंटवारा करते हैं, जो उन्हें ऐसा कहने के लिए अग्रसर करता है कि, "बच्चों की देखभाल करना एक संयुक्त जिम्मेदारी है, महिला एक माता है पर उसकी मातृवत कोमलता अपने बच्चों से परे भी विस्तृत होनी चाहिए और इसीलिए उसका कार्यक्षेत्र घर से परे भी विस्तृत होना चाहिए। 'उन्होंने न सिर्फ पिता के कर्तव्यों को नये क्षेत्रों तक बढ़ाया, बल्कि इस पर भी जोर दिया कि महिलाओं को घरेलु अभिरुचियों से परे अपने जीवन को अधिक व्यापक समुदायों तक विस्तृत करना चाहिए। गाँधी अपनी योजना की कठिनाई को समझते थे। यह समाज में उन संस्थागत रीतियों से जुड़ी है जिनसे व्यक्ति की पहचान धनिष्ठत: संबद्ध होती है। प्रचलित व्यवस्थाओं को बनाये रखने में विद्यमान सांस्कृतिक व मनौवैज्ञानिक निवेश अतिप्रबल है पर, वे कारण बताते हु एकहते हैं, अलंधनीय नहीं हैं। वह कारण जो गाँधी बताते हैं कि दृढ़निश्चयी महिलाएँ साहस पूर्वक, बिना पसीजे अपनी-अपनी स्वायत्तता की माँग पर डटी रहे।

मैं महिलाओं की पूर्ण स्वतंत्रता की उत्कृष्ट इच्छा रखता हूँ। मैं बाल विवाह का तिरस्कार करता हूँ। एक बाल विधवा को देखकर थर्रा जाता हूँ और तब गुस्से से कॉप जाता हूँ जब एक पति,

जो अभी-अभी विधुर हु आहै निर्दय उदासीनता के साथ दूसरे विवाह के लिए रिश्ता तय करता है। मैं उन माता-पिता की आपराधिक उदासीनता पर शोकाकुल होता हूँ जो अपनी पुत्रियों को बिल्कुल अशिक्षित और अबोध रखते हैं और उनका पालन पोषण केवल किसी साधन संपन्न युवक से विवाह के उद्देश्य से करते हैं। सारे दुख और गुस्से के बावजूद भी मैं इस समस्या की कठिनाई को महसूस करता हूँ।महिलाओं को मताधिकार और एक समान कानूनी दर्जा मिलना चाहिए। लेकिन समस्या यहीं खत्म नहीं होती। बल्कि यह तो उस बिंदु से शुरू होती है जहाँ महिलाएँ राष्ट्रीय राजनीतिक बहस की शुरुआत प्रस्तावित करती है।

9.10 'लिंग-भेद व परिवार' के बारे में पुनर्विचार

महिलाओं की स्थिति के बारे में गाँधी की समालोचना के स्पष्ट पक्षों में से एक यह है कि महिलाएँ, प्रथमत: व प्रधानत: अपने सम्मान व अधिकारों के लिए दावा प्रस्तुत करें। इस आंदोलन में उन्होंने जिस तरीके से सहायता की वह परंपरागत स्त्री पुरूष संबंधों को स्वयं चुनौती देना था। ऐसा करने के लिए गाँधी पुराने ढर्रे से परे जाना चाहते थे। गाँधी के मस्तिष्क में दूसरे दो प्रकार थे। एक जो मिथकों से असंख्य समाजों में फैलता है और इस विचार से सबद्ध है कि कुछ व्यक्ति स्वायत्त कर्ता के रुप में कार्य करने में असमर्थ होते हैं (जाति, लिंग, वर्ग, नस्ल और समुदाय की वजह से)। दूसरा अपनी उत्पत्ति में अधिक आधुनिक है कि लैगिक अन्याय का समाधान महिलाओं को ज्यादा अधिकार देकर किया जा सकता है। इसका विरोध मुश्किल से ही किया जाता है पर गाँधी इसे अपूर्ण मानते हैं। यह स्थिति जिस चीज पर ध्यान नहीं देती है वह है परिवार। यहाँ इस पर ध्यान देना सहायक होगा, जिस पर कि गाँधी जोर देते हैं, कि लैंगिक समानता की संकल्पना के किसी भी पुननिर्माण में परिवार को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

पारंपरिक रूप से, पितृसत्तात्मक प्रतिमान से कार्य करते हु ए, पुरूषों के द्वारा, परिवार को महिला उत्तरदायित्व मानकर, उसकी देखभाल महिलाओं को सौंप दी गई है जो पूर्ण स्वायत्तता की हकदार हैं। यहाँ पुनर्विचार की आवश्यकता है, परिवार की मूल्यवत्ता के विषय में नहीं बाल्के श्रम के विभाजन के संबंध में, जो कि परिवार की देखभाल करते हु ए किया जाता है और सामाजिक रीतियों के संबंध में भी, जो इसे सुरक्षित या कमजोर बनाती हैं। आधुनिक युग में, परिवार बिखराव, व्यक्तित्व शून्यता और लाभ प्राप्ति की लालसा के लिए ज्यादा भेद्य हो गये हैं। इसकी पुरानी मोटी और संरक्षी दीवारें नए वर्ग़णेज्यिक नियमों से चूर-चूर हो गई हैं। और यह (ज्यादातर अनिच्छा से) बच्चों की शिक्षा की जिम्मेदारी जनसंचार के माध्यमों उम्मैर जन समाज से बाँटने लगा है। महिला की पूर्ण स्वायत्तता के बारे में भी बात करना गाँधी के लिए परिवार की स्वायत्तता के बारे में भी बात करना है।

गाँधी बार-बार उन बहु त से परंपरागत व आधुनिक दोनों तरीकों की तरफ संकेत करते हैं जो स्वायत्तता को नष्ट करते हैं और वे जोर देना चाहते हैं कि कोई भी समाधान, जो समानता की राह की बाधाओं को तोड़ता है, इसका भी ध्यान रखे कि समाज के सभी सदस्य अंतर्संबद्ध हैं। इस कारण से, वे चाहते थे कि पुरूष व महिला दोनों अपने स्वायत्तता संबंधी दावों को पहचानें जो लिंग-

विभेद से ऊपर हों। वे पुरूष व महिला दोनों को यह भी बताना चाहते थे कि वे घर की देखरेख संबंधी पुनर्कृत श्रम विभाजन में परिवार की सुरक्षा का मार्ग देखें। नये श्रम विभाजन की कोई निश्चित रूपरेखा गाँधी प्रदान नहीं करते। बजाय इसके वे दलों के बीच एक संवाद आमंत्रित करते हैं और इसको भी वे रोकने को तैयार हैं यदि उनमें से कुछ दलों की स्वायत्तता पर ध्यान नहीं दिया जा रहा हो, विशेषकर जो सबसे कमजोर हो।

किंतु वे आगे जाना चाहते थे। गाँधी जोर देते हैं कि न केवल उन तरीकों और सामाजिक रीतियों की छानबीन जरुरी है जिन्होंने महिलाओं की स्वायत्तता को नष्ट किया है बल्कि इसकी भी कि किस तरह से महिलाओं के समानीकरण ने परिवार में बदलाव किया है। इस अध्ययन में, जो यहाँ प्रस्तुत है, परिवार महिला सषक्तीकरण में एक रूकावट की तरह कार्य नहीं कर सकता, पर ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है, इस कारण से, स्त्री पुरूष संबंधों के बारे में किसी भी गाँधीवादी बहस में, किसी भी समाज के सर्वाधिक कमजोर सदस्यों की जरूरतों पर विचार विमर्श एक प्रमुख स्थान रखता है। और इस पर भी कि किस तरह से उनका शारीरिक व नैतिक रूप से संरक्षण व पालन-पोषण किया गया है। कोई भी इस तरह का विचार-विमर्श केवल स्त्री-पुरूष संबंधों तक ही सीमित न हो बल्कि उन हजारों रीतियों तक भी फैला हो जो परिवार के मूल कार्यो में सहायता करती हैं या बाधा बनती हैं। दूसरे शब्दों में, कोई भी नारी संबंधी गाँधीवादी बहस परिवार और नागरिक समाज संबंधी बहस भी होती है।

9.11 सारांश

नारी पर गाँधी का अध्ययन ना केवल गहन है वरन वह पूर्णत: मौलिक भी है। गाँधी को किसी भी पूर्व निर्धारित श्रेणी में नहीं रखा जा सकता चाहे वह श्रेणी उदारवादियों की हो, परंपरावादियों की या फिर तत्ववादियो की। कोई भी वाद या श्रेणी उन्हें तभी तक स्वीकार्य थी जब तक वह उनके नैतिक आध्यात्मिक ढाँचे से मेल खाती हो।

परिवार और नारी सशक्तिकरण उनकी नजर मैं दो विरोधी नहीं बल्कि साथ चलने वाली प्रक्रियाएँ है। धर्म ग्रन्थों के अन्धानुकरण का विरोध उनकी विवेक प्रधानता को उजागर करता है। कानून का यद्यपि वे विरोध नहीं करते परन्तु उनका अधिक आग्रह एक जाग्रत नागरिक समाज पर रहता है, एक ऐसा समाज जो स्त्री-पुरूष के लिंग भेद से परे जाकर चेतना के स्तर पर व्यक्ति की गरिमा को स्वीकार करता है।

जहाँ तक नारी समस्याओं का प्रश्न है, गाँधी उसे अध्ययन की पृथक इकाई नहीं मानते वरन संपूर्ण सामाजिक-धार्मिक ढाँचे और नैतिक मूल्यों के संदर्भ में उसे देखे जाने पर जोर देते है।

9.12 अभ्यास प्रश्न

1. गाँधी किस सीमा तक पारंपरिक उदारवादियों से सहमत प्रतीत होते हैं?
2. तत्ववाद से क्या अभिप्राय है? गाँधी तत्ववाद की कसौटी पर कितने खरे उतरते हैं?
3. परिवार के प्रति गाँधी का दृष्टिकोण बताइये।
4. अत्यधिक कमजोर स्थिति वाली स्त्रियों के संबंध में गाँधी क्या उपाय बताते है?

5. नारी संबंधी गाँधी दर्शन का समग्र मूल्यांकन कीजिये।

9.13 संदर्भ ग्रन्थ

1. ई. स्टेनले जोन्स : महात्मा गाँधी-एन इन्टरप्रिटेशन, लंदन, हीडर एंड स्टॉग्टन, 1948 ।
2. हरिजन, जून 8,1940 इन वुमन, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1958 ।
3. प्यारेलाल, महात्मा गाँधी : द लास्ट फेज, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद 1956 ।
4. नंदी, आशीष : '' आपरेशन एंड हामन लिबरेशन : टुवर्ड्स ए पोस्ट गांधियन यूटोपिया, '' इन पॉलिटिकल थॉट इन मॉडर्न इंडिया, संपादित थामस फेथम एंड केनेथ एल. उशसेज, नई दिल्ली, 1986 ।

इकाई - 10

गाँधी अध्ययन के ऐतिहासिक चरण

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 गाँधी अध्ययन के ऐतिहासिक चरण

10.2.1 गाँधी: एक नैतिक-आदर्शवादी सुधारक

10.2.2 गाँधी: एक समाज वैज्ञानिक

10.2.3 गाँधी: एक मार्क्सवादी-दार्शनिक

10.2.4 गाँधी: एक मानववादी दार्शनिक

10.3 सारांश

10.4 अभ्यास प्रश्न

10.5 संदर्भ ग्रन्थ

10.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में गाँधी अध्ययन के ऐतिहासिक चरणों के संबंध में जानकारी दी जा रही है। अर्थात् इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप विभिन्न अध्येताओं के द्वारा उनके चिंतन के अध्ययन ऐतिहासिक चरणों के संबंध में अग्रांकित बिन्दुओं के आधार जानकारी लेने में सक्षम होंगे–

1. गाँधी की विभिन्न व्याख्याओं को समझेंगे
2. गाँधीयन चिंतन के मुख्य ऐतिहासिक चरणों की जानकारी पा सकेंगे।
3. गाँधीचितन के विविध ऐतिहासिक चरणों की सीमाओं व महत्त्व को समझेंगे।
4. विभिन्न ऐतिहासिक चरणों की तुलनात्मक षक्ति को जानेंगे।

10.1 प्रस्तावना

सामान्य बुद्धिलब्धि प्रतिष्ठित महात्मा गाँधी बहु आयामी व्यक्तित्व के धनी थे। इसी कारण उनका चिंतन/विचार सामाजिक जीवन को प्रभावित करने वाले विविध आयामों को समाहित किए हुएहै। चाहे समाज-सुधार की बात हो या स्वतंत्रता, समानता व न्याय की या श्रमिक हितों की या पर्यावरण संरक्षण तथा मानवीय संघर्षों के निवारण की आदि सभी मुद्दों पर महात्मा गांधी ने न्यूनाधिक मात्रा में अपने विचार प्रकट किए है। उनके चिंतन की इसी संबंधी विविधता ने विविध अध्येताओं को चाहे देशी हो या विदेशी अध्ययन हेतु आकर्षित किया है।

स्वतंत्रता के पूर्व से लेकर स्वतंत्रता के पश्चात् आज तक गाँधी चिंतन के अध्येता उनके विचारों का निरंतर अध्ययन करते रहे है। जहाँ आरंभ में गाँधी चिंतन के अध्येता उसे एक नैतिक - आदर्शवादी सुधारक के रूप में रखते हुए अध्ययन करते थे, वहीं आज उसके अध्येता उसे

मानवतावादी दार्शनिक के रूप में दृष्टिगत रखते हुए अध्ययन करने लगे है। जिसमें विशेषकर के पर्यावरण सरंक्षण, प्राकृतिक संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग व अहिंसात्मक तरीके से संघर्ष निवारण तकनीक के अनुप्रयोग के साथ मानवीय स्वतंत्रता व स्वायत्ता पर बल देने को ध्यान में रखते हुए अध्ययन किया जा रहा है। यहाँ ध्यान रहे कि आज गाँधी चिंतन के मानवतावादी अध्ययन पर जोर है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि आज उनका चिंतन नैतिक - सुधारक के रूप में महत्वहीन हो चुका है। बल्कि यही उसके चिंतन में समय की प्राथमिकताओं को ध्यान में रखते हुए अध्ययन किया जा रहा है।

10.2 गाँधी अध्ययन के ऐतिहासिक चरण

जैसाकि विदित है महात्मा गाँधी के बहुआयामी व्यक्तित्व ने बहुत से अध्येताओं को अध्ययन हेतु आकर्षित किया और इसलिए हम गाँधी पर विपुल मात्रा में साहित्य रखते है। गाँधी स्वयं एक बहुकृतिकलेखक थे और सूर्य के प्रकाश में जो भी दर्शनीय वस्तु थी उस पर कुछ न कुछ बोला व लिखा है। मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं पर गाँधी की चिंता गाँधी पर पुस्तकों का विषय बन गया। लेकिन दुर्भाग्य से गाँधी पर इतनी विपुल मात्रा साहित्य के कारण ही गाँधी की वस्तुपरक एवं बौद्धिक अध्ययन के रूप में श्रेणीकृत नहीं किया जा सकता। टी.के. महादेवन इसके लिए चार कारणों को जिम्मेदार मानते है –

- प्रथम - अध्येताओं की गांधीयन संग्रहिकाओं पर निर्भरता,
- द्वितीय - वाड्मयों के रूप में गाधीयन लेखन ज्यादातर पत्रकारिता के रूप में लिखा गया है,
- तृतीय - गाँधी की भ्रामक अध्येतायी मान्यताऐं जो लगातार - गाँधी के एक सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक चिंतन में दिखती है और इससे ही तरनकी सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक व्यवस्थाओं की व्युत्पति होती है,
- चतुर्थ - यह भ्रामक धारणा कि - गाँधी दर्शन की मूलधारणा अहिंसा को दिखाना, सत्य को नहीं और इसके परिणाम स्वरूप - गाँधी हमें क्या सिखाने की कोशिश कर रहे थे - प्रत्ययों और उदाहरणों से उसे विकृत कर दिया गया।

लेकिन फिर भी स्वतंत्रता से पूर्व और पश्चात् आज तक निरंतर रूप से गाँधी चिंतन को अलग-अलग अध्येताओं ने अलग-अलग वर्गो के रूप में रखकर देखा गया है। जिसमें समय के साथ-साथ नैतिक-आदर्शवादी समाज सुधारक से मानवतावादी दार्शनिक तक के दृष्टिकोण से अध्ययन किया है।

10.2.1 गाँधी: एक नैतिक-आदर्शवादी सुधारक

आरम्भ में गाँधी चिन्तन के अध्येताओं ने गाँधी को एक 'नैतिक सुधारक' (Moral Reformer) के रूप में देखा। गाँधी अध्ययन के ऐतिहासिक चरणों में यह अध्ययन अत्यधिक लोकप्रिय एवं व्यापक था। गाँधी जी के सामाजिक-आर्थिक- राजनीतिक विचारों को भी नैतिक शिक्षा के रूप में ही देखा गया। गाँधी चिन्तन अपने आप में समग्रतावादी है, जो आणविक आधार

रूपी त्रिवर्गीय नैतिक संप्रत्ययों- 'सत्य- ईश्वर-अहिंसा'' पर टिका हुआ है। गाँधी चिंतन में धर्म व नीतिशास्त्र में अंतर को ध्यान में नहीं रखा गया है। गाँधी को एक धार्मिक व्यक्ति के रूप में देखा गया है जो धर्म को आन्तरिक प्रतिबद्धता एवं नैतिक देखभाल के स्त्रोत के साथ ही सामाजिक गतिविधि के रूप में देखते है न कि केवल एक दार्शनिक - आनुष्ठानिक कर्मकाण्ड के रूप में।

इस चरण के अध्येयता यह भी मानते है कि गाँधी नये विचारों के सृजक है। नई दार्शनिक परम्परा के अग्रदूत नहीं है, लेकिन वह विभिन्न दार्शनिक धाराओं के एक बुद्धिमान संश्लेशणकर्ता है। उनकी महानता इसमें निहित है कि उन्होंने भारतीय दार्शनिक परम्परा के विचारों को आधुनिक समय की मांगों/समस्याओं के समाधान करने में प्रयुक्त किया। सभी पाश्चात्य प्रभावों के बावजूद उनका भारत भूमि से लगाव बना रहा।

गाँधी अध्ययन के इस ऐतिहासिक चरण के तटस्थ अध्ययनकर्ता को अलग करना बड़ा कठिन कार्य है। इस तरह के ज्यादातर अध्ययन गाँधी के अनुयायियों व सहकर्मियों ने किए है और जो लगभग सभी नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद से प्रकाशित हुए है। इनमें से हम कुछ अध्येताओं के नाम गिना सकते है जैसे - डीएम. दत्ता, वी.वी रमणमूर्ति, वीपी वर्मा, सुरेन्द्र वर्मा, राघवन एन. अय्यर, रिचर्ड बी ग्रेग आदि।

हाँलाकि इनके अध्ययन कई संदर्भो में अलग-अलग है फिर भी इनके बीच समानता यह है कि ये सभी गाँधी को एक नैतिक-आदर्शवादी-सुधारक के रूप में देखते है। गाँधी का इस रूप में सर्वोत्तम अध्ययन डीएम. दत्ता ने अपनी पुस्तक 'द फिलॉसफी आफ महात्मा गाँधीं' के चौथे अध्याय -मॉरल लिडरशिप ऑफ द वर्ल्ड' में व्यक्त किया है। लेकिन गाँधी का यह दृष्टिकोण ज्यादा व्यापक था बजाय एक रूढ़िवादी नैतिक या धार्मिक उपदेशक के। उन्होंने अपने सत्य एवं अहिंसा के मौलिक संप्रत्ययों को न केवल अन्यायीपूर्ण सत्ता के विरूद्ध संघर्ष में ही प्रयुक्त किया बल्कि विविध सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक मामलों के निस्तारण में भी इसका प्रयोग किया। उदाहरण के लिए - पूंजी व श्रम के बीच संबंधों में, राजनीतिक व आर्थिक शक्ति के विकेन्द्रीकरण में, सामाजिक असमानताओं एव विभिन्न प्रकार के शोषणों में, व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं राष्ट्रीय स्वतंत्रता के बीच, सामूहिक कल्याण को बढ़ावा देने में एव ग्रामीण रच-शासन आदि में।

इस प्रकार गाँधी जी ने प्राचीन भारतीय दार्शनिक परम्परा के नैतिक आदर्शो व निरपेक्ष प्रत्ययों को व्यापक व प्रावैगिक रूप में समकालीन समस्याओं के समाधान में प्रयुक्त करने का प्रयास किया। एक नैतिक आदर्शवादी के रूप में गाँधी ने सत्य एवं अहिंसा को निरपेक्ष प्रत्यय के रूप में संरचित किया लेकिन एक व्यावहारिक राजनीतिज्ञ के रूप में वह मानव व्यवहार में उनके अनुप्रयोग के संबंध सीमाओं के प्रति जागरूक भी थे और इसलिए वह सापेक्षिक सत्य एव सापेक्षिक अहिंसा में विश्वास करते थे।

ऐतिहासिक अध्ययन के इस चरण के अव्वियताओं ने इस बात पर बल दिया कि - साध्य और साधन के बीच का द्वैत को कम किया जा सकता है। ऐसा ही प्रयास गाँधी जी ने सत्य व अहिंसा को साध्य व साधन बताकर उन्हें आपस में रूपांतरित माना। यह अध्ययन जिन सत्तामीमासीय संप्रत्ययों पर बल देता है उनको भारतीय दार्शनिक परम्परा में खोजा जा सकता है।

एक अतिश्योक्तिपूर्ण निष्कर्ष इस अध्ययन का यह है कि भारतीय दार्शनिक चिन्तन परम्परा की निरंतरता के अलावा कुछ नहीं है।'' लेकिन यह कहा जाता है कि गाँधी के नैतिक एव तत्वमीमांसीय समप्रत्यय पाश्चात्य चिंतकों के साथ तुलना द्वारा मूल्यांकित किए जाने चाहिए। वीपी वर्मा ने जोर दिसा कि - ''गॉधीयन चिंतन के अध्ययन के लिए विश्लेषण की तुलनात्मक पद्धति लागू करना अतिआवश्यक है।'' इस संदर्भ में यह कहना सही है कि गाँधी जी ने भारतीय दार्शनिक परम्परा के अहिंसा रूपी समप्रत्यय को सामाजिक क्षेत्र में लाग किया।

रमणमूर्ति राजनीति में अहिंसा के उनके अध्ययन को दो भागों में विभाजित किया, यथा - गाँधीयन तकनीकें एव गॉधीयन चिंतन। रमणमूर्ति का तर्क है कि - ''अहिंसा एक सामाजिक राजनीतिक समप्रत्यय के रूप में गाँधी द्वारा खोजा गया है।'' उन्होंने इसे सत्य के साथ मिलाया, अपनी नैतिक व्यवस्था की संरचना करने में जो कि उसके सम्पूर्ण दर्शन का आधार है। जिसे मार्क्सवादी भाषा में 'आधार संरचना कह सकते हैं। वहीं सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था 'अधिसंरचना' का निर्माण करते हैं जो कि आधार संरचना से संचालित होती है लेकिन रमणमूर्ति इस तथ्य को स्वीकार करने में सहमत थे कि ''गाँधीजी की अहिंसा का सिद्धान्त एक तत्त्वमीमांसीय समप्रत्यय के रूप में अपनी जड़े लम्बी भारतीय परम्परा में रखता है।''

इस धारणा के समर्थक अध्येताओं का विव्यास है कि ''सत्याग्रह गाँधी का मानव चिंतन एव कार्यो को एकल महानतम योगदान है।'' जिसका महत्व अपने पक्ष में संघर्ष निवारण के रूप में राजनीतिक हथियार से रूप में ही निहित नहीं है, बल्कि एक आत्म-शक्ति के रूप में सामाजिक-राजनीतिक धरातल पर सत्य और अहिंसा को प्रचारित करने में है। गाँधी ने सत्याग्रह को एक जीवन शैली के रूप में देखा बजाय एक संघर्ष निवारक तकनीक के। आरआर. दिवाकर ने इस धारणा को इस रूप में व्यक्त किया कि - ''सत्याग्रह जीवन के प्रति जीवन के प्रत्येक आयाम के प्रति एक दृष्टिकोण है। यह केवल एकल कार्य या कार्यो की धारा नहीं है। यह एक क्रांतिकारी शक्ति है। इस आंतरिक अर्न्तचेतना के साथ जो जीवन का निर्माण करती है, उसे प्रोत्साहित करती है, उसे व्यापक करती है और अभिव्यक्त करती है। विविध रचनात्मक एव निर्माणक गतिविधियों में।''

गाँधीजी व्यक्ति को अच्छा मानते थे। इसलिए वे पापी की बजाय पाप से घृणा करने पर बल देते थे। वे व्यक्ति के हृदय में गहरी पैठ की हुई बुराई से मुक्त कराना संभव मानते थे। हालांकि वे मानते थे कि यह कठिन कार्य है लेकिन असंभव नहीं है। उनका ''हृदय परिवर्तन'' का सिद्धान्त ही उसके सत्याग्रह और ट्रस्टीशिप सिद्धान्त का आधार है। व्यक्ति की नैतिकता में बदलाव ही मैलिक बदलाव है, शेष बदलाव तो उसी की प्रशाखाऐं मात्र हैं। इस नैतिक सूझ-बूझ में स्वपीडा भी शामिल है जो मानव प्राणी के रूपान्तरण का मौलिक सिद्धान्त है।

गोपीनाथ धवन ने अपने आरंभिक अध्ययन में गाँधी अध्ययन की उक्त धारणा को प्रयोग करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि गाँधीदर्शन 'आध्यात्मिक एकता' से व्युत्पत्र हुआ है, यही गाँधीदर्शन का शुरूआती बिन्दु है जो अहिंसा द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

डीएम. दत्ता और सुरेन्द्र वर्मा ने गाँधी अध्ययन को बड़े ही व्यवस्थित तथा संयमित तरीके से पुनर्सरचित किया। गॉधी का सत्य के साथ प्रयोग, विश्वास एवं दृढ़-निश्चय ने उसे

सम्पूर्ण मानवता का नैतिक नेता बना दिया जिसका हजारों लोगों ने अनुसरण किया। गाँधी का एकलवादी आदर्शवाद में विश्वास महान भज्जिय परम्परा के अंश को ही व्यक्त करता है।

राघवन एन. अय्यर ने गाँधी शास्त्र में सबसे ज्यादा वैज्ञानिक, व्यापक एवं लोकप्रिय योगदान इस दृष्टिकोण के अध्ययन में किया। उन्होंने गांधी के नैतिक एवं राजनीतिक चिंतन की अवधारणाओं को समझाने का दावा किया उसके चिन्तन को संप्रत्यात्मक आधार प्रदान करते हु ए। अम्पर का दृष्टिकोण यह है कि "गाँधी मुख्यत: एक राजनीतिक-नैतिकीय व्यक्ति थे जिन्होने विद्रोही के दृष्टिकोण से लिखा था। उसके चिंतन में सबसे महत्वपूर्ण तत्व सत्य और अहिसा की अवधारणाऐं है। जिन पर सार्वभौमिक राजनीतिक-नीतिशास्त्र आधारित है। उन्होने गाँधीवाद को एक विशेष प्रकार के नीतिशास्त्रीय दृष्टिकोण से देखा बजाय स्थिर सुत्र या निश्चित व्यवस्था के।

गाँधी जी ने अपने इस संप्रत्ययों को एक विशेष परिस्थितियों में विशेष समस्याओं के समाधान में व्यापक स्तर पर लागू करने के क्रम में विकसित किया। सत्य, अहिसा एवं सत्याग्रह की अवधारणाओं को सामान्य समझने की बजाय उन्हें राजनीतिक औचित्य का तार्किकरण के रूप से समझना चाहिए। यह ज्यादा उपयुक्त होगा कि गाँधी की अवधारणाओं/संप्रत्ययों को उनके तत्त्वमीमासीय एवं नैतिक पूर्व मान्यताओं के रूप में समझा बजाय एक परिणामों के संदर्भ में जाँची गई तकनीको के।

गाँधी अध्ययन के इस नैतिक-समाज सुधारक रूपी ऐतिहासिक चरण के अध्येताओं ने गाँधी को महान भारतीय आदर्शवादी दार्शनिक परम्परा का प्रतिनिधित्व कर्ता बताया तथा सत्य, अहिंसा ईश्वर एवं सत्याग्रह को पुनर्परिभाषित किया तथा इन नैतिक अवधारणाओं को दार्शनिक आधारों के रूप में शामिल करते हु ए सामाजिक-आ।र्णक-राजनीतिक सिद्धान्तों में महत्वपूर्ण योगदान के रूप में व्यवहार किया जाने लगा। गाँधी अध्ययन के इसी चरण के अध्येताओं ने गाँधी अध्ययन में उसके व्यक्तित्व की बजाय उसके चिंतन के आधार बनाया जो कि उनका गाँधी अध्ययन को महत्वपूर्ण योगदान है।

10.2.2 गाँधी एक समाज वैज्ञानिक

गाँधीजी चिंतन का वैज्ञानिक - मूल्य - सापेक्षतावादी दृष्टिकोण से अध्ययन करने वाले प्रमुख अध्ययेताओ ने गाँधी को एक समाज वैज्ञानिक माना है। ये अध्येता गाँधी चिंतन के ऐसे वैज्ञानिक सत्य की खोज का प्रयास करते हैं जो या तो वैज्ञानिक सिद्धान्तों के रूप में सामान्यीकृत किए जा सके या सामाजिक-आर्थिक- राजनीतिक सवृत्ति के अध्ययन की वैज्ञानिक प्रणाली बन सके। वैज्ञानिक मूल्य सापेक्षतावाद वैज्ञानिक पद्धति का अंग है। इस पद्धति के प्रतिपादक अर्नाल्ड ब्रेक्ट के अनुसार यह पद्धति - समाज विज्ञान में कुछ तात्त्विक मूल्यों' को बिना प्रश्न किए स्वीकार करती है, और इन मूल्यों के तंत्र में ही, सापेक्षिक मूल्यों का वैज्ञानिक अध्ययन किया जा सकता है। उदाहरण के लिए - चुनावों का एक वैज्ञानिक अध्ययन तब ही संभव हो सकता है जब चुनावी तंत्र को बिना प्रश्न किए लोकतंत्र की मौलिक विशेषता स्वीकार की जाये। इसको दूसरे शब्दों में इस प्रकार

कहा जा सकता है कि - कुछ 'तात्त्विक मूल्यों के संदर्भ में ही सापेक्षिक मूल्यों' का अध्ययन करना ही वैज्ञानिक मूल्य - सापेक्षतावादी उपागम कहलाता है।

गाँधी चिंतन भी उक्त वैज्ञानिक-मूल्य-सापेक्षतावादी परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकित किया जा सकता है और किया जाना भी चाहिए। यह जैसा विदित है कि यह उपागम कुछ तात्विक मूल्यों को पूर्व मान्यता के रूप में स्वीकारता है, ठीक उसी तरह से गाँधीयन चिंतन भी कुछ निश्चित तात्त्विक मूल्यों पर जोर देता है जिन्हें कार्यकरण परिकल्पनाओं पर पूर्ववर्ती मान्यताओं के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए सत्य, ईश्वर, आंतरिक आवाज, आत्मा एवं अन्य इसी तरह के तत्वमीमांसीय संप्रत्ययों को ऐसे तात्विक मूल्य हैं जिन्हें आनुभाविक खोज का विषय नहीं बनाया जा सकता है। यह विश्वास किया जाता है कि - नैतिक - समाज-सुधारक परिप्रेक्ष्य चिंतन को गाँधीजी के सम्पूर्ण योगदान के वैज्ञानिक तरीके से मूल्यांकन करने में अपर्याप्त हैं, जिस रूप में गाँधी के संप्रत्यय चिंतन-प्रणाली को आधार तैयार करते हैं वे या तो व्यक्तिगत मुक्ति के लिए लाभदायक हैं तथा निरपेक्ष, अमूर्त एवं तात्विक भी हैं। सामाजिक-राजनीतिक एवं व्यावहारिक क्षेत्र में शिरकत करने में।

गाँधी की नैतिक धार्मिक मूल्य, अवधारणाऐं एवं सिद्धान्त मौलिक मान्यताओं के रूप में उस हद तक ही प्रभावी उपयोगिता रखते हैं या सामाजिक राजनैतिक परिवर्तन की तकनीकों एवं सामाजिक, राजनैतिक चिंतन के लिए व्याख्याऐं उपलव्य कराते हैं। इस उपागम का एक सबसे महत्वपूर्ण अनुप्रयोग गाँधीयन तत्वमीमासीय अवधारणाओं की परिभाषात्मक समस्याओं को पहचानने के इस रूप में कि वे अनुभाविक जगत में परिवर्तन के साधनों में रूपान्तरण के रूप में एवं इन अवधारणाओं, की उत्पत्ति खोजने तथा उनके धार्मिकता एव नीतिशास्त्र के आवरण को उतारने के लिए समाजों- मनोवैज्ञानिक बाध्यताओं के अनुप्रयोग को खोजना है।

गाँधी की एक समाज वैज्ञानिक के रूप में अध्ययन करने वाले अध्येता बहु तबड़ी संख्या में नहीं है लेकिन फिर भी कुछ प्रमुख अध्येता हैं, जैसे - जे. बंधोपाध्याय, इरिक एच. इरिक्सन एवं जॉन वी. बोडरा तथा कुछ सीमा तक टी. के. महादेवन आदि हैं।

जे. बंधोपाध्याय ने गाँधी को एक समाज वैज्ञानिक के रूप में देखते हु ए अपनी पुस्तक में यह दावा किया कि "अहिंसा, स्वतंत्रता, समानता एवं धर्म और राजनीति का अंतरसंबंध गांधी चिंतन के तात्त्विक मूल्य हैं जिनके संदर्भ में ही सापेक्षिक मूल्यों एवं उनके राज्य, सरकारी तत्र, सत्याग्रह एवं अन्य विचारों को मूल्यांकित किया जा सकता है। सत्याग्रह सामाजिक नियंत्रण का सर्वोच्च साधन है। अन्य साधनों की तुलना में उनके सिद्धान्त में, लेकिन लोकतांत्रिक राज्य में ये पर्याप्त नहीं हैं उन्होंने अपनी पुस्तक में साध्य और साधन के बीच संबंधों का एक बुद्धिसंगत विप्लेशण किया है। उन्होंने कहा कि गाँधी चिंतन को दो स्तरों पर विश्लेषित किया जा सकता है। (1) तात्विक आदर्शो की भूमि (2) अव्यवहारिक आदर्शो की भूमि। उनका अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुंचाकि गांधी चिंतन का सबसे महत्वपूर्ण तत्व उसकी परावैगिता है। विशेषकर के इसका प्रमाण गाँधी चिंतन के संदर्भ में प्रथम श्रेणी के आदर्शो और द्वितीय क्रम के आदर्शो के बीच में अंतरसंबंध हैं। बंधोपाध्याय निश्चित पूर्वक इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि गाँधी के व्यावहारिक आदर्शो, क्रमिक

सिद्धान्तों एव परिस्थिति की आवश्यकताओं का विकास बड़ी संख्या में बड़े वर्षो के पश्चात् हो सका था।

टी.के. महादेवन ने गाँधी के समाज वैज्ञानिक संदर्भ में अध्ययन हेतु माइक्रो डॉक्यूमेंट टेक्निक का प्रयोग किया जिसमें भी व्यक्ति के विचारों एवं कार्यो को पूर्णतया तब तक नहीं समझ सकते जब तक कि स्वयं उस व्यक्ति को नहीं समझ लिया जाता। उनका काम हालांकि गाँधी के मनोविश्लेशण अध्ययन की बजाय ऐतिहासिक प्रकृति का ज्यादा था। उन्होंने गाँधी को एक व्यक्ति के रूप में उसकी बाध्यकारी परिस्थितियों से जो कि उसे एक भिन्न प्रकार के राजनैतिक संत के रूप में भूमिका निभाने को बाध्य करती थी ताकि वह अपनी अभिलाषाओं को पूरा कर सके, जोड़ने का प्रयास किया। ये शोध कार्य स्पष्ट रूप से उपागम की उसकी कमजोरी और सीमाओं को दिखाता है, यदि इसे गाँधी चिंतन के वस्तुपरक पूर्ण दृष्टिकोण के बिना सूक्ष्म अध्ययन में प्रयुक्त किया जाता है जो कि कुछ निश्चित सार्वभौमिक तत्व रखता है।

इरीक एच. इरीकसन ने गाँधी का मनो-विश्लेषण अध्ययन करते हुए अपने अध्ययन में दिखाया कि गाँधी का नैतिकता, नीतिशास्त्र एव अन्त-चेतना के प्रति भाव उनका उनके पिता के प्रति प्रेम-घृणा के सम्बन्ध के द्वारा विकसित हुई थी। उन्होंने यह भी तर्क किया कि "गाँधी जी दीर्घकालिक पहचान संकट से पीड़ित थे जो लंदन में भी बना रहा था जो संभवत: दक्षिण-अफ्रीका में रंगभेद के खिलाफ लड़ाई के समय दूर हुई। जहाँ उसने अपने अस्तित्व को लड़ाई से जोड़कर देखा, इसलिए इरीकसन ने भी महादेवन के समान दिखाया कि महात्मा गाँधी के महात्मत्व आध्यात्मिक प्रभावों का परिणाम नहीं था बल्कि गाँधी का व्यक्तित्व उसके चेतन प्रयासों का परिणाम थी।

जान वी. बोडरा का इस संबंध में शोध कार्य भी एक लाभदायक प्रयास है। उनके अध्ययन के शुरू में अहिंसा को संघर्ष निवारक साधन के रूप में माना। उन्होंने सत्याग्रह की तकनीक को भारत के लिए गाँधी की सबसे महत्वपूर्ण संभाव्य विरासत माना। उन्होंने अपने सिद्धान्तों में सत्याग्रह का अध्ययन किया और इसी रूप में सामाजिक-राजनीतिक कार्यो में अनुप्रयोग किया। इसी दौरान इसे हिन्दु परम्परा से जोड़ा और इसके क्रियान्वयन की द्वन्द्वात्मक पद्धति को पाया। गाँधी के लिए, साध्य ओर साधन आपस में परिवर्तनीय है और संघर्ष निवारण साधन के रूप में पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए ओर इसलिए सत्याग्रह का महत्व है कई गाँधीयन अवधारणाऐ एक-दूसरे को ढकेलने के कारण एक विशेष संदर्भ में उनकी पहचान बड़ी कठिन होती है। इस वर्गीकरण के लिए बोडरा का तर्क है कि गाँधीयन धारणाओं को तीन श्रेणियों में बांटा जाये। जो गाँधीयन लक्ष्य है। उनमें - स्वराज एवं सर्वोदय को शामिल किया जाये। गाँधीयन सिद्धान्तों में अहिंसा, सत्य व श्रम की रोटी को शामिल किया जाये तथा गांधीयन साधनों में सत्याग्रह, भूदान व नई तालीम (मौलिक शिक्षा) को शामिल किया जाये। यह तर्क किया जाता है कि - सत्याग्रह गाँधी का सबसे महत्वपूर्ण प्रयोग था जो सभी गाँधीयन अवधारणाओं को समाहित करता है और यही सिद्धान्त व व्यवहार का अध्ययन गाँधीवाद के अध्ययन का सार है। बोन्दुरा का कार्य प्रकृतित: वैज्ञानिक है एवं उनका सबसे महत्वपूर्ण योगदान सत्याग्रह को संघर्ष निवारण की एक महत्वपूर्ण संप्रत्यात्मक एवं सिद्धान्त प्रणाली के रूप में मूल्यांकन संघर्ष निवारण की करना है।

गाँधी अध्ययन के इस ऐतिहासिक चरण के प्रति अध्येताओं का रूझान 1970 के दशक में बढ़ा था। इस चरण के अध्येताओं का गाँधी अध्ययन में सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह रहा है कि गाँधी का एक समाज-वैज्ञानिक, सामाजिक अभियंता तथा प्रखर जननेता, जो ऐतिहासिक ताकतों, वयक्तिक अर्न्तचेतना एवं सामाजिक परिवर्तनों में डूबा रहने वाला था जो उद्वेश्यों के प्रति सचेत था, के रूप में अध्ययन करना शुरू किया बजाय एक आध्यात्मिक या संत के रूप से।

10.2.3 गाँधी: एक मॉर्क्सवादी दार्शनिक

गाँधी अध्ययन के कुछ अध्येताओं ने वर्ग उपागम या द्वन्द्वात्मक उपागम का आधार बनाते हु एगाँधी को मार्क्सवादी दार्शनिक के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया। यह धारणा गाँधी को 'जन नेता ज्यादा स्वीकार करनी है बजाय एक दार्शनिक या सिद्धांतकार के, क्यों कि उन्होंने जो भी लिखा वह पत्रकार के रूप में लिखा। कोई व्यवस्थित व समग्र सिद्धांत निर्माणक के रूप चिंतन प्रस्तुत नही किया। इसलिए यह धारणा गाँधी को नैतिक-समाज सुधारक के रूप में प्रस्तुत करने वाली धारणा के एक दम विपरीत है क्यों कि जहाँ नैतिक-समाज सुधारक वाली धारणा उसे दार्शनिक व सिद्धांतकार मानती है वही यह धारणा जन नेता के रूप में स्वीकार करती है।

इस धारणा के समर्थकों का विश्वास है कि 'गाँधीवाद की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उनका सामाजिक आदर्श सर्वोदय' है और इस आदर्श को प्राप्त करने की पद्धति- सत्याग्रह' या 'अहिंसक प्रतिरोध' है। सर्वोदय एक अर्द्व-बुर्जुआईएवं किसान युरोपियाई, जो स्व-निर्मित किसान समुदाय है से मिलकर बना है जो युरोपीयन मशीनी सभ्यता तथा बाजार अर्थव्यवस्था को स्वीकार नहीं करती जोकि पितृ सलामक गाँव के लिए नुकसानदायक है। यह किसान-दस्तकार समुदाय को नष्ट करती है।'' यह निश्चित है कि ''गाँधीवाद गटन रूप से राष्ट्रीय एवं सैद्वतिक रूप से अर्द-बुर्जुआई विचार धारा के रूप में देखा जा सकता है। यह भी कहा जाता है कि गाँधी एक चिंतक के रूप में बहुत कमजोर है उनमें एक चिंतक के रूप में महानतक योग्यता-सर्वग्रहणतावादी है।

हालाँकि गाँधी अध्ययन के उक्त ऐतिहासिक चरण से संबंध रखने वाले कम बहुत कम अध्येता है जिनमें पी.स्थाट, सी. जी शाह, हिरेन मुखर्जी, ई. एम. एस. नम्बुद्रिपाद, एम. बी. राव एवं बुद्वदेव भट्टाचार्य आदि शामिल हैं। इस संबंध में गाँधी चिन्तन पर सीमित अध्ययनों के पीछे कारण रहें है-

1) ज्यादातर मार्क्सवादी अध्येताओं का संबंध कम्युनिस्ट पार्टी आफ इण्डिया से रहा जिसके कारण वे स्वतंत्र रूप से गाँधी चिंतन का मुल्याकंन नही कर सके
2) गाँधीजी की विचार धारा को मध्यकालीन एवं रहस्यवादी समझते थे,
3) गाँधीजी ने साम्राज्यवादी ताकतों के साथ कई समझौते किए जो बुर्जवाओं एवं सामंती लोगों के हितों में थे जिसने स्वतंत्रता संग्राम के दौरान उग्रवादी धारा के विकास को अवरोधित किया।
4) गाँधीजी स्वयं चर्ग-संघर्श' के विरोधी थे, जोकि मार्क्सवाद में सामजिक परिवर्तन का सबसे मौलिक यंत्र था।

फिर भी गाँधी को एक मार्क्सवादी दार्षनिक के रूप में अध्ययन करने वाले अध्येताओं मे से प्रमुख-अध्येताओं का सारांश निम्नोक्त है-

नम्बुद्रिपाद भी अन्य मार्क्सवादीयो के समान गाँधीजी की राष्ट्रीय आदोलन के दौरान हजारों युवकों को आकर्षित करने की परिघटना से अचम्भित थे। नम्बुद्रिपाद ने इस परिघटना को आर्थोडोक्स मॉर्क्सवादी विचारधारा के द्वारा व्याख्या करने की कोशिश की लेकिन संतोषजनक नही थी। उनका विश्वास था कि गाँधी जी ने सोच समझकर पूँजीवादी-बुर्जुआवादियो के हितों का विरोध नही किया बल्कि उनकी अहिंसक संघर्ष की नीति ने किसानों के जन विद्रोहों को तथा साम्राज्यवाद, सामंतवाद एवं पूँजीवाद के त्रिकोण के विरूद्ध श्रमिकों को उठ खडा होने से रोका। लेकिन उन्होंने गाँधी की जन चेतना को जागृत करने व संगठित करने तथा दृढ़ निश्चय के साथ आदर्शो के अनुसरण करने की प्रशंसा की।

नम्बुद्रीपाद ने निष्कषर्त कहा कि गाँधीवाद कई सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक प्रश्नों का प्रतिक्रियावादी जवाब दिया, लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इन प्रतियावादी मतों से ही गाँधीजी ने राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्यधारा की ओर कई ग्रामीण लोगों को आकर्षित किया जोकि अपने आप मे विषमकारी संगठन के रूप मे थे।

एम.बीराव द्वारा सम्पादित पुस्तक की समीक्षा करने हु ए हीरेन मुखर्जी ने लिखा कि-यह पुस्तक गाँधी चिंतन के मार्क्सवादी रूप में अध्ययन की दृष्टि से सीमित उपयोगिता रखती है, लेकिन. फिर भी इसमें गाँधी पर एक व्यक्तिगत रूप से या भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में गाँधी की ऐतिहासिक भूमिका एवं कम्यूनिस्ट पार्टी आफ इण्डिया से उसके संबंधो को स्पष्ट किया गया है।

उक्त धारणा के समर्थक पी. स्पॉट ने गाँधीवाद के अपने एक महत्वपूर्ण शोधकार्य में स्पष्ट किया 'गॉधी को एक मौलिक चिंतक के रूप में नहीं देखा जा सकता क्योंकि उन्होंने भारतीय दार्शनिक परम्परा के साथ ईसाईयत को समन्वयीत किया था। वह धार्मिक व्यक्ति है, जो व्यक्तिगत मुकि को महत्त्वपूर्ण नहीं मानते है। हालाँकि स्वॉट कोई रूढ़िवादी मार्क्सवादी नहीं थे । उन्होंने गाँधीयन नीतिशास्त्र को मुल्यांकित करते हु ए बताया कि यह मध्यकालीन नीतिशास्त्र एव अर्द्व-बुर्जुआईनीतिशास्त्र का सम्मिश्रण है। उन्होंने गाँधी के नीतिशास्त्र को स्वतंत्र एवं व्यक्तिगत चिंतन के उत्पाद के रूप में वर्णित किया है और गाँधी की उस इच्छा की प्रशंसा कि जिसमें उन्होंने लोगों से उनकी मध्यकालीन पतन से ऊपर उठने को कहाँ। हालांकि स्पॉट ने गाँधी को बुर्जुवादी चिंतक कहा, तथा धनिकों का अभिकर्त्ता भी कहा, लेकिन वास्तव में गाँधी जी धन के उतने विरूद्व नही थे जितने कि असमानता के विरूद्व थे।

स्पॉट की विद्वतापूर्ण परम्परा को बनाये रखते हु ए बी. भट्टाचार्य ने गाँधी अध्ययन की उक्त धारणा पर कई कारणों से जोर दिया। जिसमें प्रथम कारण है-

1) गाँधी ने हमारे देश में नाजुक राजनीति का प्रदार्पण किया एवं राष्ट्रीय आंदोलन को रूपान्तरित किया। इनके बाद से पश्चिमोज़खी-शहरी-उच्च वर्ग एवं मध्यम वर्गीय आन्दोलन को एक व्यापक एव वास्तविक जन आन्दोलन का स्वरूप प्रदान किया।

2) ऑफीशियल मार्क्सवादियों ने समय-समय पर गाँधीजी के बारे में ऐतिहासिक समझ को आलोकित नहीं किया।

भट्टाचार्य का उक्त धारणा के संबंध में अध्ययन एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। उन्होंने इस सत्य को जाना कि गाँधीजी का उद्देश्यपरक मूल्यांकन एक कठिन कार्य है लेकिन फिर भी गाँधी चिंतन का वैज्ञानिक अध्ययन जरूरी है। गाँधी चिंतन के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए ये जरूरी है कि हमें गाँधी के सार्वभौमिक अनुप्रयोग के सामान्य सिद्धांतो एव समयबाधित सिद्धांतों के बीच अंतर करना होगा, जिनको कि गाँधी लेखन के विशेष कथनी का दर्जा दिया गया है।

गाँधी बहु तबड़े दार्शनिक नहीं थे । लेकिन फिर भी उनके लिए दर्शन एक जीवन शैली थी। उनके लिए आम आदमी के जीवन से परे का अध्ययन कोई महत्वपूर्ण नहीं था। हालाँकि वे तत्त्वमीमांसक चिंतक नहीं थे, लेकिन वे तत्त्वमीमांसक आदर्शवादी चिंतक के प्रति प्रतिबद्व थे। जिसकी जड़े हम हिन्दू समाज की धार्मिक परम्पराओं और विश्वासों में खोज सकते है। उनकी नैतिक धारणाऐं सामाजिक जीवन से रहित नहीं थी। इसलिए उनकी नैतिक अवधारणाओं में समाजशास्त्रीय अंश विद्यमान थे।

निष्कर्ष में भट्टाचार्य ने कहा है कि यहाँ न कोई गाँधी है, न ही गाँधीवाद। गाँधी को सही ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। गाँधी केवल एक नैतिक सुधारक मात्र नहीं थे बल्कि वे मूलत: एक अन्याय एवं असत्य के विरूद्ध लड़ाई लड़ने वाले योद्धा थे, तथा वे मानव के बढ़ते हुए विमानवीयकरण के प्रति सचेत थे और वे सोचते थे कि यह आधुनिक-औद्योगिक-पूंजीवादी सभ्यता का अपरिहार्य का परिणाम है। उसके राजनीतिक चिन्तन की जड़ें उनके आनुभाविक मानववाद में खोजी जा सकती है। जो कि पुनर्जागरणीय मारयाद के तार्किक आधारो से रहित है। गाँधी की महत्त्वपूर्ण सीमा उनकी इतिहास के प्रति प्रर्याप्त ज्ञान की कमी एवं इतिहास की गति के नियमों के प्रति उदासीन होना है जोकि पूजीवाद का बुद्विगम्य विश्लेषण है।

अन्त मे हम कह सकते है कि- आर्थोडोक्स मार्क्सवादियों ने गाँधी चिंतन का व्यवस्थित मूल्यांकन नहीं किया, लेकिन कुछ मार्क्सवादीयो जैसे पी. स्पाट एवं बंद्योपाध्याय ने मार्क्सियन मैथडोलॉजी का प्रयोग करते हुए गाँधी चिंतन का वैज्ञानिक अध्ययन उपलव्य कराने की कोशिश की है।

10.2.4 गाँधी: एक मानववादी दार्शनिक

गाँधी अध्ययन के मानवतावादी चरण के पद्चिन्ह हमें 1980 के दशक में गाँधी चिंतन के अध्येताओं में बढ़ते कम में देखने को मिलता है।

गाँधी अध्ययन की उक्त धारणा की बढ़ती लोकप्रियता के पीछे कुछ ऐतिहासिक कारण रहे हैं, जिनमें शामिल हैं - उदार पूंजीवादी दुनियाँ-तकनीकी-आर्थिक वृद्धि और मानवीय मूल्यों के बीच विद्यमान खाई को पाटने में असफल रहना तथा मानव व प्रकृति के बीच विद्यमान संतुलन को समाप्त कर दिया जाना जिसके परिणामस्वरूप एक ओर विमानवीयकरण को बढ़ावा मिला तथा दूसरी ओर पारिस्थितिकीय असंतुलन को। साथ ही समाजवादी देश भी नौकरशाहीकरण को रोकने

में तथा राजसत्ता को कुछ हाथों में केन्द्रीकृत या एकीकृत होने से असफल रहे, तथा नियोजित अर्थव्यवस्था की समस्याऐं भी प्रकट होने लगी क्योंकि इससें सार्वजनिक क्षेत्र की तुलना में निजी क्षेत्र पिछड़ने लग गया, तेजी से रक्षा बजटों में वृद्धि देखने को मिली जो कि बढ़ती अशांति, हिंसा तथा आतंकवादी गतिविधियों की वृद्धि की ओर इशारा करने लगीं। इन सभी ऐतिहासिक तथ्यों ने उदारवादी-मार्क्सवादी विचारधारायी तंत्रों की निरर्थकता व शून्यता की स्थिति को उजागर कर दिया थी। इसलिए अब एक नये मानववादी ढांचे के निर्माण पर बल देने पर विचार किया जाने लगा जो कि उदारवादी-मार्क्सवादी विशेषताओं से परे हो । इस संदर्भ में गाँधी चिंतन नई स्फूर्ति व स्वरूप के साथ खरा उतरता हु आप्रतीत होने लगा।

गाँधी अध्ययन के इस दृष्टिकोण के समर्थक अध्येताओं जैसे - जेडी सेठी, बी.एन. गाँगूली, रामाश्रय राय, रोनाल्ड जे. ट्रर्चक, नरेश दाधीच आदि हैं। जिनकी मूल मान्यता यह है कि - गाँधीजी को उसके मूल्यांकन में जाति, वर्ण, समाज या राष्ट्रीय आदि किसी भी सीमा में नहीं बांधा जा सकता है। उनका दर्शन प्रकृतित: मानववादी है जिसमें कई सार्वभौमिक तत्त्व है, जैसे शोषण, अन्याय, असमानता जैसी बुराईयों से लड़ना, स्वतंत्रता, स्वायत्तता, विकेन्द्रीकरण, महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देना, पर्यावरण का संरक्षण, प्राकृतिक संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग व संरक्षण करना तथा मानवता के कल्याण, विकास व समकता हेतु शांति या अहिंसा को बढ़ावा देना। सामाजिक-राजनीतिक दर्शन को उनके योगदान की कई पाश्चात्य राजनीतिक चिंतकों, जैसे - कार्लमार्क्स, एमाईल दुर्खीम अराजकतावादियों, मोस्का, पैरेटो, फ्रांज फैनन, मार्टिन बुबर, एंटोनियो ग्राम्शी, जॉन रॉल्स एवं अन्यों से तुलना की जा सकती है। गाँधी के इस दृष्टिकोण के समर्थक उक्त अध्ययेताओं का कहना है कि - गाँधी चिंतन के मूल मानववादी तत्त्वों को उजागर किया जाना चाहिए। अब इस दिशा में व्यापक मात्रा में प्रयास हो रहा है। हाल ही में बालीबुड के एक अभियन्ता संजय दत्त ने 'लगे रहो मुन्ना भाई'' नामक मनोरंजन दृश्य चित्र द्वारा भारत सहित सम्पूर्ण दुनियाँ को यह संदेश दिया व आसान तरीके से यह बताया है कि किस तरह से समाज में फैली बुराईयों व विभित्र संघर्षो से गॉधीयन तरीके से (जिसको लोकप्रिय भाषा में - गाँधीगिरी कहा जाता है) निपटा जा सकता है।

गाँधी चिंतन के मानववादी व्याख्याकारों का तर्क है कि - 'गाँधी एक ऐसे तार्किक सत्य की खोज में लगे रहे जो कि भौतिक जगत की समस्याओं एवं हमारे दैनिक जीवन में शाश्वत सत्य के अनुप्रयोग द्वारा प्राप्त किया जा सके।'' उन्होंने एक समतावादी सामाजिक मानवीय व्यवस्था के लिए कार्य किया। जिसमें व्यक्ति को शक्तिहीनता, चिंता, असुरक्षा, अलगाव, पराश्रित होने से बचाया जा सके, जो कि आधुनिक- औद्योगिक सभ्यता के अपरिहार्य परिणाम थे। गाँधी का विश्वास था कि 'एक अर्थपूर्ण जीवन व्यक्तित्व की स्वतंत्रता की खोज में एवं मानवीय मामलों के नेतृत्व में ही जीया जा सकता है।''

मानववाद की विचारधारा का उद्भव पुनर्जागरण काल से ही माना जाता है। उसी क्रम में गाँधीयन मानववादी परिप्रेक्ष्य भी उसकी एक प्रशाखा है। लेकिन यहाँ ध्यान रहे कि गाँधीयन मानववादी परिप्रेक्ष्य एक अलग प्रकार का है क्योंकि इसमें मानव को पूर्णता या एकीकृत रूप में

देखा गया है न कि विभाजित रूपों में। कोई भी प्रगति का सिद्धान्त जो मानव जीवन के एक पहलू पर ही बल देता है वह मानव सत्ता की प्रकृति व आत्मा का न तो विकास कर सकता है ओर न ही पर्याप्त मात्रा में उसकी व्याख्या कर सकता है। गाँधीजी का सत्य का सिद्धान्त मानव की पूर्णता को समाहित करता है और यही उसके सभी दर्शनों व कार्यो का आधार रहा है। इस परिप्रेक्ष्य के समर्थक कभी-कभी इसे आधुनिक सभ्यता के सभी अशुभों की रामबाण औषधि के रूप में प्रस्तुत करने की कोशिश करते हैं। गाँधी का मानववाद प्रबुद्ध मानववाद की प्रशाखा होते हुए भी विभिन्न धर्मों, क्षेत्रों व विचारधाराओं की परिधियों से परे हैं। यह निश्चितत: कहा जा सकता है कि गाँधीयन चिंतन स्वत: शोध प्रणाली है, न कि विभिन्न दर्शनग्राही। यही एकीकृतपूर्णता का निर्माण करते हैं। गाँधी का सत्य के साथ प्रयोग उसके चिंतन को सैद्धान्तिक अनुभववाद का उत्पाद नहीं बनाता बल्कि उसके चिंतन की सापेक्षता व लोचशीलता को दिखाता है। यह अध्ययन गाँधी चिंतन के केन्द्रीय तत्त्व 'मानव' पर जोर देता है तथा साथ ही गाँधी के वैज्ञानिक अध्ययन करने की आवश्यकता तथा शुद्धतम तार्किक आधार पर उसके विचारों को व्यवस्थित रूप से विकसित करने पर जोर देता हैं।

यह भी तर्क दिया जाता है कि - गाँधी नहीं कोई रूढ़िवादी, निरपेक्षतावादी थे और न ही व्यवस्था - निर्माणक बल्कि उनका दर्शन व्यापक एवं विकासात्मक था जो बिना टूटे हमेशा विस्तृत होने वाला या सामूहिक वृत्तों के समान था। जिसके आधार में 'व्यक्ति' था। यह भी दावा किया जाता है कि - गाँधी का आदर्श समाज कोई आदिम समाज में लौटना नहीं था बल्कि एक उत्तर आधुनिक समाज की ओर बढ़ना था, जो गैर उपयोगितावादी उज़ख विकास पर आधारित था।

मानववादी दार्शनिक के रूप में गाँधी अध्ययन के इस चरण में वैसे तो कई अध्येता रहे हैं लेकिन उनमें से प्रमुख अध्येताओं के अध्ययन का संक्षिप्त सार निम्नोक्त है –

बी.एन. गांगुली गाँधी अध्ययन के उन अध्येताओं में शामिल हैं जिन्होंने सर्वप्रथम इस अवधारणा को काम में लिया। उन्होंने अपनी पुस्तक ''गाँधीज सोशल फिलासॉफी: प्रस्पेक्टिव एण्ड रेलेवेंस'' (1973) में गाँधी के मानववादी दृष्टिकोण को व्यक्त करते हुए लिखा है कि - गाँधीजी ने अपने दर्शन में सिद्धान्त और व्यवहार के बीच की खाई को पाटते हुए एक ऐसे आदर्श समाज व्यवस्था के निर्माण पर जोर दिया जो अहिंसा, प्रेम, करूणा, त्याग आदि मूल्यों पर आधारित सामुदायिक स्व-शासनाधारित समाज होगा जिसमें - शोषण, अन्याय, अलगाव, पराश्रितता आदि के लिए कोई स्थान नहीं होगा जिसमें प्रत्येक मानव सबके लिए तथा सब एक के लिए प्राणोत्सर्ग को तैयार रहेंगे। जिसे गाँधी ने 'सर्वोदय समाज' की संज्ञा दी । जिसके केन्द्र में मानव तथा उसके कल्याण व विकास को रखा।

जे.डी. सेठी ने अपनी पुस्तक ''गाँधी टुडे'' (1978) में स्पष्ट किया है कि - ''गाँधीवाद अपने समय का एक व्यवस्थित दर्शन बजाय मार्क्सवाद एवं पूंजीवाद की तुलना में। चूंकि वे व्यवस्था - निर्माणक नहीं थे, लेकिन वे सप्रत्ययों की पूर्ण योजना रखते थे। जिसके आधार पर सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक विकास का सबसे उपयुक्त एवं सबसे आधुनिक प्रतिमान निर्मित किया जा सकता है। इन संप्रत्ययों में - सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, स्वदेशी, समानता, न्यासिता, श्रम की रोटी आदि शामिल है। ये सप्रत्य सापेक्ष, प्रावैगिक, द्वन्द्वात्मक व सत्तामूलक थे लेकिन निरपेक्ष नहीं

थे। -साथ ही सेठी का यह भी विश्वास है कि - गाँधी को उसका अर्थव्यवस्था एवं तकनीकी के प्रति दृष्टिकोण के कारण ज्यादातर गलत समझा जाता है क्योंकि गाँधी न तो टेक्नोफाइल थे न ही टेक्नोफोब। उसका मशीन के प्रति विरोध उतना ही था जितना वह मानव पर नियंत्रण करती हो। वह तकनीक के नहीं तकनीकवाद के या तकनीकीय निर्धारणवाद के विरोधी थे। गाँधी निर्धारणवादी दर्शन के किसी भी रूप के विरोधी थे। वे मानव की स्वतंत्रता में विश्वास करते थे, मानव की स्व-उत्थान की प्रकृति व क्षमता के प्रति आशावादी। गाँधीजी व्यक्ति व समाज के बीच कोई द्वेतवाद नहीं देखते थे और विश्वास करते थे कि नीति-शास्त्र, विज्ञान एवं तकनीक विकास में सहायता करते है। इस प्रकार गाँधी जी ने सम्पूर्ण मानवता, समाज व अर्थव्यवसथा को पूर्ण रूपान्तरण के नये रास्ते दिखाये जो उत्तर-आधुनिक समाज की ओर ले जाते है।

नरेश दाधीच ने अपनी पुस्तक - गाँधी एण्ड एक्जिस्टेंशिएलिज्म (1993) में गाँधी के मानववादी परिप्रेक्ष्य के संदर्भ निष्कर्षत: में लिखा है कि - ''अक्षनिकता के युग में मानव के समक्ष उत्पन्न खतरों व चुनौतियों, जैसे -कट्टरवादिता असमानता, पर्यावरण असंतुलन, हिंसा, शस्त्रीकरण, विमानवीयकरण आदि से निपटने का एकमात्र रास्ता गाँधीवादी चिंतन के तरीके के अनुसरण व अनुप्रयोग में ही निहित है। यही वह दर्शन है जो मार्क्सवाद व उदारवाद के खोखलेपन का प्रभावी विकल्प प्रस्तुत कर मानव को मानव के रूप में जीवित रहने का मार्ग दिखाता है।''

रोनाल्ड जे. टरचक ने अपनी पुस्तक ''गाँधी स्ट्रगल फॉर अटोनामी इन ट्वेन्टी फर्स्ट सेंचुरी'' में मानव की स्वायत्ता के समक्ष चुनौतियों व संघर्षो से निजात पाने का रास्ता गाँधी चिंतन में होने का दावा किया है।

रामाश्रय राय ने भी गाँधी के मानववादी परिप्रेक्ष्य में कहा है कि गाँधी एक विश्व चिंतक के रूप में आधुनिक सभ्यता की बीमारियों के उपचार में सक्षम है और आधुनिक सभ्यता एवं आधुनिक मानव की जटिल समस्याओं से निपटने का प्रभावी ज्ञानमीमांसीय एवं सत्तामीमांसीय आधार प्रस्तुत करते है। जिसमें 'स्थ' की खोज, मानवीय संबंधों व सामाजिक संस्थाओं की पुर्नव्यवस्था द्वारा आंतरिक रूपांतरण पर बल दिया। चूंकि गाँधी मानव जीवन के एकीकृत स्वरूप पर बल देने के कारण आंतरिक और 'बाह्य' जगत को अलग-अलग नहीं देखते थे। यहाँ 'स्थ' के लिए सामंजस्यकारी तंत्र अहिंसा व सत्य पर संरचित होगा। इसी समाज का 'विस्तष्त स्व' आधार होगा और मूल्यों पर आधारित होगा जो सामंजस्य, अ-शोषण, समानता एवं सहभागिता को बढ़ावा देगा।

गाँधी अध्ययन का यह मानववादी ऐतिहासिक चरण समकालीन विश्व में गाँधी के योगदान को मूल्यांकित करने वाला अपेक्षाकृत पिछले ऐतिहासिक चरणों से ज्यादा व्यापक है। यह स्पष्ट करता है कि - गाँधीपन तंत्र का केन्द्र बिन्दु-मानव है और मानव का स्व-अनुभूतीकरणद्वारा पूर्णरूपेण रूपान्तरण करना उनके दर्शन का तात्त्विक लक्ष्य है। यह चरण भारतीय चिंतन के वैश्वीकरण का एक बहुतसफल प्रयास है, गाँधीयन चिंतन में नई पद्धति तंत्रों व संप्रत्यात्मक ढाँचों का प्रयोग करते हुए।यह गाँधी के तुलनात्मक अध्ययन में रूचि भी उत्पन्न करता है और मानवता के अस्तित्व के लिए एक वैकल्पिक वैश्विक तंत्र पर ध्यान केन्द्रित भी करता है।

10.3 सारांश

बहु आयामी व्यक्तिव के धनी महात्मा गाँधी के चिंतन का देशी और विदेशी अध्येताओं ने भिन्न-भिन्न आयामों से भिन्न-भिन्न उपागमों के आधार पर अध्ययन किया है। जिसमें गाँधी को एक नैतिक आदर्शवादी समाज सुधारक के साथ-साथ एक समाज वैज्ञानिक, मार्क्सवादी दार्शनिक तथा मानववादी दार्शनिक के रूप में व्याख्यापित करने का प्रयास किया। जिसमें आज गाँधी के चिंतन पर भारत और विश्व में एक मानवतावादी दार्शनिक के रूप में अध्ययन पर जोर दिया जा रहा है क्योंकि उदारवाद के विकल्प के रूप में मानवता के अस्तित्व का आधार अब गाँधी चिंतन में ही नजर आता है। चाहे वह शांति का या पर्यावरण संरक्षण या महिला सशक्तिकरण का मामला हो या आध्यात्मिक जीवन जीने का।

10.4 अभ्यास प्रश्न

1. गाँधी अध्ययन के ऐतिहासिक चरणों की व्याख्या करो।
2. गाँधी अध्ययन के नैतिक-आदर्शवादी समाज सुधारक चरण की व्याख्या करो।
3. गाँधी अध्ययन के समाज वैज्ञानिक चरण की व्याख्या करो।
4. गाँधी एक मार्क्सवादी दार्शनिक के रूप में, व्याख्या करो।
5. गाँधी एक मानववादी दार्शनिक है, व्याख्या करो।

10.5 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. दाधीच नरेश, 'गाँधी एवं एक्जिसटेंशिएलिज्म रावत, जयपुर- 1993
2. स्प्राट, पी., 'गाँधीज्म: एन. एनालेसिस, द हक्सले प्रेस, मद्रास- 1939
3. शाह, सी.जी., मार्कसिज्म गाँधीज्म सटालिनज्म, पापूलर प्रकाशन, बाम्बे, 1993
4. महादेव, टी.के. एन एप्रोच दू द स्टडी ऑफ गाँधी, इन रामचन्द्र, जी एण्ड महादेवन, टी के.(सम्पा.) क्वेस्ट फॉर गाँधी, गाँधी पीस फाउण्डेशन, नई दिल्ली- 1970
5. टरचक, जे. रोनाल्ड, गाँधी : स्ट्रगल फॉर ऑटोनामी, सेज, नई दिल्ली - 1998

ISBN-13/978-81-8496-040-2